

GOVERNMENT OF INDIA

ARCHEOLOGICAL SURVEY OF INDIA

Central Archeological Library

NEW DELHI

ACC. NO. 75027

CALL NO. 745.095426/Ver.

D.G.A. 79

75627



उत्तर प्रदेश की लोककला 'भूमि और भित्ति अलंकरण

75027

डा. बिमला वर्मा

745.095426
Ver



जयश्री प्रकाशन
दिल्ली

प्रस्तुत शोध-ग्रंथ का प्रकाशन भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् के आर्थिक सहयोग से साकार हुआ है। इस ग्रंथ में प्रस्तुत किए गए तथ्यों, मतों अथवा निस्तृत निष्कर्षों का उत्तरदायित्व पूर्ण रूपेण लेखक पर है। भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् इसके लिए उत्तरदायित्व नहीं रखता।

प्रकाशक 75027 11.3.58
 निर्देशक 7450 95424 V-er
 नई दिल्ली

© डा. बिमला वर्मा, १९८७

प्रथम संस्करण : १९८७

प्रकाशक : जयश्री प्रकाशन, ४/११५, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

मुद्रक : रूपाभ प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-३२

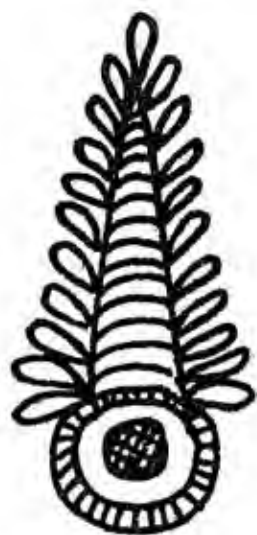
आवरण सज्जा : नारायण बड़ोदिया

ले-आउट : सौमित्र मोहन

स्वर्गीय माता-पिता को
समर्पित



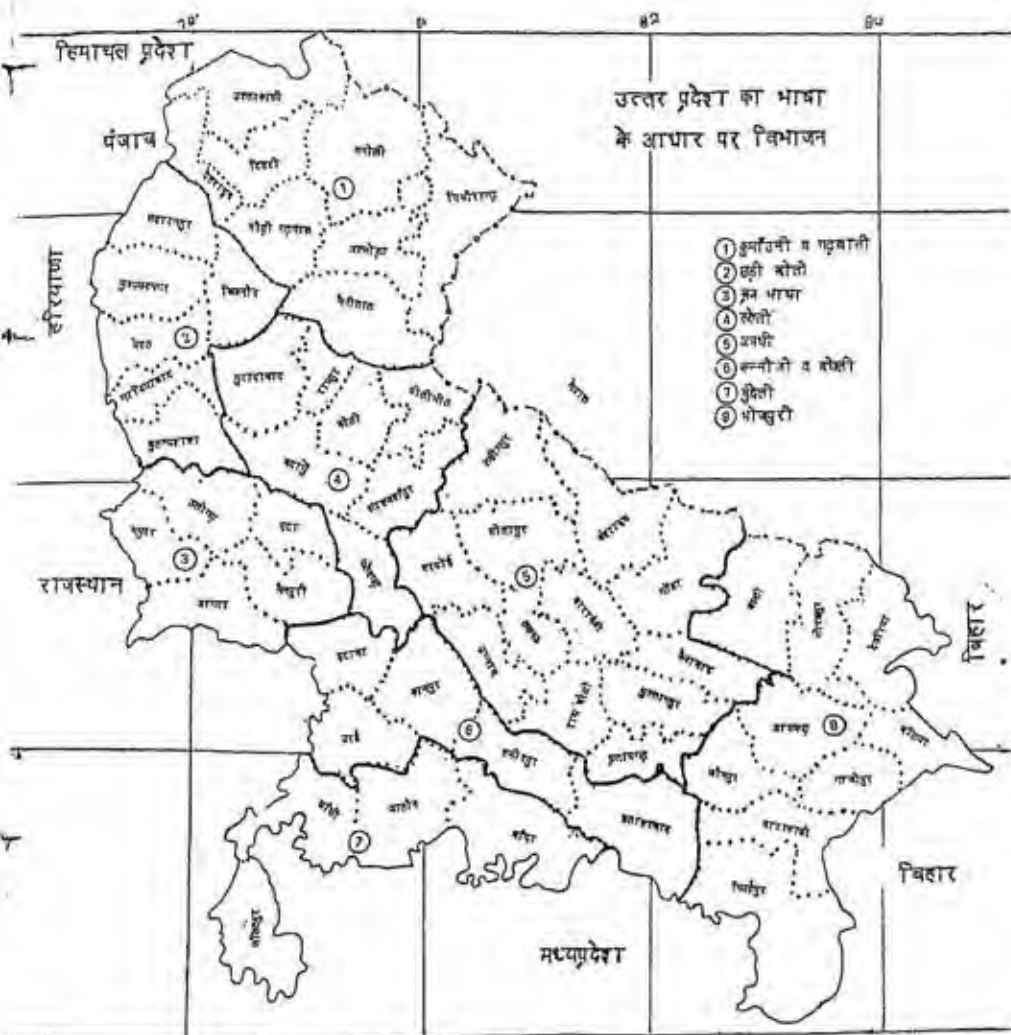
Recd. from Jay Shree Gopal Kosh, Delhi. Bill No. 194 dt. 12/2/88 Price Rs. 102/-



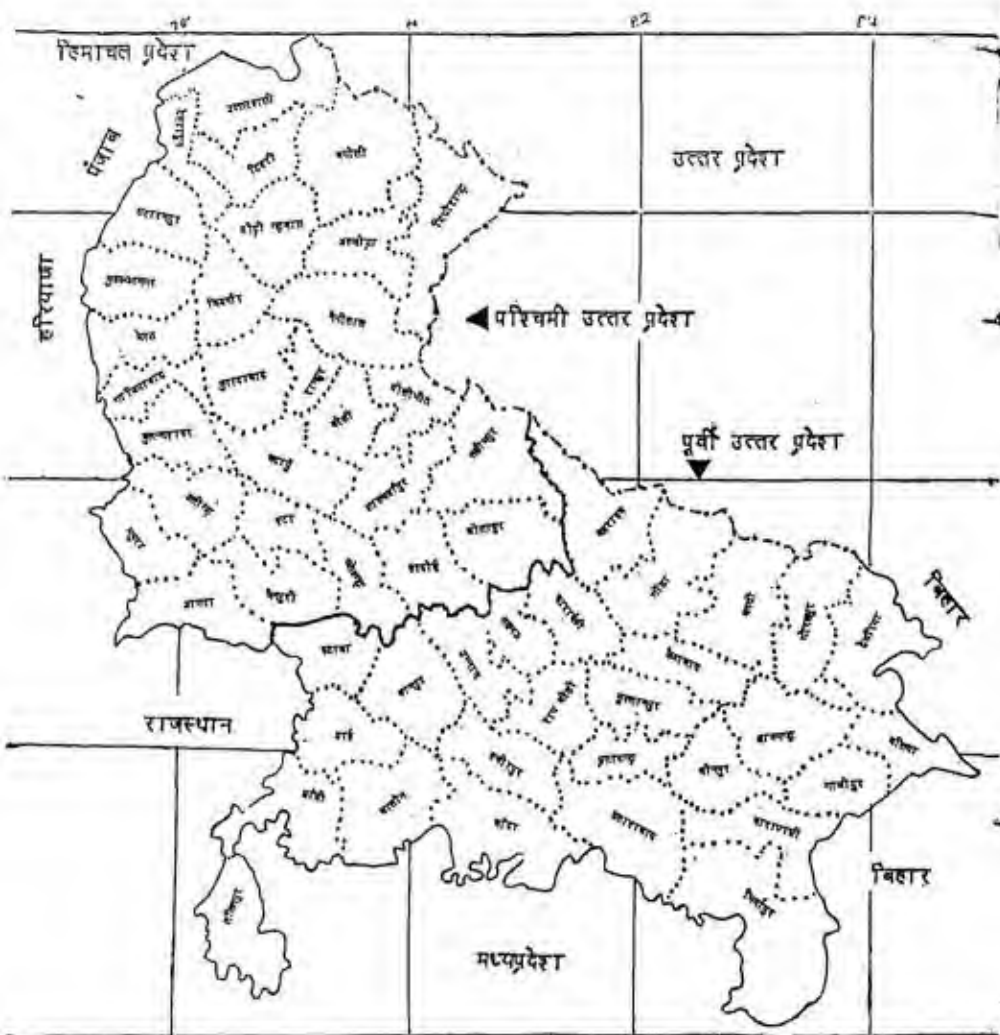
अनुक्रम

मानचित्र १	६
मानचित्र २	१०
प्राक्कथन	११
प्रथम अध्याय : लोककला में प्रतीक	१६
द्वितीय अध्याय : उत्सवों सम्बन्धी भूमि व भित्ति अलंकरण	४३
तृतीय अध्याय : विभिन्न संस्कारों सम्बन्धी भूमि व भित्ति अलंकरण	६१
चतुर्थ अध्याय : लोककला का क्षेत्रीय समाज पर प्रभाव	१२५
पंचम अध्याय : लोककला में भावात्मक एकता के तत्व	१४३
परिशिष्ट : सहायक ग्रंथ सूची	१७३





मानचित्र १ : उत्तर प्रदेश का भाषा के आधार पर विभाजन



मानचित्र २ : उत्तर प्रदेश का भौगोलिक दृष्टि से विभाजन

75027

प्राक्कथन



भारतवर्ष में भूमि एवं भित्ति को अलंकृत करने की प्रथा प्राचीन काल से ही लोक-प्रिय रही है। इसका उद्भव कब हुआ, यह ठीक-ठीक बता पाना सम्भव नहीं। जब मानव कन्दराओं में रहता था, तब ढकने की भी आवश्यकता अनुभव नहीं करता था, शिकार से प्राप्त सामग्री ही उसका मुख्य आहार था, तब भी उसमें कलात्मक प्रतिभा का उद्भव हो चुका था। इसका प्रमाण उस युग की गुफाओं में निर्मित चित्र हैं।

भारत के प्राचीनतम प्रागैतिहासिक चित्र मध्यप्रदेश, बिहार तथा उत्तर प्रदेश राज्यों में मिले हैं, पर सबसे अधिक प्राचीन चित्र मिर्जापुर की कन्दराओं से प्राप्त माने जाते हैं। मिर्जापुर की लिखनियाँ-२ की छत और भित्तियों पर अंकित विविध प्रकार के आलेख-दृश्यों, पशु-चित्रों तथा नर्तन-वादन आदि के आलेखनों से उन आदिम निवासियों की कलाप्रियता और सौन्दर्यबोध का सजीव परिचय मिलता है। उत्तर प्रदेश की सीमाएँ एक बड़ा राज्य होने के कारण पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार तथा तराई के मैदान से जुड़े हुए नेपाल देश से मिलती हैं। यह प्रदेश भारत के उत्तर-मध्य में स्थित होने के कारण समय-समय पर विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं का केन्द्र रहा है। इतिहासवेत्ताओं के कथनानुसार आर्यों के भारत में आने से पूर्व ही यहाँ के मानव ने सभ्यता के कई सोपान पार कर लिए थे। समय के साथ-साथ आदिम युग के मानव में सामाजिक भावना का उदय तथा परिवर्द्धन हुआ और समाज का रूप, सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ, परिष्कृत होता गया। आर्यों का उत्तर से इसी काल में आगमन हुआ तथा यहाँ की सभ्यता और संस्कृति को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में आर्यों ने अपना मूल्यवान योगदान दिया।

आर्यों के आगमन से पूर्व की कला के बारे में, प्रागैतिहासिक काल की कला को छोड़कर, अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है, पर आर्यों के आगमन के पश्चात् की कला की कुछ कृतियाँ हमको आज भी दिखाई देती हैं। आर्य लोग अग्निपूजक थे और वे सूर्य, इन्द्र, वरुण आदि के उपासक थे। वे समय-समय पर इन देवताओं की दया व आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु तथा उनको प्रसन्न करने हेतु यज्ञ एवं हवन करते थे; बलि भी चढ़ाते थे। यज्ञ-वेदियों को विन्दु, रेखाओं, त्रिकोणों-वृत्त-आयत-वर्ग आदि ज्यामितिक आकारों से विभिन्न प्रकार के डिजाइन बनाकर सजाते थे और उसको सजाने हेतु विभिन्न अनाज, हल्दी, कुंकुम, फूल-पत्ती आदि का प्रयोग करते थे। इन ज्यामितिक आकारों के विशेष अवसरों पर विशेष अर्थ होते थे। इनकी मंत्रोच्चार के साथ विधिवत पूजा भी की जाती थी। धीरे-धीरे वैदिक धर्म का भी उदय होता गया और विभिन्न देवी-देवताओं की भी आकारों के साथ पूजा की जाने लगी। दैनिक जीवन में अधिकांश प्रयोग आने वाली वस्तुएँ तथा अत्यधिक उपयोगी पशु-पक्षियों की भी पूजा करने की प्रथा चल पड़ी तथा भित्ति एवं भूमि को मानव उल्लास व खुशी के साथ अलंकृत करने लगा। वास्तव में उस

समय का मानव उनको भूमि या भित्तियों पर आलेखित कर पूजा करता था और इस तरह उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता था।

इस तरह की सजावट, जोकि केवल सुन्दरता बढ़ाने के दृष्टिकोण से आरम्भ हुई थी, धीरे-धीरे स्वतः हमारे जीवन का अंग बन गई और अपनी धार्मिक पृष्ठ-भूमि के साथ हमारी महिलाओं के उत्सव, त्यौहार व संस्कारों में समाहित होती गई। परिणामस्वरूप एक ऐसी कलाधारा का विकास हुआ जिस पर महिलाओं का ही अधिकार हो गया और जो उनके द्वारा संवरती व निखरती हुई पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती गई।

कुछ समय पश्चात् कला की यह धारा जो बहुत ही सहज और सुगम थी तथा परिवार के सुख-सौभाग्य की कामना से ओतप्रोत थी, लोककला के नाम से जानी गई। इस कला को जानने के लिए बालिकाओं, युवतियों तथा महिलाओं को स्कूलों में नहीं जाना पड़ा और न ही तूलिका व रंगों अथवा प्रयोग में आने वाले अन्य सामान के लिए बाजार का मुँह ताकना पड़ा। इसके विपरीत यह ऐसी कला थी जिसके लिए केवल आँगन अथवा भित्ति चाहिए थी, तूलिका के रूप में रूई, सूत, सूखी टहनी या अनामिका अँगुलि चाहिए थी और चाहिए था चावल, गेहूँ अथवा जौ का आटा, फूल व पत्तियाँ, विभिन्न प्रकार की दालें व अनाज तथा साथ ही साथ पालतू पशुओं (गाय-भैंस) का गोबर व मिट्टी। ये समस्त वस्तुएँ सहज उपलब्ध थीं। यही कारण है कि यह लोककला आरम्भ से ही फलती-फूलती गई, धर्म ने इसे अधिक सरस बनाया और समाज ने मान-सम्मान दिया। आज भी यह लोककला अपना अनुरंजनकारी रूप त्यौहारों, उत्सवों तथा संस्कारों के अवसर पर महिलाओं द्वारा प्रस्तुत करती है।

भारतवर्ष एक विशाल देश है। विभिन्न प्रदेशों में महिलाएँ इस कला को भूमि या भित्ति पर त्यौहारों, उत्सवों एवं संस्कारों के समय बनाती हैं। भूमि पर बनाई जाने वाली कला को विभिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। उड़ीसा में 'झुनती', राजस्थान व मध्यप्रदेश में 'माँडना', गुजरात में 'साथिया', महाराष्ट्र में 'रंगोली', बिहार में 'अरिपन', बंगाल व असम में 'अल्पना', आन्ध्र प्रदेश में 'मुगलू', हिमाचल प्रदेश में 'लिखनू', दक्षिण में 'कोलम' तथा उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में 'एपन' तथा अन्य भागों में 'चौक पूरना' के नाम से जानी जाती है। भित्ति पर अधिकतर चित्रण उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश व हिमाचल प्रदेश में ही होता है, जिसे उकेरना, उरहूना, चीतना, लिखना, थापा व माँडना कहते हैं।

प्रस्तुत शोधकार्य में उत्तर प्रदेश की केवल वही लोककला को ले रहे हैं जिसका सम्बन्ध भूमि या भित्ति पर बनाये जाने वाले उन अलंकरणों से है, जो किसी भी उत्सव, त्यौहार व षोडश संस्कारों पर बनाये जाते हैं। लोककला के नमूने लेखिका ने अपने सर्वेक्षण के समय उत्तर-प्रदेश के विभिन्न शहरों व समीपवर्ती क्षेत्रों से

एकत्र किए हैं।

प्रमुख त्यौहार तथा उत्सव

- | | |
|----------------------|-----------------------|
| १. चैत्र की नवरात्रि | १६. शारदीय नवरात्रि |
| २. अक्षय तीज | १७. नीराते |
| ३. कुनधुंसु | १८. सिमरासिमरी |
| ४. नाग पंचमी | १९. नारेसुउटा |
| ५. रक्षा बन्धन | २०. विजयादशमी |
| ६. भाईभिन्ना | २१. नरक चौथ |
| ७. हरछठ | २२. अहोई अष्टमी |
| ८. कृष्ण जन्माष्टमी | २३. छोटी-बड़ी दीपावली |
| ९. बछवारस | २४. गोवर्धन पिड़िया |
| १०. श्रृषि पंचमी | २५. भाई दूज |
| ११. दुवड़ी सालें | २६. देवउठान एकादशी |
| १२. साँझी | २७. सूर्य पूजा |
| १३. संजिया देवी | २८. बसंत पंचमी |
| १४. मामूलिया | २९. शिवरात्रि |
| १५. महालक्ष्मी पूजन | ३०. होली |

संस्कार

१. जन्म
२. छठी
३. दण्डन
४. उपनयन संस्कार
५. विवाह

आहर व समीपवर्ती क्षेत्र

१. उत्तरकाशी, टिहरी, चमौली, पौड़ी गढ़वाल, देहरादून, हरिद्वार।
२. अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, रानीखेत, नैनीताल, काठगोदाम।
३. सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, गाज़ियाबाद।
४. मुरादाबाद, बरेली, आहजहाँपुर।
५. लखनऊ, बानपुर, इलाहाबाद, फर्रुखाबाद, रायबरेली, फतहपुर।
६. आगरा, मथुरा, एटा, इटावा, बूँदावन, गोवर्धन, बरसाना, गोकुल।
७. झाँसी, ललितपुर, बाँदा, मऊ रानीपुर।
८. बनारस, मिर्जापुर, बलिया, गोरखपुर, सारनाथ, लखीमपुर खीरी।

संग्रहालय

जयपुर, दिल्ली, मथुरा, लखनऊ, बम्बई, अहमदाबाद, पटना, इलाहाबाद, बनारस, उदयपुर, इत्यादि नगरों में स्थित संग्रहालय।

उत्तर प्रदेश की लोककला :: १५

सर्वेक्षण को अधिक सुविधाजनक बनाने के दृष्टिकोण से उत्तर प्रदेश को दो भागों में बांट लिया है—(१) पश्चिमी, तथा (२) पूर्वी। लखनऊ से पूर्व के भाग पूर्वी तथा पश्चिम के पश्चिमी क्षेत्रों के अन्तर्गत आते हैं। प्रस्तुत शोधकार्य को और अधिक गहन बनाने के दृष्टिकोण से भाषा के आधार पर भी उत्तर प्रदेश को विभाजित किया गया है—कुमायूनी, गढ़वाली, खड़ी बोली, ब्रजभाषा, अवधी, राहोली, बुन्देली, कन्नौजी, भोजपुरी आदि।

यह प्रदेश प्रायः सभी प्रमुख देवी-देवताओं—शिव, राम, कृष्ण, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, सीता आदि की जन्मभूमि तथा कर्मभूमि रहा है। जलवायु और वनस्पति में भी विविधता लिये हुए है। यहाँ उत्तर में बर्फ से ढके पहाड़ हैं और राजस्थान से मिलता हुआ मरुभूमि का भाग भी। विभिन्न प्रकार के फल-फूल, वृक्षों, पशु-पक्षियों से यह प्रदेश भरा पड़ा है। विभिन्न जातियों के सम्मिश्रण से इस प्रदेश की जनसंख्या बनी है। भाषाओं की दृष्टि से भी भिन्नता है। खानपान और रहन-सहन में अंतर भी आप उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम में पायेंगे। इस तरह एक नाम होते हुए भी यह विभिन्न संस्कृतियों को अपने में समेटे हुए है तथा त्यौहारों और उत्सवों-संस्कारों के मनाने के ढंग में जातीय व क्षेत्रीय विभिन्नता के रहते हुए एकता प्रदर्शित करता है।

अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने १९१६ में बांग्ला में अरुपना मंडन शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित कराई थी, जो उस समय इतनी प्रचलित हुई कि फ्रेंच भाषा तक में अनूदित हुई। इसके बाद राजस्थानी मॉडर्न तथा बिहार की अरिपन कला तथा मधुबनी कला पर पुस्तकें प्रकाशित हुईं। अभी कुछ दिनों पूर्व पहाड़ी लोककला पर भी पुस्तक लिखी गई, पर अभी तक उत्तर प्रदेश की लोककला पर एक भी पुस्तक नहीं। प्रस्तुत शोधग्रन्थ में उत्तर प्रदेश में प्रचलित विविध प्रकार की भित्ति तथा भूमि-अलंकरण की शैलियों का परिचय देने का अकिंचन प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध को पूरा करने में श्री मुनिसिंह (लखनऊ संग्रहालय), श्री योगेन्द्रनाथ वर्मा (लखनऊ कला विद्यालय), श्री मोहन उप्रेती (भारतीय कला केन्द्र, दिल्ली), श्रीमती हरीश पंत (मुनीरका, दिल्ली), श्री जुयाल एवं उनके सहयोगी (हिमालय कला संगम, दिल्ली), बहिन श्रीमती सरला वर्मन (मथुरा) और पूज्य बुआ जी श्रीमती सरला सिंह (झाँसी) तथा उनके पारिवारिक सहयोग को कभी भी विस्मृत न कर पाऊँगी; जिन्होंने क्रमशः पूर्वी उत्तर प्रदेश, कुमायूनी, गढ़वाली, ब्रज प्रदेश तथा बुन्देलखण्ड के क्षेत्र की लोककला को एकत्र करने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। साथ-ही-साथ अपनी स्वीय पूज्यनीय माताजी की भी अत्यधिक आभारी हूँ, जिन्हें लोककला तथा उनसे सम्बन्धित कथाओं के प्रति रुचि एवं गहरा लगाव था और जिन्होंने समय-समय पर अपने सुझावों द्वारा मेरा मार्गदर्शन किया। मैं स्वर्गीय पूज्य पिता जी की भी अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने शोध-प्रबन्ध को पूर्णता की ओर लाने में निरन्तर प्रेरणा प्रदान की थी।

यह शोधप्रबन्ध मेरठ विश्वविद्यालय में पी-एच० डी० उपाधि के लिए वर्ष १९८० में प्रस्तुत किया गया था। प्रकाशन से पहले इसमें आवश्यक संशोधन ही किये गये हैं। इस अवसर पर मैं अपनी निर्देशिका डा० श्रीमती सीता शर्मा (मेरठ कालिज, मेरठ) के प्रति असीम कृतज्ञता प्रकट करना अपना परम कर्तव्य समझती हूँ जिन्होंने सदैव अपने बहुमूल्य सुझावों द्वारा मुझे इस कार्य को पूर्णता की ओर पहुँचाने में प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्रदान किया। वे सभी सहयोगी भी मेरे आभार के पात्र हैं जिन्होंने सर्वेक्षण के समय अपना बहुमूल्य समय देकर मुझे अपने परिवार, जाति एवं क्षेत्र विशेष की लोककलाओं से अवगत कराया तथा भित्ति एवं भूमि अलंकरणों की रूपरेखा कागज पर रूपायित की।

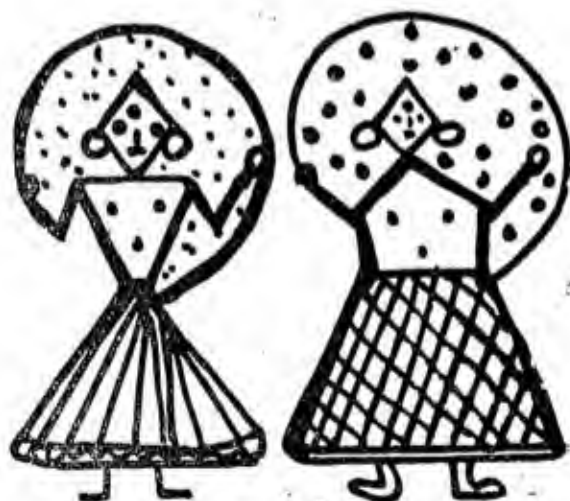
ए ६८/२, एस. एफ. एत. पब्लिश,
साकेत, नई दिल्ली-११००१७
मई १९८७

डा० विमला वर्मा



प्रथम अध्याय

लोककला में प्रतीक





मनोकामना द्वारा प्रेरित होकर मानव बहुधा व्रत-उत्सव मनाता और उसी को पूरा करने के विचार से अनुष्ठान एवं धार्मिक कृत्य आदि करता है। उपासना करना अथवा उत्सव मनाना दोनों ही अनुष्ठान हैं। परन्तु उपासना कोई भी मानव अपने आप करता है और आत्मसंतोष उसका लक्ष्य है। इसके विपरीत उत्सव दस-बीस मनुष्यों से सम्बन्धित होता है और कामना को चरितार्थ करके सामूहिक आनन्द का उपभोग उसका ध्येय है। आरम्भ में अधिकांशतः सभी उत्सव लोकोत्सव थे परन्तु शनैः-शनैः पुराणोक्त सनातन देवी-देवता हिन्दू संस्कृति के विकास के साथ-साथ धार्मिक और सामाजिक बनते गये और अब तो इनमें जातिगत रीति-रिवाजों का भी अनोखा सम्मिश्रण हो गया है।

ये पर्व या रीति-रिवाज किसी भी देश की सांस्कृतिक निधि होते हैं और उस देश की विशिष्टता तथा आत्मा को साकार करते हैं। इन्हीं पर्वों, उत्सवों तथा रीति-रिवाजों से सम्बद्ध सांस्कृतिक लोककला भी, जो भूमि एवं भित्ति अलंकरणों के रूप में पाई जाती है, समाज में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। विभिन्न उत्सवों और त्यौहारों के अनुसार इनके अलंकरणों में विविधता दृष्टिगोचर होती है। इनके साथ बनाये जाने वाले अभिप्रायों¹ का अपना एक विशेष अर्थ और महत्व होता है। लोक सांस्कृतिक कला में प्रयोग आने वाले परम्परागत अभिकल्प बिन्दु, रेखाएँ (आड़ी, पड़ी व तिरछी); त्रिभुज; सम्पुटित दो त्रिभुज, चतुर्भुज, बहुभुज, पंच भुज, षष्ठभुज, सप्तभुज, अष्टभुज; स्वास्तिक, ओ३म्; वृत्त, कोण; विभिन्न देवी-देवता तथा उनके आयुध, शंख, चक्र, गदा, पद्म; हाथी, नाग, मछली, तोता, मोर; तरह-तरह की लताएँ, फल, फूल इत्यादि हैं। प्रायः सभी अभिप्रायों के अपने-कुछ गूढ़ अर्थ होते हैं जोकि न केवल सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश वरन् सम्पूर्ण भारत में एक ही अर्थ रखते हैं। इन्हीं अभिप्रायों को प्रतीक² के रूप में लोक कलाकार प्रयुक्त करते हैं।

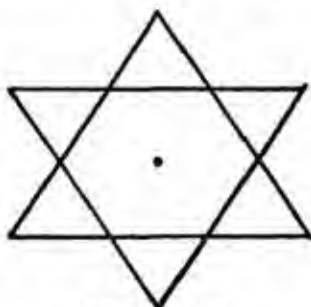
सबसे पहले हम बिन्दु को लें। इसको सृष्टि का केन्द्र-बिन्दु माना गया है। जब तीनों शक्तियों (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश) का लय एक-दूसरे में हो जाता है, तभी बिन्दु अर्थात् ब्रह्म का जन्म होता है। यह पूर्ण, अनन्त ब्रह्माण्ड तथा आकाश का प्रतीक है।³

यही बिन्दु त्रिकोण का जन्मदाता है। तीन सीधी रेखाएँ एक-दूसरे से मिलकर त्रिकोण का रूप धारण कर लेने पर त्रिअर्थी बन जाती हैं और जब इन तीनों भुजाओं का संकोचन होने लगता है तो वे धीरे-धीरे सिकुड़कर बिन्दु का रूप धारण कर लेती हैं। त्रिकोण मानव के तीन गुणों (सत्त्व, रज व तम), तीनों काल (वर्तमान, भूत तथा भविष्य), आनन्द की अनुभूतियों (सत, चित तथा आनन्द), विशक्ति (ज्ञान, इच्छा और क्रिया), बुद्धि के तीन रत्नों (बुद्ध, धर्म व संध), त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश) तथा तीन पराशक्तियों (महालक्ष्मी, महा-सरस्वती तथा महाकाली) का प्रतीक है।

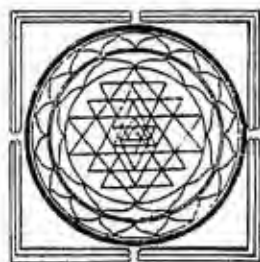
विज्ञान में त्रिकोण को महाशक्तिशाली कहा गया है। यह अपने आधार पर वैसे ही खड़ा रहेगा। टूट भले ही जाये, पर अपने मूल रूप से नहीं बदलेगा।^१

योगी इसे कुण्डलिनी का कमल मानते हैं। तंत्रशास्त्र के अनुसार, त्रिविमीय पदार्थों के अनुभवकर्ता, अनुभवरत और अनुभवी-जगत में त्रिकोण विभिन्नता में एकता का प्रतीक है। अपने आधार पर खड़ा त्रिकोण शिव अथवा शक्तिधारी देव का भाव है तो उसका उल्टा त्रिकोण शक्ति का और उनका स्फुटित स्वरूप, षट्-कोण, दोनों के मिलन का।

षट्कोण (चित्र : १) तंत्र में प्रकृति और पुरुष का सम्मिलित रूप दर्शाता है। इन्हीं दो तत्वों के चारों ओर समस्त विश्व, समस्त अलौकिक विद्या, सम्पूर्ण दर्शन-शास्त्र कार्यरत रहता है। प्रकृति व पुरुष की यह सम्मिलित क्रियाशीलता ही विश्व



चित्र १ : षट्कोण



चित्र २ : श्रीचक्र

के सृजन व विकास की द्योतक है; शुभ फलदायक है।

श्रीचक्र षट्कोण का पूर्ण विकसित रूप है। तंत्र की भाषा में श्रीचक्र सृष्टि क्रिया में कार्यरत समस्त शक्तियों का प्रतीक है। इसको दो लोकों, ऊर्ध्व और अधो लोक, का प्रतीक माना जाता है।^१ दुर्गा, शिव, आदि से सम्बन्धित मण्डल इसी पर आधारित होते हैं, केवल उनके घेरने वाले कमलदलों की संख्या में अन्तर होता है।

श्रीचक्र का एक बहुप्रचलित रूप ऊपर चित्र में दर्शाया गया है (चित्र : २)। यह महानिपुर सुन्दरी का पूजा चक्र है, इसमें चार श्रीकंठ (शिव-ऊर्ध्वशीर्ष त्रिकोण), पांच शिव युवति (शक्ति-अधःशीर्ष त्रिकोण), सभी शम्भु (मध्यबिन्दु) से पृथक्, मूल प्रकृतिरूप, नौ त्रिकोण, सब मिलाकर तैंतालीस-अष्टदल कमल, षोडशदल कमल, तीन बलय (वृत्त), तीन रेखा, तीन रेखाओं वाला चतुष्कोण अथवा भूपुर सम्मिलित है। श्रीविद्या के मत से श्रीचक्र, सृष्टिक्रिया में काम करती हुई सभी शक्तियों का प्रतीक है। इसका उपरोक्त वर्णन 'सौन्दर्य लहरी' के श्लोक ११ में मिलता है।^१

भौगोलिक सिद्धान्त के अनुसार ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण \triangle पर्वत का प्रतीक है तथा

इसी लिए शिव का प्रतीक है। यह अग्नि का भी प्रतीक है क्योंकि अग्नि की रश्मियाँ ऊपर की ओर ही बढ़ती हैं। इसी तरह अधोमुखी त्रिकोण ∇ जल का प्रतीक है क्योंकि जल सदैव ऊपर से नीचे बहता है। साथ ही यह शक्ति का प्रतीक है। इस तरह स्त्री एवं पुरुष के प्रतीक होने के कारण साधारण षटकोण भी सृष्टि का परिचायक है।^{१०}

बिन्दु का विस्तार चतुष्कोण के रूप में स्थिर होता है। यह वृत्त का अस्तित्व मान कर उससे रूप ग्रहण करता है। फैलती हुई शक्ति केन्द्र-बिन्दु से निकल कर वृत्त रूप धारण करती है और चतुष्कोण के रूप में स्थिरता प्राप्त करती है। वृत्त और चक्रेखा बढ़ती हुई जीवनी-शक्ति और गति के चिह्न हैं। चतुष्कोण नियम-बद्धता और बढ़ते हुए जीवन के अन्त और परिपूर्ण रूप का तथा जीवन और मृत्यु के बाद भी परिपूर्णता का चिह्न है। सीमाबद्ध काल इसके अन्दर रहता है। चतुष्कोण पृथ्वी और आकाश का भी प्रतीक है। अंक चार पूर्णत्व के साथ सम्बन्धित माना जाता है। इसको भौतिकता, स्थूलता एवं स्थिरता का प्रतीक माना जाता है।^{११}

चतुष्कोण का शकरपारा रूप क्रियाशील भूत का द्योतक है, जबकि वर्गयुग्म पदार्थों का जीवन दर्शाता है।

वृत्त अनन्त, ब्रह्माण्ड व सम्पूर्णता के प्रतीक के साथ-साथ वायु, आकाश एवं नाद का भी प्रतीक है। यह एक बिन्दु से आरम्भ होकर भँवर की भाँति गति दर्शाता है, इसलिए सदैव गति एवं तनाव से पूर्ण रहता है। इसने अपने रूप बिन्दु से जन्म लिया है, इसलिए तत्त्वार्थ के अनुसार यह चालक पर आश्रित है। तन्त्र शास्त्र में इसे मण्डल के रूप में माना जाता है।^{१२}

चक्र गति, कालचक्र, नियम, सृष्टि, पुनर्जन्म, उत्थान-पतन का प्रतीक है। यह सूर्य या काल का प्रतीक भी माना जाता है। इसे भवचक्र, संसारचक्र या कालचक्र भी कहा जाता है। यह गति का प्रतीक है। इसी दृष्टि से प्राणमय जीवन को जीवन चक्र और विराट विश्व की स्थिति को ब्रह्म चक्र कहा जाता है। बौद्ध धर्म के अनुसार यह धर्मचक्र है। 'भागवत' में विष्णु के इस वृत्त चक्र को सुदर्शन नाम दिया है। सुदर्शन का अर्थ है सुन्दर दर्शन वाला या सुलभ प्रत्यक्ष दर्शन युक्त। अतः काल ही सुन्दर है क्योंकि काल का प्रत्यक्ष दर्शन सबको सदा सर्वत्र हो रहा है। इसी प्रकार जीवन भी सुदर्शन चक्र का रूप है, जिसका दर्शन सबके लिए सुलभ और सुन्दर है। चक्र के साधारणतः आठ अरे होते हैं। ये तंत्र की अष्टप्रकृति है।^{१३}


चारों दिशाओं में व्याप्त विश्वमण्डल के चतुर्भुजी रूप का प्रतीक स्वास्तिक सूर्य से सम्बद्ध है। सूर्य इस का मध्य है। यह मानव और विश्व का सर्वोत्तम मांगलिक चिह्न है। स्वास्तिक की चार भुजाएँ अभय देती हुई भगवान् विष्णु की चार भुजाओं की प्रतीत हैं। बीच के बिन्दु सृष्टि के द्योतक हैं। इसकी आड़ी व खड़ी रेखाएँ स्त्री एवं पुरुष का प्रतीक हैं जिनके संयोग से सृष्टि का चक्र चलता

है। एक किंवदन्ती के अनुसार इसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश और गणेश का मिश्रित रूप भी माना जाता है।

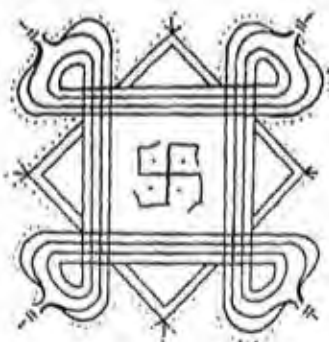
वैदिक धर्म के अनुसार यह चारों दिशाओं एवं उनके देवताओं (अग्नि, इन्द्र, वरुण व सोम) का प्रतीक है जोकि लोकधर्म में चार दिशाओं के लोकपाल माने जाने लगे। स्वास्तिक की चार रेखाओं की तुलना चार पुरुषार्थ, चार वर्ग, चार लोक, चार आश्रम, चार वेद, चार देवों से की गई है।

कुछ विद्वानों के अनुसार यदि स्वास्तिक का संकोचन होने लगे तब यही स्वास्तिक अंत में केवल बिन्दु के रूप में ही रह जायेगा; यही सृष्टि है, जीवन है, संसार है।¹¹

पण्डित बटुकनाथ शास्त्री के अनुसार विघ्न को नष्ट करने वाले गणपति हैं और गणपति का बीजाक्षर 'ग' चतुरंग मण्डल स्वास्तिक ही है। स्वास्तिक को मंगल कार्यों में बनाया जाता है।

स्वास्तिक के सम्बन्ध में एक महान् तथ्य और है कि महाराज अशोक के समय के 'क' अक्षर का आकार + था। उसका अर्थ था ब्रह्मा। इसके साथ ही साथ उसका अर्थ था सुख। इसके अर्थ हुए—क '+' के रूप में 'ना' होकर  के रूप में आ गया और उसका अर्थ वही कल्याणकारी रहा। वैदिक व्याख्या को छोड़कर यह व्याख्या अधिक सरल एवं हृदयग्राही है।¹²

चौक : केवल उत्तर प्रदेश में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारत में इस तरह के चौक घूरने की प्रथा थोड़े-बहुत अन्तर के साथ विद्यमान है। प्रस्तुत चौक (चित्र : ३) उत्तर प्रदेश में प्रायः सभी शुभावसरों पर आटे (गेहूँ-जौ-मैदा) या एपन (पिसे हुए



चित्र ३ : चौक

चावल), हल्दी, मैदा-हल्दी आदि से भूमि पर घर की महिलाएँ अथवा पुरोहित बनाते हैं। व्रत सम्बन्धी कथा-चित्रों में भी यह चौक प्रचुर मात्रा में चित्रित किया जाता है।

इस चौक में बिन्दु, स्वास्तिक, चतुष्कोण, त्रिकोण, पूर्ण कुम्भ, त्रिशूल, आड़ी और खड़ी रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम भूमि को साफ करके गोबर

या गेरू से लीपा जाता है या कभी-कभी लोग भूमि को पानी से धोकर ऐसे ही चौक पूरते हैं। चौक का आरम्भ बिन्दु या बिन्दुओं से किया जाता है। उसके बाद बिन्दु को केन्द्र मानकर स्वास्तिक की रचना की जाती है। तत्पश्चात् स्वास्तिक के चारों ओर चार-चार रेखाएँ खींची जाती हैं। ये चारों रेखाएँ एक-दूसरे को काटती हैं तथा स्वास्तिक को चतुष्कोण द्वारा घेर लेती हैं। चारों रेखाओं के चारों कोनों को पूर्ण कुम्भ के द्वारा सजा दिया जाता है, जिसके ऊपर दो-दो आड़ी व एक-एक खड़ी रेखा खींच दी जाती है। चारों रेखाओं के मध्य में दोहरी रेखाओं वाले त्रिकोण को प्रत्येक दो पूर्णकुम्भ के मध्य बनाया जाता है जिसके शीर्ष को त्रिकोण से जोड़ दिया जाता है। सबसे अंत में बिन्दु चौक के बाहर की ओर प्रत्येक रेखा, पूर्ण कुम्भ व त्रिकोण के कुछ दूरी पर लगाये जाते हैं।

इस तरह चौक का आरम्भ बिन्दु से होता है जो कि सृष्टि का आरम्भ व साकार ब्रह्म का आदि रूप है। इसके बाद एक आड़ी व एक खड़ी रेखा के द्वारा बिन्दु को केन्द्र मानकर स्वास्तिक का निर्माण किया जाता है, जो क्रमशः स्त्री व पुरुष का प्रतीक है जिसके संयोग से सृष्टि चलती है। स्वास्तिक की एक आड़ी व एक खड़ी रेखा बिन्दु पर एक-दूसरे को काटते हुए चार रेखाओं को जन्म देती हैं जोकि चार दिशाओं का बोध कराती हैं, जिसके अधिपति अग्नि, इन्द्र, वरुण व सोम हैं तथा मध्य का बिन्दु सूर्य है जोकि जीवन देने वाला, सृष्टि का रचयिता है। स्वास्तिक का निर्माण ६०, ६० के चार नवतियों या चतुष्कोणों से होता है। इसी को ३६० अष्टो रात्रि या शंकु कहते हैं जिनसे कालचक्र या पृथ्वी के अक्ष-चक्र का स्वरूप बनता है। इसको घेरता हुआ वर्गाकार चतुष्कोण चार रेखाओं द्वारा बनाया जाता है। वह वर्गाकार चतुष्कोण भूपुर अथवा पृथ्वी को दर्शाता है। चतुष्कोण की चारों भुजाएँ चार आश्रमों की प्रतीक हैं तथा प्रत्येक भुजा की चार रेखाएँ चार वर्ग (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्रतीक हैं।

चारों भुजाओं पर लगे हुए चार घड़े के आकार के कोने हैं, जोकि पूर्ण कुम्भ का प्रतीक हैं। यह सुख-सम्पत्ति और जीवन की पूर्णता का परिचायक हैं। घड़े में भरा जल जीवन या प्राण का रस है, मानव ही पूर्ण घट है तथा विराट विश्व भी पूर्ण घट है। इस प्रकार यह पूर्ण कुम्भ ब्रह्मा, विष्णु, महेश का प्रतीक है। चारों भुजाओं के लगे हुए त्रिकोण स्त्री एवं पुरुष के प्रतीक हैं। इस चौक को किसी दिशा में खड़े होकर देखा जाये, आपको एक त्रिकोण, ऊर्ध्वशीर्ष तथा एक त्रिकोण अधःशीर्ष ही दिखाई पड़ेगा। ये त्रिकोण शिव और शक्ति या नर-नारी का प्रतीक हैं। तंत्र के अनुसार दोनों का मिलन ही सृष्टि को जन्म देना है। चारों ओर के बिन्दु सृष्टि के परिचायक हैं।

त्रिकोण के शीर्ष पर बनी हुई रेखा ↓ त्रिशूल का प्रतीक है जोकि सत्व, रजस, तमस गुणों को व्यक्त करता है। पूर्णकुम्भ के ऊपर की बनी दो आड़ी रेखाएँ स्थिरता, निष्क्रियता अथवा मृत्यु व खड़ी रेखा विकास का प्रतीक हैं।

इस प्रकार उत्तर प्रदेश की महिलाएँ वगैरह गूढ़ अर्थ को जाने हुए शताब्दियों से जीवनदाता सूर्य, भूपुर (पृथ्वी माँ), चारों दिशाओं के अधिपति अथवा लोकपाल (अग्नि, इन्द्र, वरुण तथा सोम), पूर्ण कुम्भ के रूप में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, त्रिकोण के रूप में शिव और शक्ति की आराधना व पूजन करती आ रही हैं।

यह चौक सदैव ही शुभ अवसरों पर स्मरण दिलाता है कि प्राणी मात्र को जीवनदाता सूर्य के संरक्षण में पृथ्वी पर रहते हुए, ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करने के बाद, स्त्री व पुरुष के रूप में मिलकर, गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर, धर्म को मान-कर, अर्थोपार्जन कर, काम के रूप में सुयोग्य नागरिकों को जन्म देना चाहिए और सृष्टि करनी चाहिए। गृहस्थ आश्रम के नियमों व कर्तव्यों का पालन करने के बाद आत्मिक विकास के लिए संसार के माया-मोह-काम को त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए जिससे वह संन्यास आश्रम के लिए अपने आप को तैयार कर सके। इस तरह सुख-सम्पत्ति व सन्तान की प्राप्ति के साथ पूर्णता को पाने के पश्चात् विराट् विश्व में अपने को मिला देना चाहिए और संन्यास आश्रम में रहते हुए परम ब्रह्म में लीन होते हुए मोक्ष की कामना करनी चाहिए।

शिव का त्रिशूल जोकि सत्व, रज, और तम के रूप में उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का प्रतीक है, क्षणभंगुर जीवन के जन्म-विकास तथा मृत्यु अथवा बाल्या-वस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था का परिचायक है। यह त्रिशूल हमें सदैव स्मरण दिलाता रहता है कि जो जन्म लेता है वह एक दिन मृत्यु को अवश्य ही प्राप्त करता है। इसलिए दोनों ही शुभ हैं।

पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश एवं वायु आदि पाँच तत्वों से मिलकर इन्द्रियों तथा अन्तःकरण के साथ मानव एक शिशु रूप में पृथ्वी पर जन्म लेता है, बड़ा होता है, समाज की रचना, कल्याण एवं विकास में अपना योगदान देता है और एक दिन मृत्यु को प्राप्त कर इन्हीं पंच तत्वों में समा जाता है। मानव जीवन तो संसार-रूपी समुद्र में एक बूंद की भाँति है, इसलिए सद् कर्मों के साथ ही जीवन व्यतीत करना चाहिए और मोक्ष प्राप्ति की कामना करनी चाहिए जिससे जन्म एवं मरण के आवागमन से मुक्ति पा सके।

अतः हम कह सकते हैं कि यह चौक उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय के रूप में सम्पूर्ण मानव-सृष्टि की रचना का बोध कराता है, जिसका केन्द्र-बिन्दु सूर्य है, परब्रह्म है।

भारतीय दर्शन ही नहीं वरन् सम्पूर्ण संसार के वैज्ञानिक तथा भूगोलवेत्ता भी सूर्य को ही सम्पूर्ण सौरमण्डल का जीवनदाता मानते हैं। पृथ्वी भी इसी सौर-मण्डल का एक ग्रह है जोकि जीवन से, सृष्टि से भरपूर है। इसलिए यदि महिलाएँ प्रत्येक शुभ दिन चौक के रूप में जीवनदाता सूर्य और उसकी सृष्टि की पूजा करती हैं तो क्या आश्चर्य? सूर्य के बिना जीवन असम्भव है। सूर्य ही जीवन का प्रतीक है।

श्री श्यामसुंदरदास जी ने ओ३म् को ओंकार तथा ओंकार को परमात्मा का सूचक माना है। जनसाधारण में भी ओ३म् को ईश्वर का प्रतीक ही माना जाता है और उसका एक आकार भी माना है। आर्यसमाजी ओ३म् को एकमात्र शक्ति मानकर इसकी आराधना करते हैं। ये सगुण ब्रह्म या अवतार में विश्वास न करके केवल सर्वशक्तिमान ओ३म् में ही विश्वास करते हैं परन्तु उनका ओ३म् सनातनधर्मियों की भाँति विशेष आकार का न होकर केवल ओ३म् है।

समस्त धार्मिक कृत्यों में इस चिह्न का अंकन विशेष महत्व रखता है। अनेक चौकियों तथा चित्रों में ओ३म् की आकृति का भी प्रयोग किया जाता है। अनेक त्र्योहारों से सम्बन्धित चित्रों में भी इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक मन्दिर में इस आकार का अंकन मिलता है। ओ३म् का अंकन गेरू, रोली तथा हल्दी से किया जाता है।

डा० जनार्दन मिश्र के शब्दों में ओंकार के दो रूप हैं : समस्त और व्यस्त। समस्त रूप में यह ब्रह्म या पराशक्ति का वाचक है और अर्द्धमात्रा-समेत ॐ का शब्द ब्रह्म का प्रत्यक्ष रूप होने के कारण, इसमें और परब्रह्म में कोई भेद नहीं रह जाता।

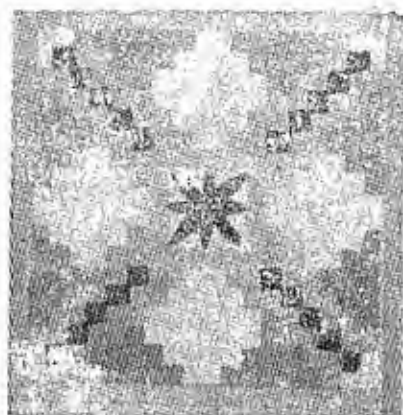
अ, उ, म के व्यस्त रूप में यह नाम रूपात्मक सृष्टि जगत् का वाचक बन जाता है और यह त्रिगुण तथा गुणाभिमानी त्रिवेद (रजस=ब्रह्मा, सत्व=विष्णु, तमस=महेश) आदि का द्योतक बन जाता है। त्रिगुण तथा त्रिदेव के, ब्रह्म के भिन्न रूप होने के कारण यह प्रणव, समस्त और व्यस्त रूप में ब्रह्मवाची है।

ओंकार अकारादि वर्णों के द्वारा त्रयी तीन वृत्ति (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) त्रिभुवन और त्रिवेद के रूप में आपके व्यावृत्त (व्यस्त=अलग किये हुए) रूप का बोध कराता हुआ है शरणद ! सूक्ष्म से सूक्ष्म ध्वनि द्वारा आपके चतुर्थ स्थान (तुरीय धाम) का बोध कराने में असमर्थ है और आपके समस्त और व्यस्त रूप का कथन करता है।

यहाँ शिव महिमतकर ने ॐ को ब्रह्मा का वाच्य और वाचक दोनों कहा है। व्यस्त रूप में ॐ ब्रह्म का वाचक रहता है पर समस्त रूप में वाच्य और वाचक एकाकार हो जाते हैं।"

सर्वतोभद्र की पूजा किसी भी मांगलिक कार्य में होती है। इसको भूमि पर या चौकी पर, कभी सूखे रंग तथा कभी विभिन्न दालों से बनाया जाता है। सौन्दर्य वृद्धि के लिए अभ्रक का भी प्रयोग किया जाता है। समस्त धार्मिक अनुष्ठानों, उत्सवों व संस्कारों के अवसर पर जब भी तैंतीस करोड़ देवताओं का आशीर्वाद ग्रहण करने की बात होती है, इसी को बनाया जाता है। सर्वतोभद्र (चित्र: ४) चतुर्मुखी मंदिर का भी द्योतक है। मंदिर इसी लिए पवित्र और मंगलकारी माना जाता है चूँकि वहाँ देवी-देवता अपने विभिन्न विग्रहों में निवास करते हैं।"

क्षेत्रपाल को शिव का रूप माना जाता है। जब देवी के जप किये जाते हैं तभी

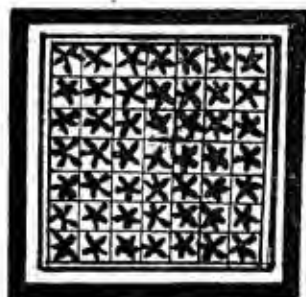


चित्र ४ : सर्वतोभद्र

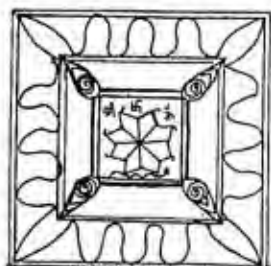
क्षेत्रपाल पड़ा। क्षेत्रपाल को इसी लिए भैरव भी कहते हैं। क्षेत्रपाल की आकृति की स्थापना इसलिए की जाती है जिससे किसी भी शुभ कार्य में कोई विघ्न-बाधा परेशान न करें।¹⁴

मृत्युंजय (चित्र: ६) की आकृति की रचना किसी भी लाघव विघ्न से मुक्ति पाने की इच्छा हेतु बनाई जाती है। शिव स्वभावतः सौम्य और कल्याणमय हैं क्योंकि सृष्टि और स्थिति उनकी स्वाभाविक इच्छा है। शिव के शान्त रूपों में मृत्युंजय रूप अधिक प्रसिद्ध है—आधि-व्याधि की शांति के लिए परब्रह्म के इस रूप की उपासना की जाती है।¹⁵

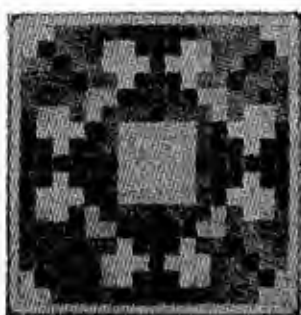
चतुर्लिंगतोभद्र (चित्र: ७) चक्रम की आकृति का बनाना व पूजा करना चारों दिशाओं से आशीर्वाद प्राप्त करना है। सर्वतोभद्र के साथ ही इसकी आकृति को एक साथ दो चौकियों पर बनाते हैं। रेखाओं को चावल से या मिश्री से बनाते हैं।



चित्र ५ : क्षेत्रपाल



चित्र ६ : मृत्युंजय



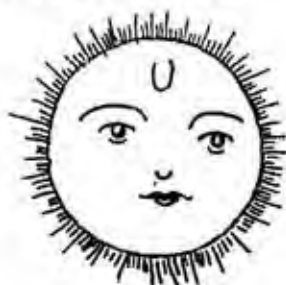
चित्र ७ : चतुर्लिंगतोमर



चित्र ८ : सप्तध्रत मातृका चक्रम

17	13	9	5
16	12	8	4
15	11	7	3
14	10	6	1+2

चित्र ९ : षोडश मातृका चक्रम



चित्र १० : सूर्य

तथा सुंदरता में श्रीवृद्धि करने के लिए अक्षर का प्रयोग भी करते हैं।

पूर्व षोडश मातृका चक्रम को देवी की आराधना के हेतु बनाया जाता है। इसको एक वर्गाकार में बनाया जाता है। वर्ग को सोलह खानों में बांट दिया जाता है और सभी खानों को पीले रंग से रंग लिया जाता है। प्रत्येक खाने में अलग-अलग देवी की स्थापना की जाती है किन्तु प्रथम खाने में १ व २ अर्थात् गणेश तथा गौरी की स्थापना की जाती है (चित्र: ८)। तत्पश्चात् पद्मा, शची, मेघा, सावित्री, विजया, जया, देवसैन, स्वधा, स्वाहा, मातर, लोक मातर, धृति, पुष्टि, तुष्टि तथा अन्त में आत्मनः कुलदेवता की स्थापना की जाती है। देवी की आराधना हेतु ही इसके चित्र को बनाने का प्रचलन है।

सप्तध्रत मातृका चक्रम : नवरात्रि शारदीय और वासन्तीय दोनों में देवी की आराधना हेतु सप्तध्रत मातृका चक्रम को बनाया जाता है। यह एक त्रिभुज के आकार में सात-सात बिन्दुओं की सहायता से घी और सिन्दूर से बनाया जाता है। प्रत्येक रविवार को जिस भी देवी का पूजन किया जाता है तभी इसकी रचना की जाती है, जो इस प्रकार हैं—ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्री, कौमारी, वाराही, इन्द्राणी, चौमुण्डा।¹⁹ 'ऋग्वेद' के अनुसार मूलभूत मातृशक्ति अदिति के रूप में है (चित्र: ९)।

यही अविति एक, तीन, दस और सोलह रूपों में भी पूजनीय है ।¹⁶

बिन्दु, त्रिकोण, षटकोण, वृत्त, आयत, वर्ग, चक्र तथा स्वास्तिक के साथ-साथ ओ३म् तथा अन्य प्रकार की रेखाएँ एवं अभिकल्प भी आलेखन बनाने के काम आते हैं जिनके अपने गूढ़ अर्थ होते हैं ।¹⁷

— तिरछी रेखा गति को दर्शाती है ।

X एक दूसरे को काटती हुई रेखाएँ युद्ध का प्रतीक हैं ।

* तारा शक्ति का प्रतीक माना जाता है ।

↓ दोनों दिशाओं में बढ़ती रेखाएँ विकास का प्रतीक होती हैं ।

| सीधी या खड़ी रेखा सक्रियता, गति और आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है ।

— आड़ी या पड़ी रेखा निष्क्रियता व स्थिरता को दर्शाती है ।

— समकोण पर काटती रेखाएँ आध्यात्मिक उदासीनता व स्थिरता को दर्शाती हैं ।

ॐ यह उल्लास का प्रतीक है ।

चार महाभूतों को निम्नांकित आलंकारिक प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया गया है :

९९९९९९ = जल

~~~~~ = वायु

~~~~~ = अग्नि

□□□□□ = पृथ्वी

इस तरह लोककला में विभिन्न प्रकार के अभिकल्प बिन्दु, त्रिभुज, विभिन्न प्रकार की रेखाएँ, वर्ग, स्वास्तिक आदि से बनाये जाते हैं और उनमें विभिन्न प्रकार के रंगों को भर दिया जाता है जिनके प्रतीकात्मक अर्थ नीचे दिये जा रहे हैं ।

शुभ्र या श्वेत = सत्व, लाल = रजस, व काला = तमस् को दर्शाता है । इसके अतिरिक्त पीला रंग पुष्पशीलता का द्योतक है और सुवर्ण व लक्ष्मी का रंग होने के कारण राजसी रंग है । लाल रंग रुधिर का रंग होने से अत्यन्त उत्तेजक और प्रवर्तक है । अग्नि और सूर्य की उष्णता में भी यह व्याप्त है, अतः क्रोध, वीरता और जीवनीशक्ति को इसके द्वारा व्यक्त किया जा सकता है । नीला रंग अत्यन्त सुखप्रद है । रंगों में यह वैसे ही प्रमुख माना गया है, जैसे तत्वों में वायु । आकाश का रंग होने के कारण विशालता का भी द्योतक है । हरा रंग हृदय को शीतल अनुभूति देने वाला है । प्रकृति में यह सर्वाधिक व्याप्त है । इसका प्रभाव आँखों व

मस्तिष्क के लिए अत्यन्त हितकर है। आयुर्वेद की दृष्टि से हरा रंग प्रमोद-प्रसारक, आनन्ददायक एवं स्वास्थ्यवर्धक है। बैंगनी रंग भी आकर्षण में राजसी रंग कहा गया है। इसमें लाल व नीले रंग का मिश्रित गुण है। नारंगी रंग पीले व लाल का मिश्रित गुण लिए हुए है, अतः वैराग्य का प्रतीक है। काला रंग यों तो अन्धकार का रंग होने के कारण अशुभ माना जाता है, पर इसे 'नखर' (बुरी दृष्टि) से बचाने व सौन्दर्य में वृद्धि करने के लिए चित्रों में प्रयोग किया जाता है।^{१०} लोक सांस्कृतिक कला में न केवल ज्यामितिक अभिकल्पों का पूजन किया जाता है वरन् सूर्य, चन्द्र, तारा, नवग्रह, विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, फल-फूल और देवतागणों को भी अनेक प्रकार के आकारों में स्थापित कर उनका पूजन किया जाता है।

जब से मानव का जन्म हुआ और बुद्धि का विकास हुआ, उसमें अपने को बचाने की प्रवृत्ति का दिनोंदिन विकास होता गया। मानव प्रकृति को सदा अपने से अधिक शक्तिशाली मानता रहा है और उसकी विचित्र शक्ति से अभिभूत भी होता रहा है। इसी के फलस्वरूप प्रकाश, अग्नि, मेघ, वर्षा, पृथ्वी, आकाश आदि की पूजा प्रारम्भ हुई। प्राकृतिक शक्तियों (सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र) की पूजा देवता के रूप में आरम्भ हुई। इसी के साथ-साथ अनेक देवी-देवताओं की उत्पत्ति हुई। मानव की तीन स्वाभाविक अवस्थाएँ जन्म, विकास और मृत्यु के भी देवता अलग-अलग माने जाने लगे, जोकि आज भी ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में हमारे सामने हैं। विघ्न को दूर करने के लिए गणेश, धन प्राप्ति के लिए लक्ष्मी, विद्या-प्राप्ति के लिए सरस्वती का पूजन भी आरम्भ हुआ। परिवार में सुख व सौभाग्य के लिए माँ गौरी की आराधना प्रारम्भ हुई। दैनिक जीवन में काम आने वाले पशु जैसे गाय, बैल, भैंस, मेष, घोड़ा, हाथी तथा अपने गुणों व सौन्दर्य के कारण तोता, मैना, मोर, हंस, गरुड़ आदि की भी आराधना प्रारम्भ हुई। किसान के मित्र साँप का भी पूजन प्रारम्भ हुआ—प्रथम तो डर के कारण तथा द्वितीय मित्र होने के कारण।

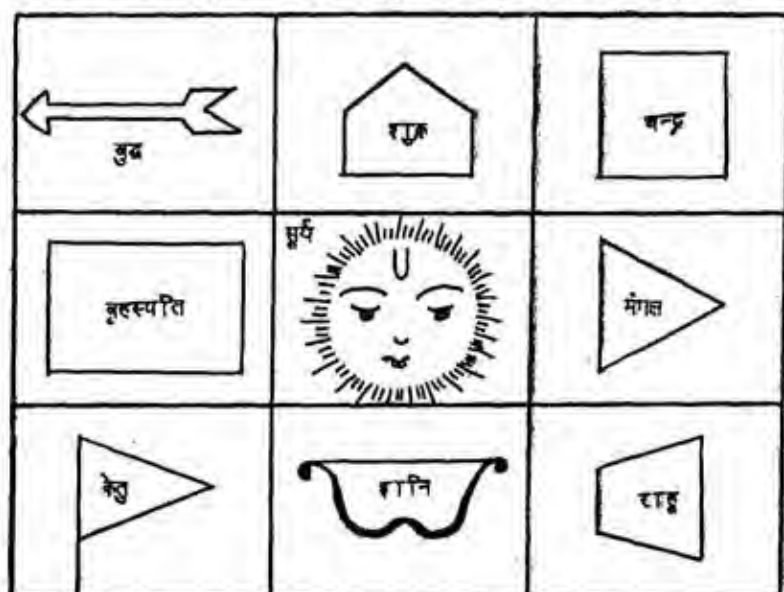
सूर्य, सृष्टि के अधिष्ठाता सत्यात्मक पूजन का, सर्वोत्तम प्रतीक है (चित्र १०)।



चित्र ११ : चन्द्र

वेदों में कहा गया है कि सूर्य के रूप में त्रयी विद्या तपती है। यज्ञ तौर साम ही त्रयी विद्या है और इसी त्रयी विद्या के प्रतीक भूर्भुवः स्वः हैं। इसी त्रयी विद्या की समष्टि को वैदिक भाषा में सत्य कहा गया है। सत्य ही सृष्टि का मूल है, सर्वत्र सत्य की महिमा परिलक्षित होती है, सत्य के बल से सूर्य तपता है, सत्य के बल से पृथ्वी की स्थिति है, सत्य ही परम धर्म है।^{११}

सूर्य व चन्द्र (चित्र : ११) दोनों के गुणों में अन्तर है। अथर्ववेद ने इन्हें अग्नि के दो रूप बताया है। सूर्य को 卐 के रूप में विभिन्न अवसरों पर भूमि या भित्ति अलंकरणों में प्रयोग में लाते हैं। सूर्य स्वयं प्रकाश, ध्रुव और अपरिवर्तनीय है, पर चन्द्र परतः प्रकाश एवं क्षय-वृद्धि से युक्त है। सूर्य उच्च विज्ञान या बुद्धि का प्रतीक है और चन्द्र इन्द्रियानुगामी मन का प्रतीक। सूर्य और चन्द्र के साथ सौर-मण्डल के अन्य ग्रहों व उपग्रहों की पूजा का विधान है (चित्र : १२)। ज्योतिष



चित्र १२ : नवग्रह बंदी

शास्त्र के अनुसार नवग्रहों में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु व केतु आदि की गणना की गई है। सांसारिक ऐश्वर्य, सुख-समृद्धि एवं शांति की प्राप्ति के लिए नवग्रहों की पूजा सदा से होती आ रही है। मुनि याज्ञवल्क्य ने स्वर्ण, रजत आदि के पट्ट पर नवग्रहों की स्थापना कर उनकी पूजा का आदेश दिया है।^{१२} एक पौराणिक कथा के अनुसार देवताओं की सभा में राहु-केतु राक्षस चुपचाप जाकर बैठ गया और देवताओं की सभा में गणना हो गई पर जब देवताओं को मालूम पड़ा तब उन्होंने उसका सिर व घड़ अलग कर दिया। तभी से यह

अलग-अलग घूम रहे हैं और झूर देवता होने के कारण पूजे जाते हैं। शनि, राहू व केतु को काले रंग से, बुध को हरे, बृहस्पति पीले, सूर्य व मंगल लाल रंग, शुक्र व चन्द्रमा को सफेद रंग से बनाया जाता है। कभी-कभी केतु सलेटी, शनि नीले व राहू काले रंग से बनाये जाते हैं।^{११}

चन्द्रमा को अर्घ्य देकर पूजन करने व उपवास खोलने की प्रथा भारत के बहुत से त्यौहारों में है, यथा—करवा चौथ, चन्दन छठ, संकट चौथ, शरद पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा व होली।

पंच तत्व पूजन

मनुष्य का पार्थिव शरीर, मिट्टी, जल, अग्नि, गगन व समीर से बना है जिनको हम पाँच तत्व कहते हैं। इन पाँचों को देवता के रूप में पूजते हैं। जैसे—धरती माता, जल देवता, अग्नि देवता, वरुण व सूर्य देवता आदि।^{१२}

पृथ्वी गुणों की खान है। सहनशीलता, निष्काम काम करने की प्रवृत्ति और सभी प्राणियों का माँ की तरह पालन करने की क्षमता ऐसे गुण हैं जिनके कारण आदिकाल से ही धरती की पूजा करने की परिपाटी चली आई है। मिट्टी के गणेश जी बनाकर पूजन करने के पीछे भी धरती को पूजने की ही भावना है।

अग्नि पवित्र है, इसलिए अग्नि को ईश्वर का प्रतीक मानते हैं। यह यज्ञ का भी प्रतीक है। हिन्दू समाज में प्रायः सभी उत्सवों, त्यौहारों व रीति-रिवाजों में अग्नि को किसी-न-किसी रूप में पूजने की प्रथा है। प्रत्येक वस्तु को अग्नि से ही शुद्ध और परिष्कृत करते हैं तथा अग्नि को साक्षी मान सभी शुभ कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

जल चेतना का प्रतीक है। पश्चिमी दिशा के अधिपति वरुण इसके देवता हैं। जल में पवित्र करने की क्षमता है, इसी लिए सागर, नदी, कुएँ, तालाब, झरने आदि सभी को पूजने की प्रथा शताब्दियों से चली आ रही है।

पूर्ण कुम्भ की स्थापना प्रत्येक संस्कार के समय अनिवार्य होती है। फूल-पत्तियों (विशेष रूप से आम की पत्तियों) से इसे सजाया जाता है। स्वास्तिक बनाये जाते हैं। पूर्ण घट सुख, सम्पत्ति और प्राण का रस है, उसके मुख पर लहराती हुई पत्तियाँ और पुष्प जीवन के नानाविध आनन्द और उपभोग है। मानव, विराट विश्व दोनों ही पूर्ण घट सदृश हैं।^{१३}

देवी-देवता

सम्पूर्ण सृष्टि की अवस्थाएँ एवं रूप—स्थिति, गति और अगति में—दृष्टि-गोचर होते हैं। सत्व गुण, रजोगुण तथा तमोगुण की ही माया के द्वारा सृष्टि, स्थिति व प्रलय के रूप प्रकट होते हैं और इन्हीं गुणों को धारण करने वाले तीन देवता, ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। यही त्रिमूर्ति तीन अवस्थाओं—बाल्यावस्था, युवा-

वस्था तथा वृद्धावस्था, तीन आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ व संन्यास को व्यक्त करती है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा तीन शक्तियाँ

ब्रह्मा का कमण्डलु, काषाय वस्त्र, अक्षमाला, वेद-ज्ञान सभी ब्रह्मचारी के लिए आवश्यक व्रत धारण करके आगामी जीवन की रचना करता है। ब्रह्मा के साथ ही सरस्वती भी सृष्टि की उत्पत्ति में सहायता देती है। इनको श्वेत वस्त्रों से सुशोभित अक्षमाला, अण्डकुश वीणा व पुस्तक धारण करते हुए दिखाया जाता है। यह सत्त्वप्रधान ज्ञान व विद्या की देवी मानी गई हैं।¹²

विष्णु गृहस्थाश्रम के प्रतीक हैं। एक आदर्श गृहस्थ की भाँति अच्छी वेश-भूषा व आभूषण धारण करते हुए सम्पूर्ण सृष्टि का पालन करते हुए प्रसन्नता से जीवन-यापन करते हैं। विष्णु के कितने ही रूपों का भारतीय जन संस्कृति में पूजने योग्य स्थान है। राम, कृष्ण व बलदेव इनमें मुख्य हैं। प्रायः सभी त्यौहार इन्हीं पर आधारित हैं। काव्यों, महाकाव्यों की रचना का आधार भी ये ही चरित्र हैं। विष्णु की शक्तियों में दुर्गा, काली, भद्रकाली, लक्ष्मी, नारायणी प्रमुख हैं जिनसे सम्बन्धित त्यौहार भी भारतीय संस्कृति में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। विष्णु का अस्तित्व लक्ष्मी के बिना अधूरा है।¹³ लक्ष्मी का—श्री, कमला, गजलक्ष्मी व महालक्ष्मी—रूप सर्वमान्य है। विष्णु अर्थ हैं तो लक्ष्मी वाणी। विष्णु न्याय है तो लक्ष्मी नीति। विष्णु धर्म हैं तो लक्ष्मी सतक्रिया भू देवी सभी औषधिपूर्णा।

शिव का आकार, वेश-भूषा, उनकी जटाएँ, भस्म लेप सभी संन्यासाश्रम के प्रतीक हैं। भारतीय संन्यासी की भाँति वे बाघम्बर पहनते, त्रिशूल धारण करते व जटाएँ रखते हैं। योगी के समान वह अर्द्धनगनावस्था में रहते हैं। अतः शिव संन्यासाश्रम के प्रतीक हैं। मोहन-जोदाड़ो सभ्यता से लेकर अब तक किसी-न-किसी रूप में शिव की आराधना होती आई है। यह सबसे प्राचीन देवता हैं। इनके अनेक नाम हैं, जैसे—शंकर, पशुपति, भोलानाथ, शिव, नीलकण्ठ, महादेव और शम्भू। यह राजा व रंक दोनों को प्रिय हैं और उनके इष्टदेव हैं। इनका पूजन लिंगपूजन तथा मानवी प्रतिमा दोनों ही रूप में होता है। इनका काम संहार करना है। शिव का अर्द्धनारीश्वर रूप शैव व शाक्त धर्म का पालन करने वालों में तथा हरिहर का रूप वैष्णव¹⁴ तथा शैव सम्प्रदाय में एकता स्थापित करता है। शिव का वाहन नन्दी धर्म का प्रतीक है।¹⁵

शिव की शक्ति पार्वती भी अत्यन्त लोकप्रिय देवी हैं और बहुत ही दयालु प्रकृति की हैं। स्त्रियों को सुख-सौभाग्य प्रदान करने वाली हैं। कुमारी व सुहागिन स्त्रियों के अनेकों त्यौहार व पूजा-पाठ इनसे सम्बद्ध हैं।

कार्तिकेय तथा गणेश शिव जी के पुत्र हैं। गणेश जी को अपनी पितृ-भक्ति के कारण सदैव आरम्भ में पूजने योग्य स्थान मिला है। प्रत्येक मांगलिक कार्य गणेश

जी की स्थापना से ही प्रारम्भ होता है।

उपरोक्त देवी-देवताओं और उनके अनेक रूपों के साथ-साथ भारतीय जन संस्कृति में कुछ लोक देवता भी हैं, जिनका पूजत भी समय-समय पर होता है। प्रत्येक परिवार का एक कुल देवता भी होता है। ऐसा विश्वास है कि यह कुल देवता व लोक देवता मानव के दुख को दूर करते हैं और मंगल कार्यों में आने वाली विघ्न-बाधाओं को नष्ट करते हैं।

पशु-पक्षी

लोक मानव के जीवन में जो जितना अधिक सहयोग देता है, वह उतना ही उसका पूज्य है। भारतीय संस्कृति पशु-पक्षियों को भी मनुष्य के समान पूज्य समझती है। इसी लिए अनेक पशु-पक्षियों की उपयोगिता इन देवी-देवताओं के वाहन के रूप में है, जैसे हाथी, चूहा, गरुड़, बैल, बानर, घोड़ा, हंस व मोर आदि।

सभी देवी-देवता गाय के शरीर में व्याप्त हैं, इसी लिए सभी पशु-पक्षियों में गाय सबसे अधिक पूज्य है ऐसा सर्वमान्य विश्वास है। अतः 'गोघ्रास' या 'गोदान' की प्रथा का हिन्दुओं में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। गाय के गोबर तथा गोमूत्र का औषधिशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है।

हाथी—इन्द्र का वाहन है, गणेश जी से इसका मुख्य सम्बन्ध है। यह शक्ति, विद्वत्ता तथा दृढ़ता का प्रतीक है। हाथी ऐश्वर्य का भी प्रतीक है और ऐश्वर्य के रक्षक एवं सेवक के रूप में इसका अंकन गज-लक्ष्मी के चित्रों एवं प्रतिमाओं में अविकल रूप से हुआ है। इसकी उत्पत्ति जल से मानी जाती है। इसी से हाथी को समुद्र के चौदह रत्नों में स्थान मिला है। कमल के साथ भी इसका सम्बन्ध कल्पित किया गया है। मेघों एवं वीर पुरुषों की गर्जना, वीरों का द्वन्द्वयुद्ध और मस्तीभरी चाल की उपमा हाथी से दी गई है।¹⁰

वृषभ—यह शिव का वाहन तथा कृषकों का बंधु है। इसे भूमि, आर्द्रता, स्वर्ग, पिता आदि का भी प्रतीक माना गया है। वैदिक देवता सूर्य को सौर वृषभ माना जाता था। शक्तिशाली पुरुषों तथा अविवाहित स्वस्थ युवकों की उपमा भी वृषभ से दी जाती है। सिन्धु घाटी कला की मुद्राओं, मौर्यकालीन स्तम्भों, अजन्ता और बाघ के गुफा चित्रों तथा पत्ताबलियों में वृषभ-चित्र अंकित मिलते हैं।¹¹

अश्व—इसको शक्ति का प्रतीक माना गया है। जल में से अश्व की उत्पत्ति के द्वारा अंतरिक्ष में से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को प्रस्तुत किया गया है। मानसिक रूप में यह उद्दाम वासना का प्रतीक है। इसी से भारतीय नीति में इन्द्रियों को 'घोड़े' माना जाता है। यह सूर्य, चन्द्र, शुक्र एवं बृहस्पति के वाहन के रूप में प्रसिद्ध है। आज्ञाकारी तथा स्वामिभक्ति के साथ ही साथ अपनी गति तथा बल के लिए भी प्रसिद्ध है। वैदिककाल से ही राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ होते आये थे। वाल्मीकि रामायण तक का विवरण तो हमारे सामने है ही, मध्यकाल में इसे राज्य शक्ति

और बर्बरता का प्रतीक माना जाता था ।¹³

बानर—मानव का आदि पुरुष पुरुषा बुद्धिमान है । हनुमान के वंशज होने के कारण पूज्य व मान्य है । इनको दूत कहा गया है, इनके दर्शन शुभ माने जाते हैं ।¹⁴

काला कुत्ता—यों तो कुत्तों की स्वामिभक्ति प्रसिद्ध है पर काला कुत्ता भैरों का वाहन माना जाता है । माता की पूजा के दिन इसे जिमाते हैं । कुत्ते का चित्रण गोवर्द्धन के दिन भी किया जाता है ।¹⁵

सर्प—इनको लोकधर्म का देवता माना गया है । अपने विभिन्न कार्यों और रूप के विभिन्न पक्षों के आधार पर इनकी प्रतीकात्मकता अनेकानेक है । उदाहरणार्थ सर्प तीव्र गति, मार्ग की कठिनता का सूचक है । इसका कैंचुली छोड़ना, आत्मा का बन्धन त्यागना माना गया है । गुप्त वैभव को भी भारत में सर्प-प्रतीक माना गया है । भारतीय योग विद्या में इसे कुण्डलिनी के रूप में आत्मोन्नति का प्रतीक माना गया है । नागपाश सांसारिक मोह का प्रतीक है । नाग के सहस्र फन मानवीय अचेतन की सहस्रच्छाओं के प्रतीक हैं । संक्षेप में, यह इच्छाओं, जल, शक्ति, काल, तम, स्थान व अनन्त का प्रतीक माना गया है । शिव के गले का हार भी सर्प है । यह विष्णु, राम-कृष्ण, बुद्ध आदि के साथ किसी न किसी रूप में जुड़े हैं ।¹⁶

गरुड़—पक्षियों में गरुड़ अत्यन्त प्राचीन प्रतीक है । विष्णु का वाहन और सर्पों का शत्रु है । यह सूर्य एवं आध्यात्मिकता को व्यक्त करता है । इसको दिन अच्छा लगता है । वैदिक भावना के अनुसार यह सन्देशवाहक भी है । भगवान तक सबकी सूचनाएँ पहुँचाता है ।¹⁷

शुक—इसका अंकन भारतीय प्रेम-प्रसंगों में हुआ है । यह कामदेव का वाहन है और शृंगार का प्रतीक । रहस्यवादी साधना में यह गुरु का भी प्रतीक है । प्रेम का अवलम्बन माना जाता है । तोता व मैना की कथाओं से हमारा साहित्य भरा पड़ा है ।¹⁸

मयूर—यह कार्तिकेय तथा वीणावादिनी (सरस्वती) का वाहन है । भगवान् कृष्ण से सम्बन्धित है । अपने सौन्दर्य व नृत्य के लिए प्रसिद्ध है । मोर प्रेम का भी प्रतीक है । कोहबर में मोर का चित्रण करने का अभिप्राय है कि जिस प्रकार मयूर मयूरी के प्रेम में लीन होकर नाचता रहता है, वैसे ही वर भी वधू के प्रेम में विह्वल हो आनन्दमग्न रहे । यह साँप को मार डालता है, इसलिए ज्ञान का भी प्रतीक माना गया है । छपाई-कड़ाई व विभिन्न प्रकार के अलंकरणों में इसको विविध रूपों में चित्रित किया जाता है ।¹⁹

हंस—हंस को नीर-शीर विवेकी माना जाता है । यह ज्ञान और निर्मलता का प्रतीक है और ब्रह्मा व सरस्वती का वाहन है । प्रेम-प्रसंगों में यह दूत अथवा सन्देशवाहक बनकर आया है । श्वेत वर्ण के कारण हंस आत्मा, ऊर्ध्वगति का भी प्रतीक है ।²⁰

कपोत—इसे शान्ति का प्रतीक माना गया है। यह सन्देशवाहक भी है। कपोत-धुम्म को शृंगार प्रतीक बनाकर प्रेम-प्रसंगों में अंकित किया गया है। यह सबकी अपेक्षा सीधा पक्षी माना गया है। इसके पंखों की हवा बच्चों के लिए स्वास्थ्यप्रद है और सुखी दाम्पत्य जीवन का प्रतीक है।^{१०}

कौवा—पितृपक्ष में बहुत ही अधिक पूजनीय हो जाता है। इन दिनों कौवे को शास दिया जाता है। कौवे के द्वारा विरहिणी अपने बिछुड़े पति को संदेश भी भिजवाती है। सुबह-सुबह काग का बोलना किसी स्वजन-सम्बन्धी के आने की सूचना देने वाला होता है। इसे शकुन विचार का प्रतीक माना गया है।^{११}

मीन—इसे सुख-सौभाग्य सुख-सम्पन्नता का प्रतीक माना जाता है। मीन को मीन-मिश्रुन के रूप में जगह-जगह चित्रित किया गया है। यह सृष्टि के उद्बोधक दम्पति व सुन्दरता का प्रतीक है। कामदेव के मन्दिरों की यह पताका है।

उलूक—उलूक (उल्लू) लक्ष्मी का वाहन है। यह मृत्यु, रात्रि, शीत एवं निष्क्रियता का प्रतीक माना गया है। अस्त हुए सूर्य का भी यह प्रतीक है। कभी-कभी यह बुद्धि का भी प्रतीक माना गया है क्योंकि अंधकार में भी इसे देखने की शक्ति प्राप्त है।

वनस्पति पूजन

प्रकृति-जीवन से भिन्न नहीं अपितु इसका जीवन से गहन सम्बन्ध है। स्त्री-समाज में वनस्पति पूजन का बहुत महत्व है। यद्यपि इसका आधार वैज्ञानिक है परन्तु स्त्रियाँ तो इसको परंपरागत आस्था के रूप में मनाती आ रही हैं। किसी वृक्ष को संतान देने वाला, तो किसी को सुख-सौभाग्य प्रदान करने वाला, तो किसी को मनोभिलाषा पूर्ण करने वाला मानकर उसकी पूजा करती हैं। सामान्यतः वृक्ष से सृष्टि-जीवन, उत्पत्ति, विकास तथा उत्पादन-पुनरुत्पादन का सिद्धान्त व्यक्त होता है। ये जीवन की निरन्तरता के सूचक हैं।^{१२}

अशोक—यौवन को स्थायी रखने वाला कहा जाता है, चिर यौवन का प्रतीक है।^{१३}

पीपल—यह परम पवित्र वृक्ष है, इसके ऊपर ब्रह्मा, विष्णु व महेश का निवास माना जाता है। पीपल के वृक्ष को शनिवार को पूजने का विधान है क्योंकि इस दिन सभी देवताओं का निवास इस पर ही होता है। इस वृक्ष को दाम्पत्य-प्रेम को बढ़ाने वाला, संतान देने वाला तथा प्रेत-बाधा से मुक्ति प्रदान करने वाला माना जाता है।^{१४}

बरगद या बटवृक्ष—यह अपनी आयु व विशालता के लिए शताब्दियों से प्रसिद्ध है। प्रलय के समय भी यह जल में निमग्न होने से बचा रहा। इसकी पत्तियों में भगवान बाल रूप में विराजते हैं। अनेक बीमारियों में इसके दूध का प्रयोग होता है। यह बट-सावित्री व बड़-अमावस्या के दिन पूजा जाता है।^{१५}

नीम—शीतला देवी का निवास स्थान माना जाता है। वायु की शुद्धि व कीटाणुओं को मारने की इसमें अद्भुत क्षमता है। इसकी छाया बहुत शीतल होती है।^{११}

बेलपत्र—श्रीफल को संस्कृति में 'बिल्व' कहते हैं। बेल उसी का अपभ्रंश है। भगवान् शिव की पूजा के लिए इसका प्रयोग होता है। श्रावण मास में शिव-प्रतिमा पर यह बेलपत्र सम्पूर्ण मास चढ़ाये जाते हैं। इसी मास शिव की पूजा का विधान है। मृत व्यक्तियों को जलाने में इसकी लकड़ियाँ काम आती हैं। विभिन्न प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियों में भी इसका प्रयोग होता है।^{१२}

आंवला—इस वृक्ष की पूजा कार्तिक मास की अक्षय नवमी के दिन होती है। इसको सुख-सौभाग्य व संतान देने वाला माना जाता है। आंवले के फल का उपयोग अनेक रोगों में भी किया जाता है। यह शीतल होता है।

केला—प्रायः स्त्रियाँ प्रत्येक बृहस्पतिवार को सौभाग्य और सन्तान की कामना के लिए केले के वृक्ष का पूजन करती हैं। केले के एक ही चरखे पर अनेक फल लगते हैं, अतएव यह सन्तानोत्पत्ति का स्रोत माना जाता है। शादी और अन्य मांगलिक कार्यों के समय वेदी का निर्माण केले के तनों द्वारा होता है।^{१३}

आम—हिन्दू संस्कृति में आम के वृक्ष का बड़ा महत्व है। आम की पत्तियों से बन्दनवार बनाये जाते हैं। मंगल घट में इसकी पत्तियाँ लगाई जाती हैं। इसकी लकड़ी को हवन की समिधा के रूप में प्रयोग किया जाता है और आम के बीर को अपनी इच्छा-पूर्ति की कामनास्वरूप मानते हैं।^{१४}

तुलसी—कार्तिक मास में इसकी विशेष रूप से पूजा होती है। इसको भगवान् विष्णु की पटरानी मानते हैं। देवउठान एकादशी तथा कार्तिक पूर्णिमा पर तुलसी का विवाह धूमधाम से शालिग्राम के साथ करने की प्रथा है। औषधियों में इसका प्रयोग भी किया जाता है।^{१५}

बांस—वंश-वृद्धि का द्योतक वृक्ष है। जिस प्रकार एक बांस से सैकड़ों बांस उत्पन्न हो अपनी लंबाई तथा मोटाई में उत्तरोत्तर वृद्धि करते आकाश को चूमते रहते हैं, उसी प्रकार विवाहित वर-वधू का वंश दिनोंदिन पीढ़ी-दर-पीढ़ी बढ़ता रहे तथा उनसे उत्पन्न संतान द्वारा वंशजों का कीर्तिध्वज बांस की ऊँचाई के समान ऊपर उठकर सूर्य के समान चमकता रहे। बांस का चित्रण पूर्वी उत्तर प्रदेश में कोहबर के चित्रण के समय अधिक होता है।^{१६}

कुश—पौराणिक गाथा के अनुसार सागर-मंथन के बाद अमृत घट ले जाते समय कुश पर ही रखा गया था, तभी से कुश को अत्यन्त पवित्र माना जाने लगा। इसकी पवित्रता के कारण ही इसका उपयोग सभी मांगलिक कार्यों में किया जाता है। देवपूजन में कुश से ही स्नान कराते हैं, शिखा में कुश बाँधते हैं। दूध फटन जाये, इसलिए उसमें कुश डालते हैं और ग्रहण के समय प्रत्येक खाने की वस्तु में कुश डालते हैं।^{१७}

दूर्वा—कहा जाता है कि सागर-मंथन के पश्चात् विष्णु ने अमृत का घट एक स्थान पर रख दिया। कौवे ने आकर उसमें से कुछ अमृत पी लिया और उसका कुछ अंश जमीन पर गिरा दिया जो दूर्वा पर पड़ा जिसकी वजह से यह सदैव हरी बनी रहती है। सभी मांगलिक कार्यों में इसका प्रयोग किया है। दूर्वा स्त्रियों के सौभाग्य का प्रतीक है। यह समृद्धि और दीर्घायु का प्रतीक है। दूर्वा के नाल सदैव फैलते रहते हैं, यह सदैव अपना वंश बढ़ाया करती है।¹⁴

पद्म या कमल—भारतीय कला, धर्म और दर्शन में कमल सबसे अधिक महत्व का प्रतीक है। यह अगाध जलों के अंदर तैरते हुए प्राण या जीवन का चिह्न है। यह पुष्प सूर्योदय के समय अपनी पंखुड़ियाँ खोलता है। सूर्य ब्रह्म का प्रतीक माना गया है (ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः, ऋक्० २३।४८), अतः कमल प्राण का वह रूप है जो भूतों में समष्टिगत प्राण या जीवन का आह्वान करता है। विष्णु की नाभि के कमल पर ब्रह्मा का विकास हुआ जो सृष्टिकर्ता है (ब्रह्म वै ब्रह्माणं पुष्करं ससृज, गोपथब्राह्मण-१।१।१६)। कमल के पर्ण या पुरश्चन बेल को सृष्टि की योनि या गर्भाधान की शक्ति कहा गया है, योनिर्वै पुष्करपर्णम्। श० ब्रा०-६।४।१-१।७)। कमल विराट मन का प्रतीक है और व्यष्टिगत प्राणशक्ति का भी। भारतीय कला में कमल के अनेक रूपों का चित्रण किया गया है। पंचदल, षटदल, अष्टदल, षोडशदल वाले कमल का चित्रण लोककला के भीतर बहुत मिलेगा (चित्र : १३)। तंत्र शास्त्र के अनुसार भी पंचदल, षटदल, अष्टदल व षोडशदल वाले कमल का बहुत महत्व है।¹⁵

कल्पवृक्ष—इसका जन्म समुद्र-मन्थन से हुआ। यह इच्छाओं की पूर्ति करने वाला वृक्ष मन का प्रतीक है। कल्पवृक्ष के नीचे मनुष्य जो सोचता है उसे मिल जाता है। कुमार्युनी क्षेत्रों में भित्ति चित्रण (चित्र : १४) में इसका उपयोग किया गया है।¹⁶

इसके अलावा हल्दी, जोकि आयुर्वेदिक गुणों के साथ-साथ सुंदर-सा चमकदार पीला रंग भी रखती है, किसी न किसी रूप में प्रत्येक पूजा-पाठ में उपयोग में आती है। धतूरा शिवजी की पिंडी पर चढ़ाने के काम आता है, साबुत सुपारी व



चित्र १३ : कमल



चित्र १४ : कल्पवृक्ष

नारियल भी अधिकतर पूजा में प्रयोग किया जाता है।

दैनिक उपयोग की वस्तुएँ

उपरोक्त सभी प्रकार की वस्तुओं की पूजा आदि के साथ-साथ लोकमानव दैनिक उपयोग की वस्तुओं का भी पूजन करता है जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं—

कुआँ पूजना—कुएँ का पूजन विवाह व शिशु के जन्म पर किया जाता है। जिस प्रकार कुएँ में से सदैव जल निकलता रहता है और वह जल-विहीन नहीं होता, उसी प्रकार माँ जलदेव से अपने नवजात शिशु के लिए प्रार्थना करती है कि उसके बच्चे की आयु भी इसी तरह कभी समाप्त न हो। जिस प्रकार कुएँ का जल सबको शीतलता व जीवनदान देता है, उसी प्रकार बालक भी सबको सुख पहुँचाता रहे।^{११}

चाक पूजना—सृष्टि-चक्र के पूजने का भाव इसमें निहित है। जिस प्रकार सृष्टि का चक्र अबाध गति से चलता रहता है, उसी प्रकार कुम्हार का चाक भी। लड़के व लड़की दोनों के विवाह में इसकी पूजा होती है। इसके पूजने के पीछे घरती के पूजने की भावना है।^{१२}

ढोलक पूजना—जब-जब गीत आरम्भ होते हैं तब रोली-चावल से ढोलक की पूजा की जाती है जिससे कि जो गीत खुशी के अवसर पर आरम्भ किये जा रहे हैं, निर्विघ्न समाप्त हो जायें तथा सब प्रकार का कल्याण हो।^{१३}

देहली पूजना—बेटी को विदा करते समय उससे घर की देहली पुजवाई जाती है, जिसके पीछे यह भावना निहित होती है कि जहाँ वह बड़ी हुई है वह सदैव धनधान्य से पूर्ण रहे।^{१४}

दीपक पूजना—दीपक को ईश्वर का रूप मानते हैं। यह ज्योतिर्मय है। अंधेरे को मिटाता है, मनुष्य के जीवन का प्रतीक है।^{१५}

धान बोना—विवाह के समय धान बोने का अर्थ होता है कि जिस प्रकार धान एक जगह बो कर बाद में खेतों में रोपे जाते हैं, उसी प्रकार कन्या का जन्म व पालन-पोषण माँ-बाप के घर होता है, उसका सुख दूसरे के घर ही होता है।^{१६}

इस प्रकार आदिकाल से लेकर अब तक विभिन्न प्रकार के तीज-त्यौहार, उत्सव और संस्कार होते रहे हैं। उनके मनाने की विधियों में तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अवस्थाओं का प्रभाव पड़ा। पर उनके मनाने के पीछे केवल लोक-हित की भावना का ही समावेश रहा है। विभिन्न प्रकार की वेदियों और यज्ञशालाओं की रचना में भूमि अलंकरण का सहारा लिया। मातृकाओं व पुत्तलिकाओं की भी रचना हुई। तरह-तरह भित्ति व भूमि अलंकरणों की वैज्ञानिक, तांत्रिक व सौन्दर्यात्मक आधार पर रचना हुई, जो कुछ फेर-बदल कर आज भी चल रही है। इन अलंकरणों में रेखाओं, बिन्दुओं अथवा विभिन्न प्रकार के ज्यामितिक आकारों, विभिन्न देवी-देवताओं, फूल-पत्तियों, वृक्ष, पशु-पक्षी

आदि का चित्रण बड़ी उपयोगिता के साथ किया गया है। हमारे इतिहास तथा वैदिक व पौराणिक साहित्य में इनका गुणगान भरा पड़ा है।

पाद-टिप्पणियाँ

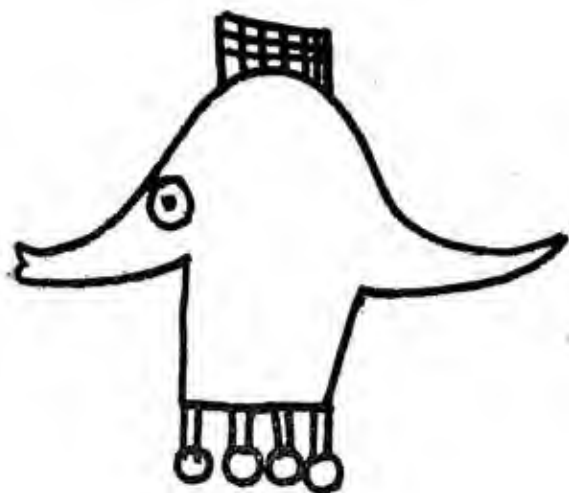
१. अभिप्राय(motif) : यह वे रूप हैं जो हमारी रसात्मक वृत्ति को तृप्ति देने के कारण ही हमारे लिए रुचिकार हो जाते हैं। रूप में रूपायित करने की शक्ति होती है, कथ्य सब जगह मौजूद रहता है। शब्दातीत की अभिव्यक्ति ही कलाएँ हैं।
२. प्रतीक : किसी प्रस्तुत वस्तु के द्वारा किसी अप्रस्तुत की प्रतीति होती है, तब वह प्रस्तुत अप्रस्तुत का प्रतीक होता है।
३. अजित मुखर्जी, 'योग आर्ट', पृ० ३०-३१
४. सर जॉन्स बुड रॉण्ट तथा पी. सी. मुखोपाध्याय, 'महामाया : दी वर्ल्ड एन्ड पावर', पृ० ७२-७३
५. वही, पृ० ७२-७३
६. डा० जनार्दन मिश्र, 'भारतीय प्रतीक विद्या', पृ० २२४-२२५
७. 'संस्कृति' पत्रिका, अंक ६०, पृ० १६-१८
८. देखिए, स्टैला फ्रैमरिस, 'दी हिन्दू टैम्पल', बोल्डूम ११, पृ० २२; डा० जनार्दन मिश्र, 'भारतीय प्रतीक विद्या', पृ० २२३-२२४; पी. आर. उप्रेती, 'फोक आर्ट आफ कुमार्य', पृ० २४
९. देखिए, बी. आर. उप्रेती, 'फोक आर्ट आफ कुमार्य', पृ० २३-२४; अजित मुखर्जी, 'योग आर्ट', पृ० ३३-३४
१०. देखिए, डा० जनार्दन मिश्र, 'भारतीय प्रतीक विद्या', पृ० २६०; डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'भारतीय कला', पृ० ७०-७१
११. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'भारतीय कला', पृ० ६७
१२. डा० परियूषनिन्द, 'प्रतीक शास्त्र', पृ० २२
१३. डा० जनार्दन मिश्र, 'भारतीय प्रतीक विद्या', पृ० ३०
१४. जगेन्द्र सक्सेना, 'आर्ट आफ राजस्थान', पृ० १६०-१६१ और 'संस्कृति' (पत्रिका) अंक ६०, पृ० १८-१९
१५. डा० जनार्दन मिश्र, 'भारतीय प्रतीक विद्या', पृ० १००
१६. वही, पृ० ६६
१७. डा० इन्दुमती मिश्र, 'प्रतिमा विज्ञान', पृ० १८०
१८. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'भारतीय कला', पृ० ६६
१९. जे. ई. गिरलाट, 'ए डिक्शनरी आफ सिम्बल्स', पृ० ११७-११९
२०. देखिए, बी. डी. फुफ्तर, 'दी साइक्लोजी आफ ब्यूटी', पृ० ६४ से ६६, पृ० १००-१०४; कृंवर राजेन्द्रसिंह, 'सरस्वती' मासिक, अर्गल १९३४, पृ० ३८८-३९०; अजित मुखर्जी, 'योग आर्ट', पृ० ३४-३६

उत्तर प्रदेश की लोककला :: ४१.

२१. देखिए, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'भारतीय कला', पृ० ६५; जैमिनी उ० ब्रा० २।६।७;
मार्कण्डेय पुराण-६।४२।४८; ऋग्वेद-४।६।६
२२. याज्ञवल्क्य स्मृति : १।२६४।५८
२३. डा० इन्दुमती मिश्र, 'प्रतिमा विज्ञान', पृ० ३०३-३१०
२४. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'भारतीय कला', पृ० ७०
२५. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'भारतीय कला', पृ० ७०
२६. डा० इन्दुमती मिश्र, 'प्रतिमा विज्ञान', पृ० १०१-१०२
२७. विष्णुपुराण : १।६।३५-३७
२८. वृन्दावन भट्टाचार्य, 'इंडियन इमेजेज', पृ० ५
२९. वही, पृ० ५
३०. डा० गिराजकिशोर अग्रवाल, 'कला समीक्षा', पृ० १२४-१२६
- ३१-३४. देखिए, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'भारतीय कला', पृ० ६४; डा० गिराजकिशोर
अग्रवाल, 'कला समीक्षा', पृ० १२४-१२६
- ३५-३७. देखिए, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'भारतीय कला', पृ० ६४; डा० गिराजकिशोर
अग्रवाल, 'कला समीक्षा', पृ० १२७
- ३८-४१. डा० गिराजकिशोर अग्रवाल, 'कला समीक्षा', पृ० १२७-६२८
- ४२-४३. डा० सत्या गुप्ता, 'खड़ी बोली का साहित्य', पृ० ३७६-३७७
४४. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, 'भारतीय कला', पृ० ७२-७३
४५. वही
- ४६-६१. डा० सत्या गुप्ता, 'खड़ी बोली का साहित्य', पृ० ३८७-३८८

द्वितीय अध्याय

उत्सवों सम्बन्धी भूमि व भित्ति अलंकरण





स्त्री चाहे वनवासिनी हो या ग्रामवासिनी या नगरवासिनी, शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, चित्रकला नाना रूपों में उसमें दिखाई पड़ती है। भित्तिचित्र, धराचित्र (भूमि अलंकरण), पट्टिकाचित्र, पाल चित्र, शरीर चित्र, थापे तथा मिट्टी व गोबर की उत्सव सम्बन्धी कलाकृतियाँ—विभिन्न रूपों में स्त्रियों की चित्रकला का रूप इनमें देखा जा सकता है। धर्म-परायण जनता के घरों में एक छोटा-सा कमरा और फिर एक कोना ही देव-पूजा के लिए सुरक्षित होता है। वे देवस्थान अथवा दरवाजे पर अपनी बुद्धि व शक्ति के अनुसार देवताओं, वृक्षों, जानवरों व पक्षियों, सूर्य, चन्द्र, तारागण, स्वास्तिक, शंख, कमल तथा दैनिक उपयोग की वस्तुओं का चित्रांकन करती हैं। यहाँ कुछ प्रमुख भूमि व भित्ति अलंकरण विधियों का उल्लेख किया जा रहा है।

भित्तिचित्र

लोककला में भित्तिचित्रों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन चित्रों का प्रचलन कैसे हुआ, यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लगता है आदि युग का मानव जब वर्षों की क्षड़ियों में अपनी गिरि-कन्दराओं में घिर गया होगा या फिर शीत व धाम की अधिकता ने उसे अपने गृह में ही बन्दी बना दिया होगा, तब उसके मन में रोटी और काम की जगह एक नयी भूख जगी होगी। उसने अपने निकट पड़ी मिट्टी से सामने की विशाल पर्वत-शिलाओं पर कुछ टेढ़ी-मेढ़ी आकृतियाँ खींच दी होंगी। अपने एकांत के क्षणों में उसके द्वारा खींची गयी ये आकृतियाँ ही आज आदिम कला के नाम से प्रसिद्ध हैं। आज के सभ्य समाज ने इन कलाकृतियों को गुफाओं से खोज निकाला, जिनका प्रत्यक्ष उदाहरण उत्तर प्रदेश में प्राप्त मिर्जापुर क्षेत्र की गुफाएँ हैं।

सुदूर द्वापर युग में उषा तथा अनिरुद्ध का मिलन भी इसी चित्रकला के माध्यम से हुआ था परन्तु इसके विपरीत भोजपुरी लोकगीत में सीता के वनवास की कथा भी बड़े मार्मिक शब्दों में कही गयी है, जो सीता जी के चित्रकला में निपुणता के कारण घटी।

थापा

थापा भी प्राचीनतम एवं प्रचलित लोककला है, जो अनादि काल से चली आ रही है। मानव जीवन के निरन्तर विकास के साथ-साथ यह प्रथा भी विकसित होती जा रही है। आज का प्राणी कुछ विशेष अवसरों के अतिरिक्त इस थापा-प्रथा को साज-सज्जा का सामान मानने लगा है। आजकल आलू, भिंडी, मोम, लकड़ी, रबड़, स्टैसिल आदि के ठप्पे (आधुनिक नाम) या थापे विभिन्न प्रकार के कपड़ों की छपाई में प्रयोग में लाये जाते हैं। इनको थापा, छापा, छाप, छपिया, टप्पा, ठप्पा आदि नाम से जाना जाता है।

वास्तव में थापा अधिकतर केवल दाहिने हाथ की हथेली से लगाया जाता है। यह थापे गृहप्रवेश, आने वाली वधू, विदा होती कन्या, जच्चा, समधी व समधिन के द्वारा विभिन्न शुभावसरों पर उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में बहुधा हल्दी व घी से ही लगाये जाते हैं। यह थापे घर के भीतर व बाहर की दीवारों पर या कपड़ों पर लगाये जाते हैं। छापों या थापों का प्रचलन केवल गृहस्थाश्रम में ही है; संन्यासी, महात्मा या साधु-संत चाहे वस्तियों में ही क्यों न रहते हों, उनकी कुटिया में थापे नहीं लगाये जाते।

उत्तर प्रदेश के कुमर्युनी क्षेत्रों में मुट्ठी का थापा लगाकर दीपावली पर लक्ष्मी जी का स्वागत किया जाता है। भोजपुरी क्षेत्रों में 'पिड़ियों' के त्यौहार पर भी बबारी लड़कियाँ दीवार पर थापा लगाती हैं। मंगल घट पर भी थापा लगाने का प्रचलन है।

भूमि अलंकरण

मांगलिक अवसरों पर चावल के पीठे, एपन, गेरू, खड़िया या मिट्टी के रंगों और सूखे आटे से भूमि पर चित्रकारी की जाती है, उसी को भूमि अलंकरण कहते हैं। यह विभिन्न उत्सवों और संस्कारों पर भिन्न-भिन्न रूप में बनाये जाते हैं। कभी-कभी केवल गोंबर और मिट्टी से ही अलंकरण बनाये जाते हैं। रंगे हुए चावलों द्वारा भी ये बनाये जाते हैं। ये बिन्दु, रेखाओं, वर्ग, त्रिभुज, षट्भुज, अष्टभुज, कमल, शंख, मछली, हाथी, तोता, मोर आदि के रूप में बनाये जाते हैं। स्वास्तिक और ओ३म् के भूमि अलंकरण भी देखे जा सकते हैं। इन भूमि अलंकरणों को विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न नामों से जाना जाता है। गेरू या गोबर से लिपी-पुती साफ-सुथरी भूमि पर यह देखते ही बनते हैं।

पात्र चित्रण

पूजा अथवा शादी-विवाह के अवसर पर कलश की स्थापना की जाती है, तभी स्त्रियाँ उसे चित्रित करती हैं। इस चित्रण में वे गोबर, चावल का पीठा, हल्दी आदि का प्रयोग तो करती ही हैं, साथ-ही-साथ अनेक रंगों का भी प्रयोग होता है। स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर किसी नये घड़े या अन्य मिट्टी के पात्र का प्रयोग करने से पहले स्वास्तिक बना लेती हैं। शादी-विवाह, पुत्र-जन्म के समय जब सम्बन्धियों में कोई उपहार भेजता होता है तो स्त्रियाँ मिट्टी के कूंडों के ऊपर चूने से सफेदी करके अनेक रंगों द्वारा चित्रकारी करती हैं।

इस प्रकार उत्तर प्रदेश में लोककला सम्बन्धी चित्र भित्ति चित्र, थापे, भूमि अलंकरण तथा पात्र चित्र के रूप में सामने आते हैं, जिन पर मुख्यतः स्त्रियों का अधिकार है। इसके साथ मिट्टी के विभिन्न प्रकार के खेल-खिलौने मिलते हैं जिन्हें क्षेत्र-विशेष का कुम्हार बाजार में, मेले और उत्सवों के समय बेचने को लाते हैं।

ये खिलौने बच्चों का मन मोह लेते हैं और कुछ त्यौहारों जैसे कि कृष्ण जन्माष्टमी, महालक्ष्मी पूजन, दीपावली आदि पर पूजने के भी काम आते हैं।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, प्रस्तुत ग्रंथ में केवल उन्हीं भूमि व भित्ति अलंकरणों का विश्लेषण किया जायेगा जो किसी उत्सव और संस्कार के समय बनाये जाते हैं। इसका आरम्भ नववर्ष के प्रथम मास चैत्र से किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश में प्रत्येक मास के त्यौहार तथा तत्सम्बन्धी भूमि व भित्ति अलंकरण निम्न प्रकार हैं।

चैत्र मास

हिन्दुओं के अनुसार चैत्र मास वर्ष का आरम्भ माना जाता है। भारतीय त्यौहारों का क्रम भी इसी के अनुसार चलता है। सर्वप्रथम आरम्भ वासन्तीय नवरात्रि से कर रही हैं।

वासन्तीय नवरात्रि : 'ओ३म् गणेशाय नमः' के मन्त्र के साथ सभी शुभ कार्य प्रारम्भ होते हैं। इन्हीं विघ्ननिवारक गणेश जी के माता-पिता की रहस्यमयी नगरी (उत्तराखण्ड) से लोककला का आरम्भ करते हैं। उत्तराखण्ड को दो भागों में बाँट सकते हैं - कुमायूँनी तथा गढ़वाली। इसके अतिरिक्त उत्तराखण्ड में रहने वाली कुछ जनजातियाँ (थारू, भुक्सा तथा जौनसार-बाबर) भी हैं। नवरात्रि (वासन्तीय) में इस खंड में दुर्गा का पूजा-पाठ नौ दिनों तक निरन्तर चलता रहता है तथा पण्डितों द्वारा बनाये गये तंत्रों पर आधारित विभिन्न भूमि अलंकरणों की बहार आ जाती है। ये प्रायः दुर्गा के वाहन हेतु बनाये जाते हैं।

गणगौर : उत्तराखण्ड को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में दुर्गा की स्तुति के साथ गणगौर की पूजा तथा रामनवमी का भी त्यौहार मनाया जाता है। गणगौर का त्यौहार ब्रज तथा बुंदेलखण्ड के क्षेत्रों में अधिक मनाया जाता है। ब्रज में मनाये जाने वाले इस त्यौहार पर राजस्थान का पर्याप्त प्रभाव है। बुंदेलखण्ड में शिव-गौरी और गणेश जी का अधिक महत्त्व है। गणगौर का उत्सव भी मनाया जाता है परन्तु यह उत्सव राजस्थान में ही देखने योग्य है। पूजन के समय मिट्टी की गौरी बनाकर उस पर चूड़ी, महावर, सिन्दूर आदि चढ़ाने का विशेष फल है। चन्दन, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य से पूजन करने के बाद सुहाग-सामग्री चढ़ाने तथा भोग लगाने का विधान है।

रामनवमी : नवरात्रि का अन्तिम दिन रामनवमी के नाम से प्रसिद्ध है। यह मर्यादापुरुषोत्तम राम का जन्मदिन है। इस दिन सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में, केवल उत्तराखण्ड को छोड़कर, राम व रामायण की पूजा की जाती है; बधावे भी सुनाई पड़ेंगे। अयोध्या में इस तिथि को बड़ा भारी मेला लगता है। दूर-दूर के अंचलों से आये हुए यात्री राम दर्शन, सरयू-स्नान तथा आदि पुरुष की अतीत लीलाओं में खो जाते हैं। अवधी व भोजपुरी क्षेत्रों में रामनवमी बहुत ही धूमधाम से मनाई

जाती है।



वैसाख मास

वैसाख मास में उत्तर प्रदेश में दो त्यौहार ही मुख्य रूप से मनाये जाते हैं—अक्षय तीज और वैसाख पूर्णिमा।

अक्षय तीज : वैसाख शुक्ला तीज को मनाई जाती है। यह त्यौहार उत्तर प्रदेश के दक्षिणी भाग (बुंदेलखण्ड) तथा पूर्वी (भोजपुरी) क्षेत्रों का मुख्य त्यौहार है। सूर्यदेव की स्वर्ण सलीनी रश्मियाँ बिखेरते ही प्रत्येक द्वार और आँगन में धेनु के हरे गोबर से लिपाई की जाती है और उन पर विभिन्न रंगों से अनेक प्रकार के चौक पूरे जाते हैं। इस अवसर-विशेष पर कम्याएँ अपने अनगढ़ हाथों से बनाई हुई पुतरियों का शृंगार करके पूजन की उमंग में फूली नहीं समाती। नवयुवक भी इस दिन रंग-बिरंगी पतंगों में डोर बाँधकर उड़ाने व लड़ाने के चाव में इधर-उधर मग्न रहते हैं, जबकि पतंग उड़ाने का शौक खुलेखण्डी व अबधी क्षेत्रों में नागपंचमी तथा होली के दिनों में भी देखने को मिलता है। इन क्षेत्रों के सर्वेक्षण से मालूम पड़ा कि इस त्यौहार का सीधा सम्बन्ध कामदेव के भस्म होने की कथा से है। इस त्यौहार की छटा बुंदेलखण्ड में वैसाख शुक्ल तृतीया से लेकर पूर्णिमा तक देखी जा सकती है। बड़ी धूमधाम से सज-धज कर सभी बाल-वृद्ध, नर-नारी, युवक-युवतियाँ इसको मनाते हैं। अपनी तरह का यह अनोखा त्यौहार है, जो बुंदेलखण्ड (झाँसी) क्षेत्र में विशेष दर्शनीय है।

वैसाख की पूर्णिमा का महत्व यों तो सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में माना जाता है परन्तु जीतसार-बाबर का यह बहुत महत्वपूर्ण उत्सव है। इस दिन देवस्थानों की पूजा होती है और बकरे की बलि दी जाती है। वहाँ इसे नववर्ष के आगमन का सूचक मानते हैं। होली भी खेलते हैं। युवक-युवतियाँ, स्त्री-पुरुष मिलकर नये वर्ष के आगमन में गाते तथा नृत्य करते हैं।

ज्येष्ठ मास

ज्येष्ठ मास अपनी तपन के लिए प्रसिद्ध है। दिन-रात झूलभरी गर्म हवाओं के मास में त्यौहारों की कमी नहीं तो अधिकता भी नहीं है। वटसावित्री, वट अमावस्या तथा गंगा दशहरा कुछ प्रमुख त्यौहार हैं।

वट अमावस्या पश्चिम में तथा वट सावित्री पूर्व में अधिक लोकप्रिय हैं। इनका सम्बन्ध सावित्री-सत्यवान की पौराणिक गाथा से है। पीपल व वट वृक्षों की पूजा करने का विधान है। सौभाग्य व पति के दीर्घायु होने की कामना के लिए यह त्यौहार मनाया जाता है।

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को गंगा स्नान का विशेष महत्व है। जगह-जगह मेलों का आयोजन किया जाता है। इसका सम्बन्ध राजा भगीरथ की तपस्या और शंकर जी

द्वारा गंगा को शीश पर धारण कर स्वर्ग से पृथ्वी पर लाने की कथा से है। इस त्यौहार को गंगा वसहरा कहते हैं।

आषाढ़ मास

आषाढ़ मास में व्रत और त्यौहार तो हैं परन्तु लोककला के सन्दर्भ में उनका कोई विशेष महत्व नहीं। देवशयनी एकादशी, जोकि आषाढ़ शुक्ला एकादशी की होती है, विष्णु भगवान के आज की तिथि से चार मास तक सो जाते से सम्बन्धित है। विष्णु जी के सो जाने से शुभ कार्य, विवाह आदि बन्द हो जाते हैं और देवउठान एकादशी (कार्तिक मास) के बाद ही आरम्भ होते हैं। उत्तराखण्ड में इस तरह का कोई भी लोकविश्वास जनता में नहीं है।

इसी मास का एक त्यौहार बुंदेली संस्कृति की ऐसी धरोहर है जो अपने में बेमिसाल है। इस त्यौहार का नाम है कुनधूसू। आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को इस क्षेत्र की प्रत्येक सास परिवार की बहुओं की पूजा करती है। इस अवसर पर सास घर के चारों कोनों को पोतनी मिट्टी से पोतती है। फिर पुते हुए चारों कोनों में चार पुतलियाँ हल्दी से बनाकर चंदन, अक्षत, पुष्प चढ़ाकर, धूत, गुड़ का नैवेद्य लगा कर आरती उतारती है और यह कामना करती है कि हे परमेश्वरी बहू! घर में लक्ष्मी बनकर धन-धान्य और सन्तान से इसे भरना (चित्र : १५)।

स्त्रियाँ आज भी इसे मनाती हैं परन्तु लकीर की फकीर की भाँति। वे इस त्यौहार का गूढ़ार्थ भूल गई हैं। यह त्यौहार पारिवारिक सामंजस्य की श्रेष्ठ भावना से ओतप्रोत है।

ब्रज तथा बनारस (भोजपुरी) के आसपास के क्षेत्रों में इस पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा के नाम से जाना जाता है। इस दिन गृह-पूजा का विधान है।

श्रावण मास

श्रावण मास सबसे अधिक मनोमुग्धकारी मास है। चारों ओर हरियाली ही हरियाली, तपन का अन्त और रिमक्षिम फुहारों की मस्ती—कजरी व सावन के गीतों की मधुर स्वर-लहरियों से पृथ्वी गुंजायमान होती रहती है। इसी मास में स्त्रियों और लड़कियों द्वारा शिव की पूजा मंगलवार व सोमवार को की जाती है। अन्य त्यौहार नागपंचमी और रक्षाबंधन हैं।

नागपंचमी : श्रावण शुक्ला पंचमी को नागपंचमी का त्यौहार मनाया जाता है। भित्ति पर गोबर से लीपकर कोयले से नागों का चित्रण किया जाता है तथा सेमई आदि से भोग लगाया जाता है (चित्र : १६)। नागों को दूध पिलाया जाता है। नागों की पूजा भाई के रूप में की जाती है। वर्षा ऋतु की सर्पों के निकलने का समय होता है। इस ऋतु में नदी, तालाब आदि सभी पानी से लबालब भर जाते हैं। सर्पों के बिलों में भी पानी भर जाता है, जिसके कारण वे विवश होकर बाहर

धारण खोजते हैं। देश के पूर्वी भागों में मनसा देवी (सर्पराज्ञी) की पूजा की जाती है। इस समय कही जाने वाली अनेक दन्तकथाएँ हैं, जिन सभी का सार नाग को भाई समान मानना है। सबसे अधिक लोकप्रिय कथा यहाँ दी जा रही है।

किसी ब्राह्मण की सात पुत्रवधुएँ थीं। सावन मास लगते ही छह बहुएँ तो भाई के साथ मायके चली गईं, परन्तु अभागी सातवीं के कोई भाई न था, इसलिए वह बहुत दुखी थी। बेचारी ने अति दुःखित होकर पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग को भाई रूप में स्मरण किया। करुणायुक्त, दीनवाणी को सुन कर शेष जी वृद्ध ब्राह्मण के रूप में आये (कहीं-कहीं कथा में नागदेवता भाई का ही रूप धारण कर आते हैं) और उसे लिवाकर चल दिये। थोड़ी दूर रास्ता तय करने पर उन्होंने अपना असली रूप धारण कर लिया और फन पर बैठाकर नागलोक ले गये। जिस समय वह नागलोक में रह रही थी उसी समय उनके कुल में बहुत से नागों ने जन्म लिया। उन नाग-बच्चों को सर्वत्र विचरण करते देख शेष-नागराज्ञी ने वधू को एक पीतल का दीपक दिया और बताया कि इसके प्रकाश से तुम अंधेरे में भी सब कुछ देख सकोगी। एक दिन अकस्मात् उसके हाथ से दीपक नाग बच्चों पर गिर गया, परिणामस्वरूप उन सबकी थोड़ी-थोड़ी पूँछ कट गई।

यह घटना घटित होते ही कुछ समय बाद वह ससुराल भेज दी गई। जब अगला सावन आया तो वधू दीवार पर नागदेवता को उकेर कर उनकी विधिवत पूजा तथा मंगलकामना करने लगी। इधर क्रोधित नाग बालकों को जब अपनी पूँछ कटने का असली कारण मालूम हुआ तो वह बदला लेने को आ गये, पर अपनी ही पूजा में श्रद्धानत उसे देख कर बहुत प्रसन्न हुए और उनका क्रोध समाप्त हो गया। बहन स्वरूपा उस वधू के हाथ से प्रसाद रूप में उन सर्पों ने दूध तथा चावल भी पाया। नागों ने उसे सर्प-कुल से निर्भय होने का वरदान दिया तथा उपहार में मणियों की माला दी। उन्होंने यह भी बताया कि जो श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को हमें भाई रूप में पूजेगा, उसकी हम सदैव रक्षा करेंगे।

इसी से मिलती-जुलती और भी कथाएँ हैं जिनका मध्य भाग बदला हुआ है परन्तु सभी का सार एक ही है। नागपंचमी का त्योहार उत्तराखण्ड में नहीं के बराबर है परन्तु खड़ी और ब्रज बोली वाले प्रदेशों में नागपूजा के रूप में विद्यमान है।

इसका एक नया रूप रुहेली और अवधी भाषाभाषी क्षेत्रों में देखने को मिलेगा। यहाँ वह गुड़ियों के मेले के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन बालिकायें रंग-विरंगी सजी-सजाई गुड़ियाँ नदी किनारे ले जाती हैं तथा उनके भाई फूलों की छड़ी या फिर भूँज की रस्सी या डंडी से इन निर्जीव गुड़ियों को मारते हैं और बाद में नदी में विसर्जित कर देते हैं। बरेली, लखनऊ व इलाहाबाद में इस मेले की रीतक देखने योग्य होती है। इसी दिन लड़के लोग पतंग भी उड़ाते हैं। आकाश में रंग-विरंगे पतंग तथा नीचे धरती पर नदियों के किनारे सजी-धजी निर्जीव गुड़ियाँ।

बुंदेलखण्ड में भी यह त्यौहार नहीं के बराबर है।

रक्षाबन्धन : श्रावण मास की पूर्णिमा को रक्षाबन्धन का त्यौहार मनाया जाता है। इसका सम्बन्ध राजा इंद्र तथा देवासुर-संग्राम से है। इस दिन बहनें भाइयों के टीका करती हैं, मिठाई खिलाती हैं तथा राखी बाँधती हैं। यह भाई और बहनों के प्यार का त्यौहार है। इसी दिन भाई भी बहनों को साड़ी, रुपये आदि देते हैं। देहरादून से नीचे उतर कर भोजपुरी तक के क्षेत्रों में यह एक जैसे रूप में ही मनाया जाता है।

कुमार्यों के क्षेत्रों में इस दिन पुराना जनेऊ (यज्ञोपवीत) उतार कर तथा धारण किया जाता है। बुंदेलखण्ड में इस दिन **भुजरियों का मेला** लगता है। पूर्णिमा से नौ दिन पूर्व मिट्टी के दो सकोरों में खाद डालकर गेहूँ बोने की प्रथा है। इन गेहूँओं को बोने को लोग भुजरियाँ कहते हैं। चतुर्दशी की स्त्रियाँ भाई के संरक्षण में सरोवर पर इसे सिराने जाती हैं। गाँव के लोग या भक्तजन सड़क के दोनों ओर कतारों में खड़े रहते हैं। जब औरतें भुजरियों को लेकर लौटती हैं, तब सब बड़े लोगों को कुछ-न-कुछ देती चलती हैं। लोग श्रद्धापूर्वक ग्रहण करते हैं तथा देने वाले के पैर छूते हैं। घरों में बहन भाई के राखी बाँधती है। जगह-जगह भूले पड़ते हैं, मल्हार राग की मधुर स्वर-लहरी वायुमण्डल में मिट्टी की सोंधी सुगंध के साथ गूँजने लगती है।

लोककला की दृष्टि से पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कुमार्युनी क्षेत्रों के राखी के **चौक** (चित्र : १७) तथा खड़ी व ब्रज बोली के क्षेत्रों में **सोन** (सोना अथवा सरमन) के नाम के भित्तिचित्र देखने योग्य होते हैं। सरमन, अथवा कुमार का विगड़ा हुआ नाम है। कहा जाता है कि श्रवणकुमार इसी क्षेत्र के रहने वाले थे। वह अपने अंधे माता-पिता को 'बहंगी' में बैठाये एक स्थान से दूसरे स्थान को चलते रहते थे। अपनी पितृभक्ति और मातृभक्ति के कारण ही वह पूज्यनीय माने गये हैं। स्त्रियाँ भित्ति पर बहंगी उठाए हुए श्रवणकुमार का चित्रांकन अपनी लोक-शैली में कहीं-कहीं तो बहुत ही निपुणता से करती पाई गई है (चित्र : १८)। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी सोन बनाये जाते हैं - जैसे पीढ़ी, अटेरन, नाव, पंखा आदि (चित्र : १९)। प्रायः सभी चित्र सफेद भित्ति पर गेरू अथवा भित्ति को गेरू से लीपकर खड़िया, चावल के पीठे आदि से बनाये गये हैं। कहीं-कहीं भित्तियों पर राम-सीता, सीता-राम भी लिखा जाता है। दरवाजों के दोनों ओर की भित्तियों पर चित्र बनाने का प्रचलन है। श्वेताम्बर जैनियों के यहाँ भित्तियों पर राखी के सुंदर-सुंदर डिजाइन बनाये जाते हैं। ये चित्र भी अधिकतर सफेद भित्ति पर गेरू से बनाये जाते हैं (चित्र : २०)। सभी चित्रों को सेमई, खीर अथवा मिष्ठान का भोग लगाया जाता है और रोली-चावल से टीका लगाया जाता है।



उत्तर प्रदेश की लोककला :: ५१

75027

भाद्रपद मास

कजरी तीज : भाद्रपद के कृष्णपक्ष की तृतीया कजरी तीज के नाम से जानी जाती है। इस उत्सव का महत्त्व बनारस और मिर्जापुर जिलों में है। भोजपुरी क्षेत्र का यह बड़ा उल्लासपूर्ण त्यौहार है। कजरी की प्रतिद्वंद्विता भी होती है। प्रायः लोग नाचों पर चढ़कर कजरी गीत गाते हैं। यह वर्षा ऋतु का एक विशेष राग है। ब्रज के मल्हारों की ही भाँति मिर्जापुर तथा बनारस का यह प्रमुख वर्षा गीत माना जाता है। झूले पड़ते हैं तथा सर्वत्र लड़कियाँ और बधुएँ सोलह शृंगार करके कजरी गाती हुई दिखाई पड़ती हैं।

गूगा पंचमी या भाई भिन्ना : भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की पंचमी को एक बार फिर नागों के पूजे जाने का त्यौहार है। यह त्यौहार उत्तर प्रदेश में बसने वाली भार्गव तथा खत्री जातियों में मनाया जाता है। इस दिन स्त्रियाँ भाइयों के टीका करती हैं। इस त्यौहार का नाम खत्री जाति में भाई-भिन्ना तथा भार्गव जाति में गूगा पंचमी है। इस अवसर पर खत्री जाति में लोग दीवार को गेरू से पोत लेते हैं तथा दूध में पिसे कोयले से नागों के चित्र बनाते हैं या दीवार को चुने से पोतकर गेरू अथवा कोयले से नागों का चित्र बनाते हैं। नागों को जल, कच्चा दूध, रोली, चावल, बाजरा, आटा, घी और चीनी मिलाकर चढ़ाते हैं तथा पूजन के पश्चात् भाइयों को औरतें टीका लगाती हैं। इसका चित्रण नाग पंचमी के समान होता है।

हर छट : भाद्रपद मास की कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन हर छट का त्यौहार मनाया जाता है। हल को लोक भाषा में हर कहते हैं। कुछ लोग इसे (हर)-गौरी से सम्बद्ध मानते हैं परन्तु ऐसा सत्य नहीं है क्योंकि इस व्रत में हर (हल) से बोया हुआ नहीं खाया जाता है। तिन्नी का चावल, महुआ, भैंस के दूध का दही व नारी (घास विशेष) का साग खाया जाता है। यहाँ तक कि मेड़ व चींटी के बिल भी लाँघना मना है। यह व्रत अवध से बुन्देलखण्ड तक मनाया जाता है। स्त्रियाँ पुत्र की दीर्घायु के लिए यह व्रत रखती हैं। चित्र को बनाकर विधिवत पूजा की जाती है। वे लोककथा सुनती हैं, भिति को गोबर से लीपकर परम्परानुसार चावल के पीठे या एपन या गेरू में हल्दी मिलाकर चित्र बनाती हैं। केवल बिहाई मध्य में काजल से बनाती हैं। बुन्देलखण्ड में बुरंगी हर छट लिखने का अधिक प्रचलन है। यहाँ स्त्रियाँ भूमि पर भी विभिन्न प्रकार के चित्र बनाती हैं। चित्र के मध्य में महुआ, ढाक, कुश की टहनियों को मिट्टी में गाढ़ देती हैं। कुश में छह गाँठें बाँधती हैं, पीला वस्त्र चढ़ाती हैं, फिर सिन्दूर से टीका करती हैं। महुआ के छह पत्तों पर तिन्नी का चावल, महुआ, भैंस के दूध की दही को रखकर उसी से पूजा करती हैं। कहीं पर सतनजा अनाज भी रखने की प्रथा है जो बाद में बच्चों को दिया जाता है।

हर छट के विषय में लौकिक और पौराणिक दोनों ही प्रकार की कथाएँ हैं। पौराणिक कथा में इस पूजा व व्रत का सम्बन्ध पति-शोक से विह्वल होने वाली

अभिमन्यु की भार्या के गर्भ-रक्षण करने के निमित्त स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने द्रौपदी को बताया था। शास्त्रीय कथा उतनी लोकप्रिय नहीं जितनी कि लौकिक। इस त्योंहार पर कुछ विभिन्नता लिये हुए आठ कथाएँ मिलती हैं, जिनमें से दो कथाएँ यहाँ दी जा रही हैं। कथा से सम्बद्ध चित्र ही स्त्रियाँ भित्ति पर बनाती हैं (चित्र: २१)।

पहली कथा इस प्रकार है। एक गर्भवती ग्वालिन दही बेचने के लिए बाहर चली। रास्ते में ही उसे बालक उत्पन्न हुआ। उसने उस बालक को झरबेरी की झाड़ी में कपड़े में लपेट कर रख दिया और स्वयं दही बेचने के लिए आगे बढ़ी। उसका दूध-दही गाय तथा भैंस का मिला हुआ था परन्तु उसने उसे भैंस का ही बतलाकर बेच डाला। इस झूठ बोलने का फल यह हुआ कि जब वह लौटकर आई तब उसने अपने बच्चे को मरा हुआ पाया। बात यह थी कि उसकी अनुपस्थिति में अनजान में हल की नोक उस बच्चे के शरीर में घुस गई थी। हलवाहे ने उस मरे हुए बच्चे को झरबेरी के काँटों से सी कर वहीं रख दिया था। ग्वालिन ने जब यह दृश्य देखा तब इसे अपने झूठ बोलने का फल समझकर सीधे गाँव लौट आई और लोगों से कहने लगी कि मेरा दूध गाय और भैंस का मिला हुआ था, केवल भैंस का नहीं था। सच बोलने का फल यह हुआ कि उसका बच्चा जी उठा और वह सहर्ष अपने घर लौट आई।

दूसरी कथा इस प्रकार है। एक धर्मात्मा राजा था। उसने एक तालाब खुदवाया परन्तु उसमें से पानी नहीं निकला। पण्डितों ने परामर्श दिया कि बच्चे की बलि देनी होगी। राजा ने अपनी बहू के बच्चे की ही बलि देने की सोची तथा बहू को बहाने से मँके भेज दिया। जब वह मँके पहुँची तो वहाँ हर छट का उत्सव मनाया जा रहा था। माँ ने उससे आने का कारण पूछा। फिर पूछा कि बच्चा कहाँ पर है। माँ को कुछ शक हुआ। माँ ने कहा तुम सुबह वापिस चली जाओ। जब बहू अपने गाँव के पास पहुँची तो देखती क्या है कि तालाब पानी से भर गया है और उसमें कमल के फूल पर उसका बच्चा सो रहा है। बहू उसे गोदी में लेकर घर आई। इधर राजा परेशान था कि बहू वापिस आयेगी तब क्या जवाब देगा। पर जब बहू की गोद में बच्चा देखा तो सारी घटनाएँ मालूम हो गयीं। तभी से हर छट का व्रत करने की प्रथा हो गयी।

प्रायः सभी कथाएँ षष्ठी देवी के महत्व से सम्बद्ध हैं। पुत्र के शुभ-कल्याण की भावना से यह त्योंहार औरतें मनाती हैं। हर छट के चित्रों में अनेक प्रतीक बनाये जाते हैं। कहीं केवल देवी के रूप में सजाकर षष्ठी देवी को चित्रित किया जाता है; कहीं गौर, बिहारी, शिव-पार्वती, गंगा-यमुना, सूर्य-चन्द्र, गणेश-लक्ष्मी, पशु-पक्षी, सर्प-विच्छू, भँवरा, सियाऊ, मछली तथा घर-गृहस्थी और श्रृंगार की प्रत्येक वस्तु चित्रित की जाती है।

ब्रज में इस छट (हर छट) के दिन बलराम का जन्मदिवस मनाते हैं। उनका

मुख्य आयुद्ध हल तथा मूसल था। हल धारण वाले व्यक्ति से सम्बन्ध रखने के कारण इस व्रत का नाम हलषष्ठी पड़ा। ऐसा इस क्षेत्र में विश्वास है। कहीं-कहीं इसी दिन को चन्ता छट के नाम से भी मनाया जाता है। आजकल पश्चिमी क्षेत्रों में भित्ति या भूमि अलंकरण के रूप में कुछ बनाने का प्रचलन नहीं है। पश्चिमी भाग का उत्तराखण्ड का क्षेत्र तो इस त्यौहार के नाम से भी अनभिज्ञ है।

कृष्ण जन्माष्टी : हर छट के बाद कृष्ण जन्माष्टमी का त्यौहार मनाया जाता है, जोकि भाद्रपद मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को कृष्ण-जन्म की खुशी में मनाया जाता है। इस उत्सव की अनोखी छटा ब्रज प्रदेश में देखने को मिलती है। महाभारत काल के कुशल योद्धा तथा गीता के उपदेशक भगवान श्रीकृष्ण ने कंस के अत्याचारी शासन से मथुरा की जनता को बचाया था। कृष्ण-जन्म से सम्बन्धित कथा निम्न प्रकार है।

द्वापर युग में कंस नाम का बहुत ही दुष्ट, दुराचारी तथा प्रजा-पीड़क राजा था। उसने अपनी बहन देवकी का विवाह वसुदेव नामक एक यदुवंशी वीर सरदार से किया था। जब कंस अपनी बहन को ससुराल भेज रहा था कि तभी आकाश-वाणी हुई कि हे कंस ! जिस लाडली बहन को तुम विदा कर रहे हो, उसी के गर्भ से आठवाँ पुत्र तेरा काल होगा। कंस ने जब यह सुना तो देवकी को मार डालने की उद्यत हो गया। तब वसुदेव ने समझाया कि औरत को मारना ठीक नहीं है। हम तुम्हें अपनी प्रत्येक सन्तान दे जाया करेंगे। कंस उनकी बात मान गया और उनको कारागार में डाल दिया। वचनबद्ध वसुदेव अपने सभी पुत्रों को देते गये तथा कंस उनको मारता रहा। जब भाद्रपद कृष्ण अष्टमी आई, तब भगवान विष्णु ने दर्शन दिये और कहा कि तुम मुझे नन्द के घर गोकुल पहुँचा दो तथा नवजात कन्या को उठा लाओ। यह सुनकर वसुदेव जी भगवान कृष्ण को लेकर गोकुल चलने को तैयार हुए। पहरेदार स्वतः ही सो गये। हथकड़ी और बेड़ी अपने आप ही खुल गई। वसुदेव नवजात शिशु को सूप में उठाकर उस अंधेरी रात्रि में गोकुल से चले। वसुदेव ने जब कृष्ण जी को लेकर यमुना में प्रवेश किया तो यमुना नदी बढ़ने लगी, यहाँ तक कि वसुदेव के गले को छू लिया। चरण कमल छूने को लालायित यमुना कृष्ण द्वारा पैर लटका दिये जाने पर बिल्कुल घट गई। वसुदेव यमुना पार कर गोकुल गये। वहाँ खुले दरवाजे तथा सोई यशोदा को देखकर बालक कृष्ण को वहीं सुला दिया और सोई कन्या को लेकर वापस आ गये। बच्चे के रोने की आवाज सुनकर राजा कंस ने बच्चे को मँगवा लिया। पर जैसे ही पत्थर पर पटकना चाहा वह कन्या आकाश में उड़ गई। वहाँ पर पहुँचते ही वह साक्षात् देवी के रूप में प्रकट होकर बोली, 'हे कंस, तुम्हें मारने वाला तो गोकुल में बहुत पहले ही पैदा हो गया।' बड़े होने पर उन्हीं कृष्ण ने पापी कंस को मार कर प्रजा को अत्याचारी से बचाया।

प्रायः समस्त उत्तर प्रदेश में यह त्यौहार मनाया जाता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश

में सबसे अधिक महत्व ब्रज के क्षेत्रों में है। मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, वरसाना, गोवर्द्धन आदि स्थानों में समस्त मंदिरों को सुन्दर रूप से खूब सजाया जाता है। मथुरा के द्वारिकाधीश मंदिर की झाँकी देखने को जनता दोपहर बाद से ही उमड़ पड़ती है। लगभग पन्द्रह दिन पहले से ही जगह-जगह कृष्णलीला, रासलीला, ब्रज भाषा में खेली जाती है। कृष्ण की जन्मस्थली में इसकी शोभा अद्वितीय होती है। दिन भर लोग व्रत रखते हैं, झाँकियाँ सजाते हैं तथा रात्रि में १२ बजे कृष्ण-जन्म की खुशी में खीरा काटकर प्रसाद ग्रहण करते हैं। विभिन्न प्रकार के मिष्ठान इस समय उत्तर प्रदेश में बनाये जाते हैं तथा रात्रि में उनसे भोग लगाकर शंख, घंटा आदि बजाकर भगवान के जन्मोत्सव को मनाते व प्रसाद वितरण करते हैं। इस समय कहीं-कहीं भित्तियों पर बहुरंगी चित्रण किया जाता है, जिसमें कृष्ण की बाललीलाओं तथा समस्त जीवन की झाँकी प्रस्तुत की जाती है।

बुन्देलखण्ड, भोजपुरी और उत्तराखण्ड में इस त्यौहार का उतना महत्व नहीं, जितना ब्रज क्षेत्र में है। ब्रज में तो लगभग एक माह तक झाँकी व छटा के रूप में मंदिरों की शोभा अद्वितीय होती है।

हरि तालिका तीज : भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को हरि तालिका तीज के रूप में मनाया जाता है। सुहाग की आकांक्षा रखने वाली स्त्रियाँ इस दिन शंकर-पार्वती सहित मिट्टी की मूर्ति बनाकर पूजन करती हैं। वधुओं को शृंगार-पिटारा दिया जाता है। दिन भर व्रत रखकर शाम को शिव-पार्वती की मूर्ति की पूजा करती हैं। कदली स्तम्भों से गृह को सजाकर नाना प्रकार के मंगलगीतों से रात्रि जागरण करती हैं। बनारस और मिर्जापुर के क्षेत्रों में इसका बहुत महत्व है। अमर सुहाग की कामना में स्त्रियाँ दिन भर, रात्रि भर उपवास करती हैं। कजली गायी जाती है। महीनों पहले ही कजली गाना आरम्भ हो जाता है तथा पूरे भाद्रपद मास चलता ही रहता है।

कहा जाता है कि पार्वती ने यह व्रत भगवान शिव को प्राप्त करने के लिए किया था। इसलिए अबल सुहाग की कामना हेतु यह व्रत किया जाता है।

उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भागों में केवल ब्रज प्रदेश को छोड़कर अन्य भागों में इसका महत्व कम है। पूर्वी भागों के भी भोजपुरी क्षेत्रों में महत्व अधिक है, अन्य में कम। परन्तु बुन्देलखण्ड में यह खूब जोर-शोर से मनाया जाता है। सुहागिन स्त्रियाँ दूज की शाम को स्नान करके सेमई व खीरा खाकर इसे आरम्भ करती हैं। तीज के दिन मिट्टी की 'गौर' रचकर उसका शृंगार करती हैं और पिरों चढ़ाती हैं, चूड़ी पहनती हैं। यदि प्यास लगती है तो कांसे की धाली में पानी भर के कुश डालती हैं, फिर मुँह के बल पानी पीती हैं। अगले दिन, गणेश चतुर्थी के दिन, सुबह गौर को पानी में सिराकर, गणेश जी की पूजा खीरा, खीर, पंजीरी से करती हैं और व्रत को खोलती हैं। इसमें किसी भी प्रकार का भूमि या भित्ति अलंकरण नहीं बनाया जाता, केवल मिट्टी की 'गौर' की स्थापना होती है।

गणेश चौथ : भाद्रपद शुक्ला चौथ को गणेश चतुर्थी का व्रत किया जाता है। प्रातः गणेश जी की प्रतिमा बनाकर श्रद्धाबनत हो मोदक तथा हरी दूर्वा से उन्हें भोग लगाते हैं। गणेश चतुर्थी के दिन की कथा इस प्रकार है, जिसको पौराणिक या शास्त्रीय कह सकते हैं।

एक समय भगवान शंकर स्नान हेतु कैलाश पर्वत से भोगवती नामक स्थान पर गये। उसी समय घर पर पार्वती ने स्नान करते समय अपने मूल से एक पुतला बनाकर सजीव कर दिया तथा उसका नाम गणेश रखा। गणेश को देवी ने आज्ञा दी कि तुम द्वार पर पहरा दो। किन्तु यह ध्यान रहे कि कोई अन्दर प्रवेश न करने पाये। थोड़ी ही देर में शंकर जी आ गये और घर के अन्दर जाना चाहा। तभी द्वार पर बैठे गणेश जी ने उन्हें रोक दिया। क्रोधित होकर शंकर ने त्रिशूल से उनका सिर काट दिया।

टेढ़ी भूकुटी वाले शिव जब अन्दर पहुँचे तो शैलजा (पार्वती) ने समझा, भोजन-विलम्ब के कारण शिव कुपित हैं। इसलिए शीघ्र ही भोजन करने का निवेदन किया। दो पात्रों में भोजन लगा देख विगम्बर शिव ने पार्वती से पूछा, यह दूसरा पात्र किसके लिए लगाया गया है। पार्वती बोली, बहिर्द्वार पर पहरा देने वाले लाडले पुत्र गणेश के लिए है। यह सुनकर शिव ने कहा कि मैंने तो उसकी जीवन-लीला समाप्त कर दी है। तब तो पार्वती बहुत दुखी हुई और प्रिय पुत्र के पुनर्जीवन के लिए आग्रह किया। देवी को प्रसन्न करने के लिए शिव ने तुरन्त उत्पन्न हुए हाथी के बच्चे का सिर काटकर बालक के धड़ से जोड़ दिया। तब पार्वती ने प्रसन्नतापूर्वक पति-पुत्र को भोजन कराया। क्योंकि यह घटना भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को घटी थी, इससे ही इसका नाम गणेश चतुर्थी पड़ा।

बुंदेलखण्ड में इस उत्सव का बहुत महत्व है। यह उत्सव गणेश चतुर्थी से लगभग ग्यारह दिन तक चलता है। प्रातः सायं आरती उतारी जाती है, व्रत भी रखते हैं। ग्यारहवें दिन मूर्ति को जल में विसर्जित कर दिया जाता है। देवी-देवताओं को जल विहार के लिए नदी तक ले जाने की प्रथा है, मेला भी लगता है।

गणेश जी हमारे बहुत ही प्राचीन देवता हैं। जिस प्रकार आज भी किसी प्रकार के शुभ कार्य के करने से पूर्व गणेश जी की पूजा की जाती है, वैसे ही वैदिक आर्य भी करते थे। मिट्टी, गोबर तथा सुपारी पर कलावा बाँधकर भी गणेश जी स्थापित करने की प्रथा है।

ऋषि पंचमी : सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की पंचमी को ऋषि पंचमी मनाई जाती है। ब्रज प्रदेश और भोजपुरी प्रदेश में इसका प्रचलन अधिक है। इस दिन गोबर से पूजा-स्थान को लीपकर अनेकों रंगों से सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर मिट्टी या ताँबे का घड़ा रखते हैं। ऊपर के ढक्कन में पंचरत्न, फूल, गंध और अक्षत आदि रखकर वस्त्र से ढक देते हैं। इसी स्थान पर अष्टदल कमल बनाकर सप्त ऋषियों (कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा

वसिष्ठ) की पूजा षोडशोपचार रीति से करके ब्राह्मण को दान भी देने का विधान है। यह त्यौहार बनारस में देखने योग्य होता है।

बुबड़ी सातें : त्यौहार भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को मनाया जाता है। इस दिन राते पर **बुबड़ी** (कुछ बच्चों के चित्र, सर्पों की मूर्ति, एक मटका और एक स्त्री का चित्र) मिट्टी से बनाया जाता है। चावल, जल, दूध, रोली, आटा, घी, चीनी आदि से भोग लगाया जाता है। मोठ व बाजरा भी चढ़ाते हैं। त्यौहार पर एक कथा भी कही जाती है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में केवल ब्रज में मनाया जाता है, जबकि पूर्वी क्षेत्रों में केवल बुंदेलखण्ड में यह त्यौहार मनाया जाता है। बुंदेलखण्ड में इसी दिन **संतान सप्तमी** का व्रत विवाहित स्त्रियाँ रखती हैं। इस दिन सास बहू के लिए चाँदी की चूड़ियाँ बनवाती हैं। प्रत्येक वर्ष इस चूड़ी में थोड़ी चाँदी और मिलवाकर फिर से बनवाई जाती है, सात पान, सात सुपारी, सात हल्दी की गाँठ, सात मीठे पेड़े तथा फूलों से चाँदी की चूड़ी की पूजा की जाती है और उसी दिन पूजा के पश्चात् पहन ली जाती है। सन्तान-प्राप्ति तथा उनके कल्याण के लिए ही पुत्रवती स्त्रियाँ इसे मनाती हैं।

इसी सन्दर्भ में एक बात उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार 'अहोई अष्टमी' (अहोई आठें) पर खड़ी बोली व ब्रज भाषा-भाषी क्षेत्रों में स्त्रियाँ चाँदी की होई माता का चित्र तथा चाँदी के दाने काले धागे में पिरोकर पहनती हैं और पुत्र तथा संतान की कामना के लिए व्रत रखती हैं और प्रत्येक अहोई को चाँदी के दो दाने माला में और डलवा लेती हैं, उसी प्रकार बुंदेलखण्ड की स्त्रियाँ चाँदी की चूड़ियों में चाँदी बढ़वाती हैं।

उत्तराखण्ड, रहेली, अवधी, कन्नौजी और भोजपुरी भाषा-भाषी क्षेत्रों में इसका चलन करीब-करीब नहीं है।

आश्विन मास

असोज मास लगते ही पूर्णिमा से **श्राद्ध पक्ष** आरम्भ हो जाता है जो अमावस्या तक रहता है। इस पक्ष को पितृपक्ष, पितर तथा पश्चिमी जिलों में कनागत के नाम से जाना जाता है। समस्त भारत में यह पितरों को श्रद्धांजलि अर्पण करने और उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करने के रूप में मनाया जाता है। इन दिनों ब्राह्मणों व गरीबों को दान-दक्षिणा दी जाती है।

इसी समय पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ब्रज व खड़ी बोली वाले क्षेत्र में क्वारी लड़कियों का एक त्यौहार 'साँझी' के नाम से मनाया जाता है। उत्तराखण्ड में इसके नाम को भी कोई नहीं जानता। राजस्थान, हरियाणा, मध्यप्रदेश, पंजाब और हिमाचल का कुछ भाग इस त्यौहार को मनाता है। ब्रज प्रदेश पर राजस्थान तथा खड़ी बोली वाले क्षेत्रों में हरियाणा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

साँझी : खड़ी बोली वाले क्षेत्रों में अमावस्या को ही साँझी देवी की प्रतिमा

दीवार (चित्र : २२) पर बनाई जाती है जिसे वे गोबर से बनाती हैं तथा मोती, शीशा, शंख, सीपी, रूपहली व सुनहरी पन्नी व मिट्टी के बने गहने (जिन्हें रूपहला या सुनहरा रंग दिया जाता है) के द्वारा साँझी देवी का शृंगार करती हैं। ओढ़नी के स्थान पर पीला कागज व लहंगे के स्थान पर लाल कागज का प्रयोग किया जाता है। साँझी की पूजा की जाती है, आरती उतारी जाती है। साँझी सम्बन्धी विभिन्न उल्लास और करुणा से ओतप्रोत गीत गाती हैं। साँझी यों ही दीवार पर लगी-लगाई छोड़ दी जाती है। दशहरे के दिन उसे उतार कर जल में विसर्जन कर दिया जाता है।

ब्रज-भाषा क्षेत्रों में साँझी का त्यौहार पूर्णिमासे ही आरम्भ हो जाता है। किशोरियाँ घर की बाहरी दीवार पर गोबर से लीप कर गोबर व मिट्टी की सहायता से नित्यनवीन विभिन्न प्रकार के चित्र अमावस्या तक बनाती हैं, जिनमें जाति विशेष के साथ-साथ भिन्नता दिखाई पड़ती है। अमावस्या को साँझी रानी को खूब सजाया जाता है। सजाने के लिये बहुरंगी कागज, पन्नी, शीशे के टुकड़े, शंख, कौड़ी, मोती तथा अनेक विभिन्न प्रकार के मिट्टी, गिलट या पत्तियों के गहने प्रयोग में लाये जाते हैं। दुपट्टा व लहंगा या तो कपड़े का या फिर रंगीन कागज का बनाया जाता है। अमावस्या के दिन कोट^१ की वह सभी वस्तुएँ चित्रित की जाती हैं जो पिछले पन्द्रह दिनों तक बनाती रहती हैं। इसके साथ ही साथ चन्द्र, सूर्य, तारे, गंगा-यमुना, नाग, मोर, तोता, कौवा, बूढ़ा ब्राह्मण, डमरू, तीर-कमान, सीढ़ी आदि तथा नाइन व बारिन भी चित्रित की जाती हैं (चित्र : २३ क व ख)। शादी के प्रथम वर्ष सोलह कोटों की सोलह घर सजाकर पूजा करने का विधान था जो अब कुछ-कुछ मिटता जा रहा है। इस दिन लड़की की ससुराल को सोलह कटोरियों को पेड़ों से भरकर भेजा जाता है।

पितृपक्ष की समाप्ति पर प्रतिदिन की पाड़ी हुई सुखी संझ्या तथा अन्तिम दिन कोट का सामान लेकर किशोरियाँ विशेष समारोह के साथ किसी तालाब, नदी अथवा कुएँ-बावड़ी में विसर्जित करती हैं।

विद्वानों ने संझ्या को विभिन्न रूपों में माना है (चित्र : २४)। मोहन स्वरूप माटिया के विचार में यह भगवती पार्वती का रूप है, तो डॉ० शंकरलाल यादव इसे दुर्गा के रूप में मानते हैं। ब्रज में इस त्यौहार को राधा की देन समझा जाता है। कुछ लोग इसे ब्रह्मा की मानसी कन्या संघ्या का रूप मानते हैं तथा कुछ केवल वरदायिनी आराध्य देवी का रूप मानते हैं, जो पूज्य है। विद्वान लोग संझ्या अथवा साँझी को कुछ भी समझें, कन्याएँ इसे अपनी आराध्य देवी मानती हैं। बहिन, सखी, सहेली और माँ सभी रूपों में इसे देखती हैं तथा अपनी भावनाओं, इच्छा-आवश्यकताओं एवं आस्था-विश्वासों के अनुरूप इसे विविध रूपों में अंकित करती हैं। इस समय गाये जाने वाले गीत बहुत छोटे-छोटे होते हैं। ये किशोरियों की वय के अनुसार ठीक ही प्रतीत होते हैं। ये गीत, पूजा, सांध्य आरती, शृंगार

व बिछोह के हैं जिनको सुनकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह त्यौहार मनभावनी कन्या के अल्पायु में मृत्यु के कारण पितृपक्ष में मनाया जाता है और इस तरह उस कन्या का श्राद्ध किया जाता है। डॉ० भानावत^१ ने इसका बहुत सुंदर वर्णन किया गया है।

उत्तर प्रदेश के अन्य क्षेत्रों में यह त्यौहार नहीं के बराबर है। उत्तराखण्ड में इसे कोई जानता तक नहीं; पूर्वी उत्तर प्रदेश में कहीं-कहीं कोई मनाता है। मेरे विचार से यह केवल स्थानान्तरण के कारण है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के अवधी व कन्नौजी भाषा बोलने वाले कुछ क्षेत्रों में इलाहाबाद के आस-पास विशेष रूप से क्वारी लड़कियाँ 'संजिया देवी' के नाम से पितृ पक्ष में एक त्यौहार मनाती हैं। नौ दिन तक घर के अन्दर दीवार पर गोबर के द्वारा लीपकर संजिया बनाती हैं। आठ दिन तक अलग-अलग डिजाइन गोबर व मिट्टी को मिलाकर बनाती हैं और फिर उस पर कौड़ी चिपका देती हैं (चित्र: २५क, ख, ग)। सन्ध्या समय प्रतिदिन कई लड़कियाँ मिलकर संजिया देवी के पाँच या सात गीत गाती हैं तथा गीत की ध्वनियों से बहिन भाई को आशीष देती हैं। यहाँ की संजिया तथा ब्रज की साँझी में प्रयोग किये गये सामान और समय में (पूर्ण रूप से नहीं) समानता होते हुए भी अन्य कोई समानता नहीं है।^२ इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तर प्रदेश के पश्चिम में दो तथा पूर्व में एक रूप साँझी के उत्सव का सामने आता है, परं दोनों का उद्देश्य अलग-अलग है। एक में जहाँ अच्छा वर व घर पाने की चाह है, तो दूसरे में भाई के आयुष्मान होने की कामना। जहाँ एक पन्द्रह दिन तक चलता है, वहाँ दूसरा केवल नौ दिन तक ही मनाया जाता है।

टेसू व साँझी—पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इन्हीं दिनों एक दूसरा उत्सव टेसू व साँझी का देखने को मिलेगा। यह कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से दशहरे तक मनाया जाता है।^३

प्राचीन समय में टेसू के प्रतीक के लिए लड़के मिट्टी का कमर तक का आदमी का पुतला बनाकर उसमें तीन खपच्चियों को लगा देते थे और कागज का कोट लगा देते थे। परन्तु अब कुम्हार लोग सुन्दर-से-सुन्दर पेपरमशी या मिट्टी के बनाकर, सजाकर बाजारों में लाते हैं, जिसकी बिक्री अमावस्या से आरम्भ हो जाती है। कहीं-कहीं इसे दशहरे पर ही खरीदते हैं। बच्चे दीपक जलाकर लोकगीत गाते हुए घर-घर जाकर पैसे एकत्र करते हैं। तत्पश्चात् सभी लोग भोग की सामग्री को आपस में बाँट लेते हैं। साँझी को गगरी या हांडी में छेद करके बनाते हैं, फिर चूने से पोतकर सुन्दर चित्रकारी की जाती है जिसके अन्दर दीपक जलाकर ढक्कन या कपड़े से ढक देते हैं जैसे फि सजी संवरी दुल्हन शृंगार कर लाज का घूँघट ओढ़े बैठी हो। टेसू व साँझी (चित्र: २६) के मिले-जुले गीत गाये जाते हैं:

टेसू जी, टेसू जी, बहुत दिनों में आये हो।

साथ में लाये साँझी रानी, सारी खुशियाँ लाये हो।

देसू-गीत का आरम्भ इसी तरह होता है। अधिकतर ये गीत तुकबंदियों पर आधारित होते हैं।

मामूलिया : बुन्देलखण्ड का एक सुन्दर पर्व, जो आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में अविवाहित लड़कियों के द्वारा मनाया जाता है, मामूलिया के नाम से जाना जाता है। मामूलिया भ्रातृस्नेह की गौरवमयी भावना, लोक-कल्याण के अमरगीत तथा सामूहिक कर्तव्य के प्रति निष्ठा से ओतप्रोत बालाओं का प्रिय पर्व है जिसे वे बड़े उमंग और उत्साह से मनाती हैं। इस त्यौहार में अविवाहित लड़कियाँ बेर के वृक्ष की शाखाओं को सजाकर अपने पुरा पड़ोसियों के द्वार पर जाकर उसका प्रदर्शन करती हुई लोकगीत गाती हैं :

ल्याओ ल्याओ चंपा चमेली के फूल, सजाओ मेरी मामूलिया।

ल्याओ घिया तुरैया के फूल, सजाओ मेरी मामूलिया।

इसी प्रकार गीतों को फूलों व सजाने वाली वस्तुओं के नाम लेकर बढ़ाते जाते हैं तथा उसको सजाने में भाभी, चाचा, मामी तथा सखी-सहेली सभी साथ देती हैं। यहाँ तक रानी गौरी अर्थात् पार्वती भी पीछे नहीं रहतीं। अभी शृंगार पूरा भी नहीं हो पाया था कि उसको लिवाने वाले आ गये। लड़कियाँ इस समय गा उठती हैं :

मामूलिया के लाये लिवउआ, भूसक चली मोरी मामूलिया।

या फिर

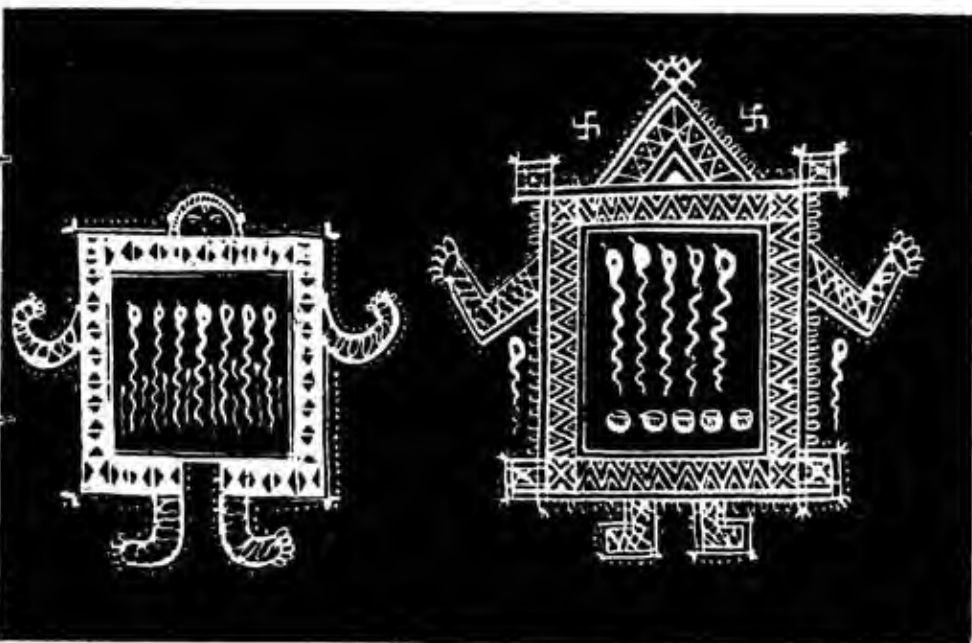
लै लो-लै लो हमारी मामूलिया गुलबेरिया को फूल सजइयो मोरी मामूलिया।

मामूलिया में बेर के वृक्ष की डाली का ही प्रयोग किया जाता है। इसके ऊपर एक कहावत है : 'समय कचरिया असमय बेर' अर्थात् अच्छी वर्षा पर कचरिया तथा न होने पर बेर का वृक्ष जीवित रहता है। बेर से साधारण लोगों का जीवन-निर्वाह होता है। यह शीतल तथा पित्तवर्द्धक होता है। सूखे बेर को पानी में उबालकर पिया जाता है। साथ ही कच्चे बेर को औषधि रूप में देने से कूकुर खाँसी को बड़ा लाभ होता है। बेर को प्रतीकात्मक रूप में स्त्री व घर के लिए प्रयोग किया गया है। लड़की में भी पुष्पों जैसी सुगन्ध, पुत्र रूपी सुफल देने की अनुपम शक्ति और काँटों से अपने उद्यान रूपी परिवार को सुरक्षित रखने की अटूट श्रद्धा-भक्ति होती है। बेरी के वृक्ष में फूल, फल और काँटे होते हैं जो गार्हस्थ्य जीवन के प्रतीक होते हैं। अपरोक्ष रूप में कन्याओं को इस त्यौहार के माध्यम से भावी जीवन की तैयारी कराई जाती है।

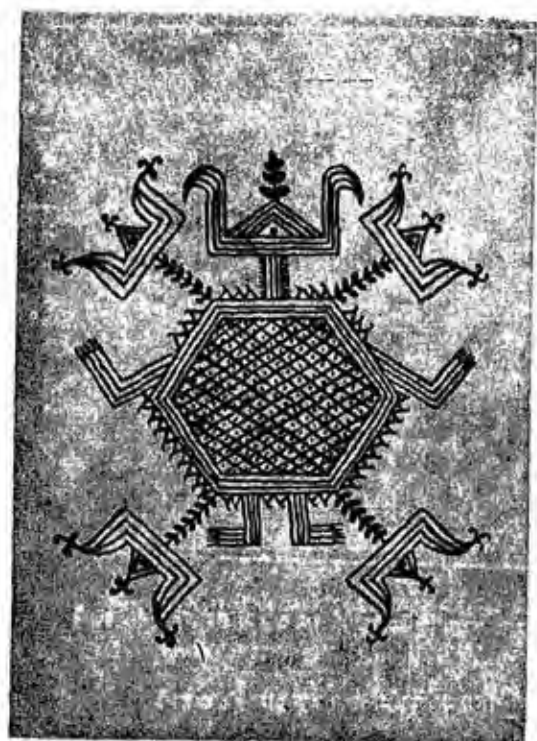
मामूलिया को सजाने के बाद आँगन के बीच में रोप दी जाती है (चित्र: २७)। फिर हल्दी, अक्षत, होम आदि से पूजन करती हैं। उस समय भी गीत गाये जाते हैं। इसके बाद मामूलिया की परिक्रमा करती हैं। यह त्यौहार कृष्ण पक्ष में पड़वा से लेकर अमावस्या तक पूरे पन्द्रह दिन तक चलता है। प्रतिदिन संध्या के समय गाँव की किशोरियाँ घर के बाहर चबूतरे पर एकत्र होती हैं। लगभग दो फुट से



चित्र १५ : कुनयुंमू । कुन्देलखण्ड
क्षेत्र का भित्ति चित्रण ।



चित्र १६ : नाग चित्रण । इसका सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में प्रचलन है ।

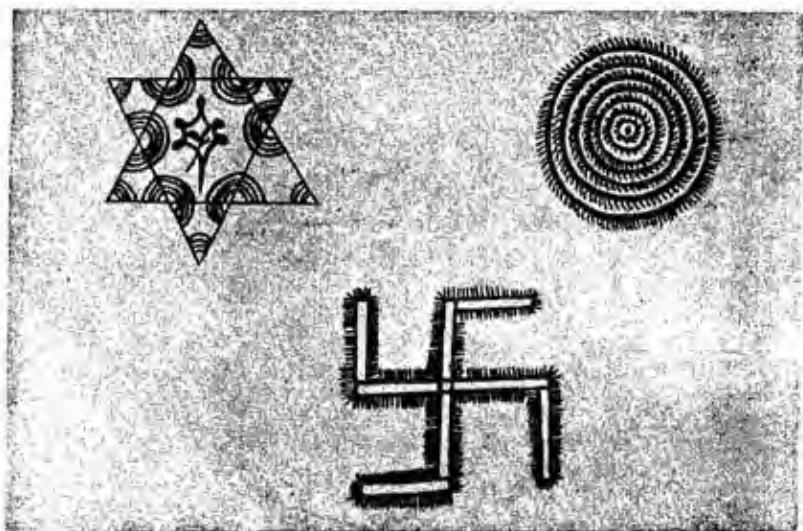


चित्र १७ : राखी का चौक । कुवाड़
क्षेत्र का भूमि चित्रण ।



चित्र १८ : रखावण्डन ।
पश्चिमी उत्तर प्रदेश का
भित्ति चित्रण ।





चित्र २० : राखी चित्रण । श्वेताम्बर जैनियों का एक लोकप्रिय भित्ति चित्रण ।



चित्र २१ : हर छठ । अवध से मुम्बईलखनऊ तक के क्षेत्रों का भित्ति चित्रण । इसे जावल के पीठे या रंगों से बनाते हैं ।

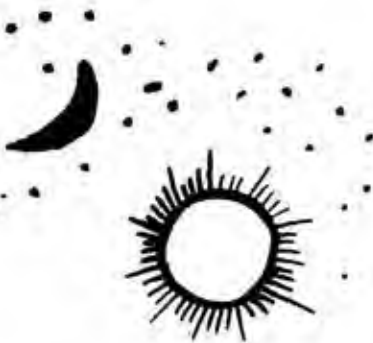


चित्र २३-क : सक्षी का चित्रण । इसे पन्द्रह दिनों तक क्रमशः बनाते हैं । इस चित्र में आठ
८-दिनों का चित्रण है (देखिए, द्वितीय अध्याय की पाद-टिप्पणी-१) ।



चित्र २३-ब: सांसी का चित्रण । चित्र में बाद के सात दिनों का चित्रण दिया गया है।
अंतिम अंश सांसी के कोट को दर्शाता है (रेबि टू, द्वितीय अध्याय की पाद-टिप्पणी-१) ।

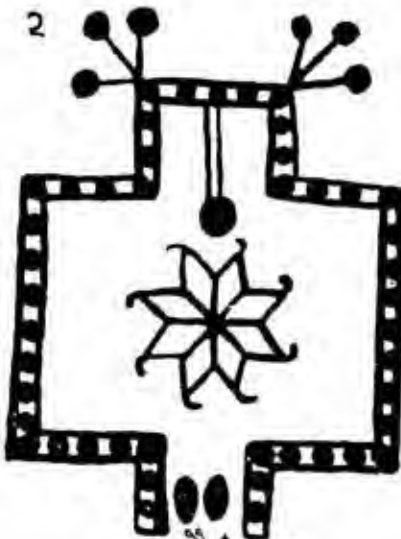
1



3



2



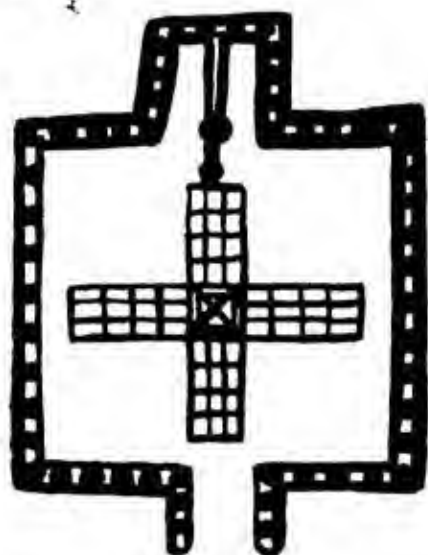
4



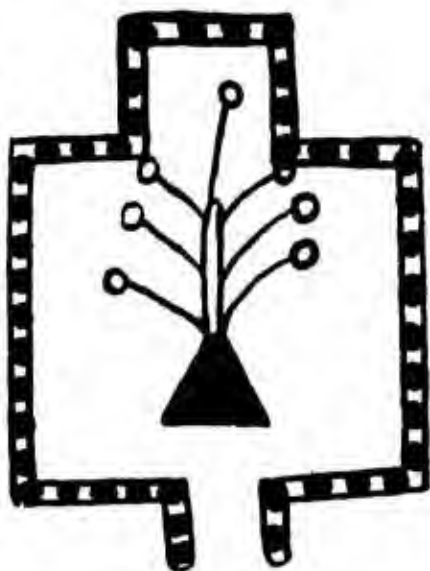
गौरी-जेन्ना

चित्र २५-क : संझ्या देवी । अवधी व कन्नौजी भाषा बोलने वाले क्षेत्रों में प्रचलित । इसका चित्रण भी दिनों तक किया जाता है । इस चित्र में पहले चार दिनों का चित्रण दिया गया है।

5



7



6



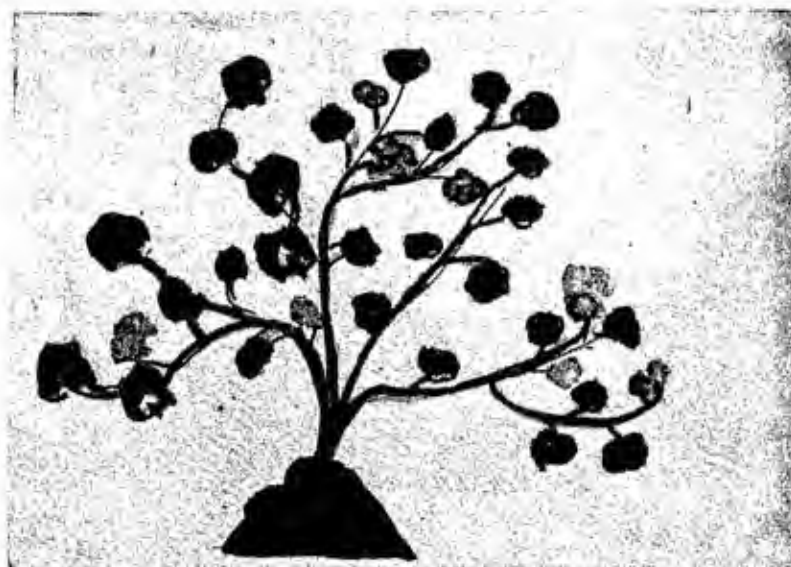
8



चित्र २१-ख : संख्या सेवी । इस चित्र में बायीं के पाँच दिनों का चित्रण दिया गया है ।
(देखिए, द्वितीय अध्याय की पाद-टिप्पणी-४) ।



चित्र २६ : टेसू व झौंसी । राज प्रदेश का बच्चों का एक लोकप्रिय त्योहार ।



चित्र २७ : मामूलिया । बुन्देलखण्ड में इस त्योहार पर बेर वृक्ष की डाली को आगन में रोंप कर पूजा होती है ।



चित्र २८ : महालक्ष्मी पूजन । रहेली, अबधी, कन्नौजी व बुन्देली भाषी क्षेत्रों में प्रचलित मूर्ति । इस मूर्ति को आग में पकाया नहीं जाता ।



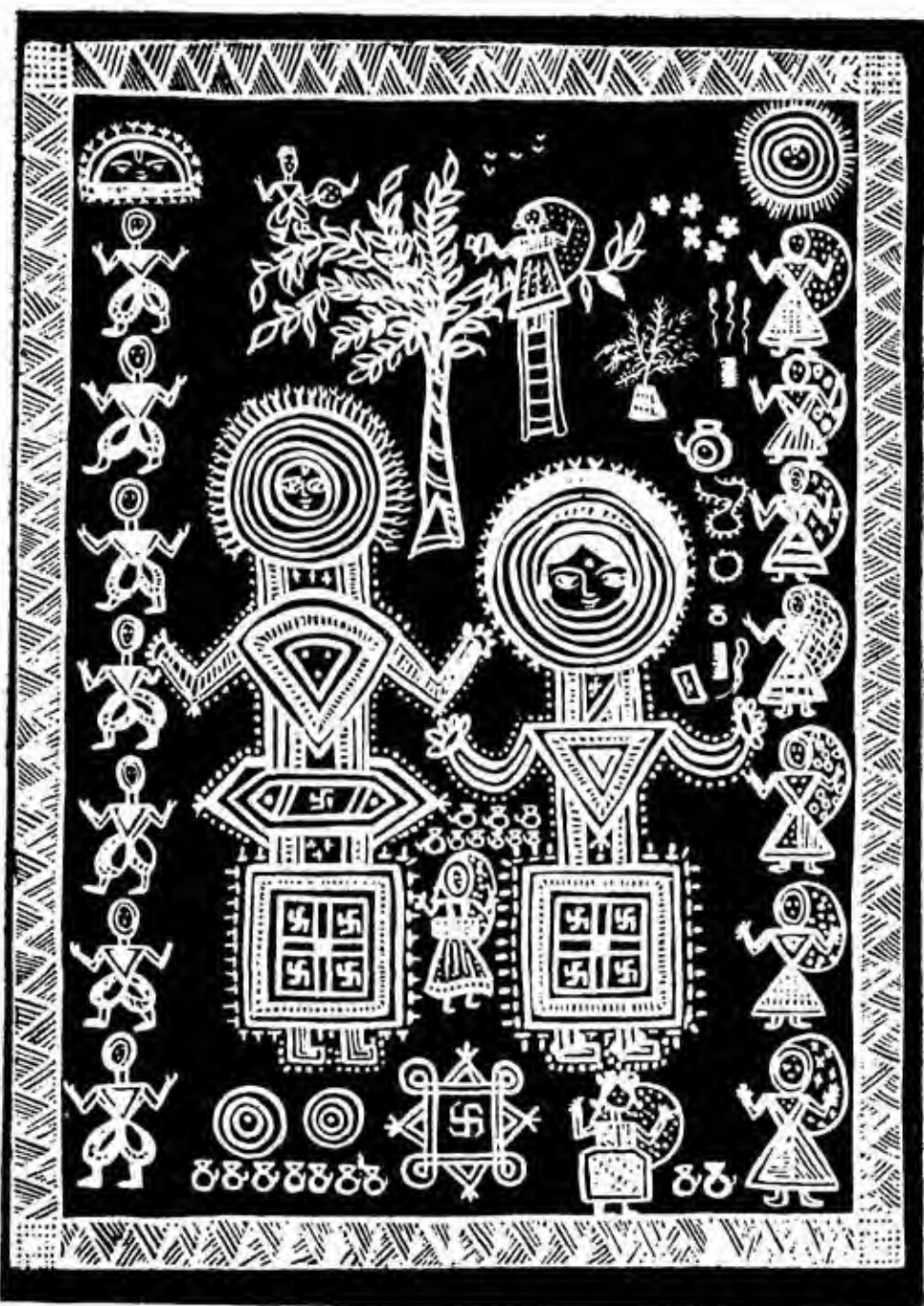
चित्र २९ : दुर्गा की चौकी । कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित भूमि अलंकरण ५।



चित्र ३१ : ग्योइता का भित्ति चित्रण । इसे घर की बाहरी दीवार पर बनाने की प्रथा है ।



चित्र ३२ : नारे मुडटा ।
गुन्देलखण्ड का भित्ति चित्रण ।
इसे घर के बाहरी दालान में
बनाते हैं ।]



चित्र ३४ : करवा चौथ । नग क्षेत्र का मिति चित्रण । इसे सफेद भित्ति पर रंगों से बनाते



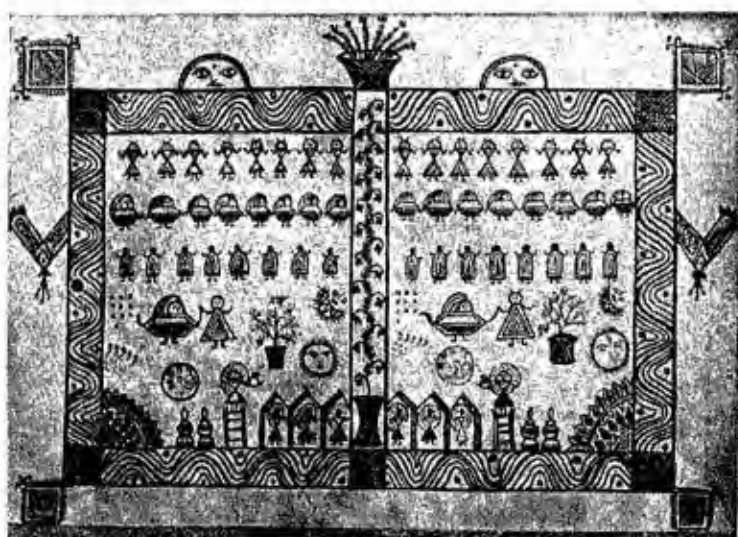
चित्र ३५ : करवा चौथ । इलाहाबाद में प्रचलित भित्ति चित्रण । इसमें एक मृत तथा एक जीवित व्यक्ति दर्शाया गया है ।



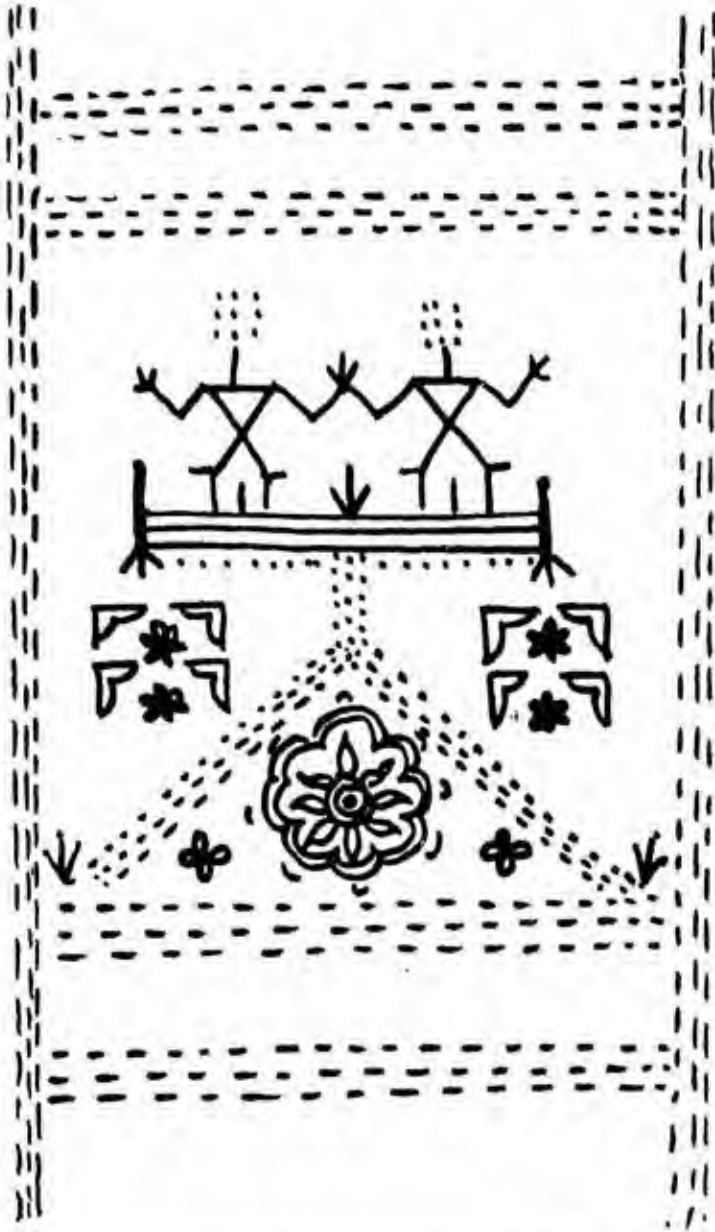
चित्र ३६ : करवा चौथ । पूजा के बाद बहू सास को भेंट देते हुए । चित्र में करवा चौथ का भित्ति चित्रण भी दिखाई दे रहा है ।



चित्र ३८ : अहोई अष्टमी । चतुर्वेदी परिवार का भित्ति चित्रण ।



चित्र ३९ : दो मुँह वाली अहोई । पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रचलित भित्ति चित्रण ।



चित्र ५८ : दीपावली । कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित । रसोई घर का एक भित्ति चित्रण ।

लेकर तीन-चार फुट तक के क्षेत्र को वे गोबर से लीपती हैं। इसके बाद बहुरंगी अल्पनाएँ बनाकर उसे तरह-तरह के फूलों से सजाती हैं। किस फूल का रंग किस फूल के साथ मिलेगा, इसका वे पूर्ण ध्यान रखती हैं। किशोरियों की कलाप्रियता अल्पना के रूप में तथा शृंगारप्रियता मामुलिया के शृंगार रूप में प्रदर्शित होती है।

मामुलिया के समय कहीं जाने वाली कहानी किसी बालिका के ससुराल में रहने की कष्ट गाथा को अपने में संजोये हुए है, ठीक 'साँझी रानी' की तरह। दोनों ही ससुराल में अत्यन्त दुखी रहीं और अन्त में उनकी मृत्यु हो गई। युगों-युगों से बाल-विवाह के कारण और मायके में माँ-बाप, भाई-भाभी, बहन के अत्यन्त दुलार के कारण गृहस्थ के समस्त झंझटों से बालिकाएँ दूर रहती हैं किन्तु विवाह होने पर उन्हें गृहस्थी के झंझटों में लगना ही पड़ता है। मानव स्वभाव स्वयं को सदैव ही अच्छा समझने का आदी है, जिसके परिणामस्वरूप ससुराल में सास व नन्दें अवश्य ही नयी बधू को बात-बात पर ताना देती हैं, अमानित करती हैं, तुलना करती हैं जिसके कारण केवल पति ही एक ऐसा होता है जिसका वह सहारा लेती है। अल्पवयस्का बधू अपना सब कुछ छिना जानकर दुखी रहती है और एक दिन गृहस्थी के भार व तानों से दबकर मिट जाती है।

मामुलिया का विसर्जन के साथ ही नदी या तालाब पर बड़ी जनता (बालक-बालिकाओं के झुंड) किशोरियों के हाथ से मिष्ठान छीनने के लिए झपट पड़ते हैं। किशोरियाँ मामुलिया के निर्माणस्थल पर आकर विभिन्न गीतों से यह उत्सव बड़े उत्साह के साथ मनाती हैं और भुने चने, ज्वार के फूले, ककड़ी, पंजीरी आदि को प्रसाद रूप में वितरित करती हैं।

दुख की बात तो यह है कि मुझे अपने सर्वेक्षण के बीच सबसे अधिक बाल-विवाह व्रज व बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों में ही मिले। इन त्यौहारों को लोगों ने लकीर के फकीर की भाँति मनाने का प्रचलन है तथा अतीत में घटित घटनाओं से कोई भी शिक्षा नहीं ली है। आज भी अबोध बालिकाओं को इसी तरह ससुराल में अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं और वे असमय ही मृत्यु को प्राप्त होती हैं।

महालक्ष्मी पूजन : इसी पितृ पक्ष में जहाँ एक ओर साँझी, संजिया, मामुलिया और टेसू व झाँझी का त्यौहार कुँआरी लड़कियों व बालकों द्वारा मनाये जाते हैं, वहीं दूसरी ओर एक अत्यन्त मनोहारी त्यौहार स्त्रियों का भी है। इसे **महालक्ष्मी पूजन** कहते हैं। यह आश्विन कृष्ण अष्टमी को मनाया जाता है। महालक्ष्मी पूजन उत्तर प्रदेश के रुहेली, अवधी, कन्नौजी, भोजपुरी व बुन्देली क्षेत्रों में कुछ विभिन्नता को लिए हुए बहुत अच्छी तरह से मनाया जाता है।

बुन्देलखण्ड में स्त्रियाँ तालाब से कांस लेकर आती हैं व पानी में डाल देती हैं तथा फिर उसी पानी से स्नान करती हैं। शाम गोधूलि बेला में सोलह शृंगार करके चौक पूरती हैं, उस पर पटला रखती हैं। पटले पर कच्ची मिट्टी के हाथ

को, जिस पर लक्ष्मी जी आरुढ़ होती हैं तथा पैरों पर सोलह दीवे (दीपक) लगे होते हैं, चूने या चावल के पीठे से पोत कर रखती हैं (चित्र: २८)। बेसन से गहने बनाकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार तेल या घी में तलती हैं तथा उनसे हाथी और महालक्ष्मी जी की प्रतिमा को सजाती हैं। महालक्ष्मी की कथा सुनती हैं, बेसन के बने मीठे और नमकीन पकवानों से भोग लगाती हैं। धूप, रोली, चावल, दूध आदि से पूजन करती हैं और फूलपत्तियों से दीये को जलाती हैं। आरती उतारने के पश्चात् महालक्ष्मी जी के आह्वान हेतु पूजा करती हैं। आश्विन मास कृष्ण पक्ष की अंधेरी संध्या में फूलों से भरी धरती पर सायं को यह त्यौहार बड़ा मोहक दृश्य उपस्थित करता है।

बरेली, शाहजहाँपुर, लखनऊ, कानपुर और इलाहाबाद के आसपास के क्षेत्रों में यह त्यौहार दूसरा ही रूप प्रस्तुत करता है। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के यहाँ प्रायः महालक्ष्मी का चित्र केले के हरे पत्ते पर रक्त चंदन से बनाया जाता है जो देखते ही बनता है। अन्य जातियों के यहाँ हाथी को, जो कभी महावत तो कभी महालक्ष्मी की मूर्ति के साथ होता है और कच्ची मिट्टी का बना होता है तथा जिसके पैरों पर सोलह दीपक भी लगे होते हैं, चावल के पीठे या चूने से पोता जाता है। सायं चार बजे इसकी पूजा होती है। दिन भर स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और कथा सुनती हैं।

यह कथा महाभारत से ली गई है। कहते हैं कि किसी समय गांधारी ने नारद जी से हस्ति नक्षत्र में महालक्ष्मी की पूजा-विधि पूछी। नारद जी ने पूजा का विधि-विधान बताया, जिसके अनुसार गांधारी ने पूजा की। कौरवों ने रथ बनाया। गांधारी ने उसमें बैठकर नगर भर में बायना बाँटा और दान दिया। कुन्ती की दीनता को देखते हुए वह उसको देने के लिए भी बहुत कुछ ले गई। परन्तु कुन्ती ने लेने से इंकार कर दिया और कहा कि मैं दान देने की अधिकारिणी हूँ, लेने की नहीं। गांधारी अपना-सा मुँह लेकर चली गई किन्तु कुन्ती इस प्रसंग से बहुत दुःखित हुई। अर्जुन व भीम ने जब कुन्ती को दुखी देखा तो कहा, 'माँ तुम क्यों व्यथित होती हो। तुम भी अगले वर्ष पूजा करना। माँ, हम तुम्हारे लिए इन्द्र का ऐरावत हाथी लायेंगे।' दूसरे वर्ष जब हस्ति नक्षत्र लगा तब अर्जुन ने इन्द्र को बाण से पन्न भेजा। इन्द्र का ऐरावत आया। कुन्ती ने प्रसन्न मन से पूजा की। दीपकों को जलाया गया, आरती उतारी गई, दान दिया, पकवान बनवाये और बायना बाँटा। इस पर गांधारी बहुत लज्जित हुई। तभी से इस त्यौहार का महत्व बढ़ गया। सदैव सफेद हाथी की ही पूजा की जाती है, दीपक जलाये जाते हैं। ऐरावत हाथी महालक्ष्मी का प्रतीक है। सर्वेक्षण के काल में यह कथा अवध, रुहेली तथा बुन्देली क्षेत्रों से प्राप्त की गई है।

स्त्रियाँ शाम को शृंगार के पश्चात् चौक पूरती हैं, उस पर हाथी को बिठाती हैं, फूल बत्तियाँ डालकर घी से दीपकों को जलाती हैं। एक आटे का भी दीपक आरते के लिए बनाया जाता है। सिन्दूर चढ़ाया जाता है, धूप और नैवेद्य को चढ़ाया जाता

है, आटे से बने मीठे पकवानों से ही भोग लगाया जाता है। गंगाजल, शहद, तुलसी के पत्ते, दही, दूध का पंचामृत बनाया जाता है। पूजा करने के बाद ही व्रत मिष्ठान से खोला जाता है। आटे के दीपक से महालक्ष्मी की आरती उतारी जाती है और दीपकों को पूजास्थल पर ही छोड़ दिया जाता है। होम की सुगन्ध, पकवानों की महक और दीपकों की जगमगाहट से सारा वातावरण आविर्भूत हो जाता है और लगता है कि महालक्ष्मी जी स्त्रियों पर प्रसन्न हो ऐरावत हाथी पर आरुढ़ होकर साक्षात् दर्शन देने को आई हैं। शंखों की ध्वनि भी आप घरों में सुन सकते हैं।

काशी में यह पर्व सोलह दिन निरन्तर 'राधा अष्टमी' (जो कि भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की अष्टमी होती है) से आरम्भ होकर आश्विन कृष्ण अष्टमी को समाप्त हो जाता है। काशी में इसे इसी कारण 'सौरहिया' (सौरहिया सोलहवाँ का अपभ्रंश है) कहते हैं। काशी में जनता सोलह दिन पर्यन्त लक्ष्मी कुण्ड पर स्थित महालक्ष्मी का दर्शन करती है। यह व्रत प्रातःकाल नदी या कुंड पर स्नान करते समय सोलह बार हाथ-पैर मुँह आदि धोने से आरम्भ होता है। इसके बाद सूत में सोलह गाँठें डालकर संकल्प कर व्रत का आरंभ होता है। प्रत्येक दिन इस सूत की पूजा करके दाहिने हाथ में ग्रहण करते हैं, कथा सुनते हैं। यह क्रम लगातार सोलह दिन तक चलता है और अंतिम दिन महालक्ष्मी की मूर्ति के पूजन के साथ समाप्त हो जाता है।

सभी क्षेत्रों में यह व्रत लक्ष्मी, पुत्र-पौत्रादि, सुहाग व समस्त ऐश्वर्य की अभिवृद्धि के लिए किया जाता है।

नवरात्रि: आश्विन शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक नौ दिन नवरात्रि के नाम से प्रसिद्ध हैं। नवरात्रि के ये नौ दिन बड़े ही पवित्र माने जाते हैं और इन दिनों दुर्गापाठ सर्वत्र किया जाता है। हमारे यहाँ दुर्गा को शक्ति की देवी मानते हैं। देवी का वाहन सिंह है तथा यह सदा अपने हाथ में खड्ग लिए रहती है। चार, आठ व सोलह हाथ वाली दुर्गाजी की मूर्ति को पूजने का प्रचलन है। दुर्गा के पूजन के लिए किसी पवित्र स्थान से मिट्टी लाकर वेदी बनाते हैं और उसमें जो व गेहूँ बो देते हैं। इसके बाद वेदी पर कलश रखते हैं। कभी-कभी कलश पर सोने, चाँदी, ताँबे, मिट्टी व पत्थर की दुर्गाजी की प्रतिमा बनाकर स्थापित करते हैं तो कहीं कलश पर ही पीछे की ओर स्वास्तिक, इधर-उधर त्रिशूल व बीच में तलवार बनाकर पूजन किया जाता है। घट को पवित्र जल से भरकर आम्र या पीतल के पत्तों से ढकते हैं, चन्दन लगाकर दूब, पंचरत्न तथा पंच पल्लव डालकर उस पर सूत या वस्त्र लपेटते हैं, तदनंतर जो व गेहूँ से भरा मिट्टी का पात्र घट के मुख पर रखते हैं और वरुण का पूजन कर भगवती का आह्वान करते हैं। नवरात्रि के समय कुमारी पूजन भी होता है। देवी-पूजन विधि में विभिन्न जातियों के रिवाज के अनुसार फेरबदल भी आप देखेंगे।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुमायूँनी क्षेत्रों में दुर्गा पूजन तो होता ही है परन्तु साथ

ही साथ प्रतिपदा के दिन सरस्वती का 'ऐपन' भी बनाते हैं (चित्र : २६) । फिर उसके ऊपर मिट्टी फैला देते हैं, चारों ओर गोबर की बाड़/मेंड़ बना देते हैं । पत्थर के नौ टुकड़ों को मेंड़ में लगा दिया जाता है और फिर उसमें सिन्दूर लगा दिया जाता है । इसके अतिरिक्त एक कलश की स्थापना करते हैं, जिसके भीतर पान, पीपल, बड़, आम व कुशा को जल के साथ रखते हैं । कलश के ऊपर जौ, गेहूँ, साबुत उड़द, लालकुत्तीर (गहत) तथा पीली सरसों को मिलाकर ढक्कन में रखते हैं, साथ में दीपक को जलाकर रखते हैं । यह दिया नौ दिन तक तिल्ली के तेल से लगातार जलता रहता है । मांसाहारी (मांस खाने वाले) अष्टमी के दिन बकरे की बलि चढ़ाते हैं, शाकाहारी नारियल चढ़ाते हैं । गढ़वाल क्षेत्र में भी दुर्गा की स्थापना प्रतिपदा को शास्त्रीय रीति के अनुसार होती है तथा नवरात्रि में लगातार दुर्गा की स्तुति की जाती है । अष्टमी को नवारी लड़कियों और लड़कों को जिमाने की प्रथा यहाँ पाई जाती है जो कि बहुत ही पुण्य का कार्य माना जाता है ।

उत्तर प्रदेश के अन्य सभी पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में नवरात्रि का विधिवत् पूजन उत्तराखण्ड के कुमायूनी व गढ़वाली क्षेत्रों की तरह ही होता है । हरिद्वार के नीचे उतरते ही राम की महिमा बढ़ जाती है, इसलिए दुर्गा-पूजन के साथ ही साथ रामलीला भी संबंध देखने को मिलती है । अधिकांश मैदानी भागों में अष्टमी को कन्या-वस्ये या कन्या लोकड़े (पाँच लड़कियाँ व एक लड़का) जिमाये जाते हैं तथा अष्टमी से गोबर के आठ उपले आँगन में लीपकर रखे जाते हैं, नवमी तथा दशमी को इन्हीं उपलों में क्रम से एक-एक उपला और बढ़ा दिया जाता है । इन उपलों पर प्रत्येक दिन एक-एक काशीफल-तोरई या फिर अन्धकोई पीले रंग का फूल जगा देते हैं । दसवीं को इसी स्थान पर हवन किया जाता है । औजारों को साफ करके रखा जाता है तथा फलम-दवात आदि की भी पूजा की जाती है । कहीं-कहीं उपलों को नवमी को बनाने हैं तथा उनके आसपास चीक भी पूरते हैं ।

दशहरे के अवसर पर दशमी के दिन छोड़े-छोड़ी भी घर के बाहरी भित्ति पर कहीं-कहीं चित्रित किये जाते हैं । मेरठ में दशहरे के दिन रावण का चित्र सूखे आटे से भूमि पर चित्रित किया जाता है और पूजा की जाती है* (चित्र : ३० क) । शिकोहाबाद में मिट्टी का रावण बनाया जाता है । इस प्रकार इन क्षेत्रों में दशहरे पर सुबह घर में पूजा होती है तथा शाम को रावण, मेघनाद व कुम्भकर्ण के पुतले जलाये जाते हैं, मेला लगता है तथा पिछले पन्द्रह-बीस दिन से चली आ रही राम-लीला और नवरात्रि के उत्सव की समाप्ति हो जाती है । कहीं-कहीं दशहरे के दिन बहन भाई के टीका भी करती है । बुंदेलखण्ड में दशहरे के दिन लोग एक-दूसरे के घर मिलने जाते हैं तथा पान खिलाये की भी प्रथा है ।

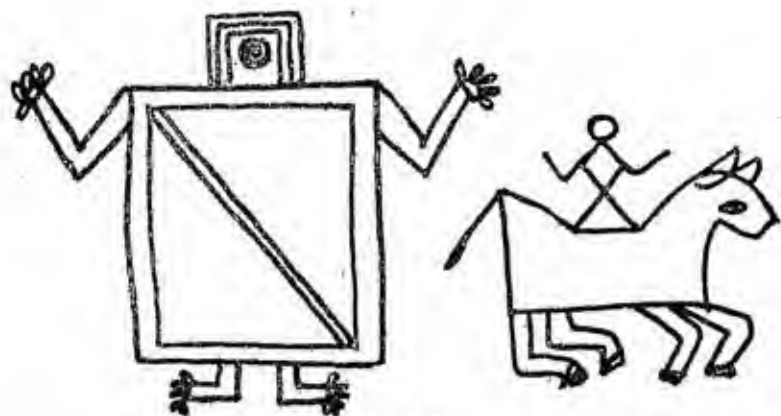
उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्रों में रामलीला का बहुत जोर रहता है । जगह-जगह लोग रामलीला देखने में व्यस्त रहते हैं । दुर्गा की तो पूजा है ही सब जगह, परन्तु बनारस में काली-उत्सव भी खूब जोरों से मनाया जाता है । यह बंगालियों की उतनी

ही अपनी भूमि है जितनी कि भोजपुरी लोगों की। यहाँ पर दुर्गा की पूजा उसी तरह सामूहिक रूप में होती है जैसे कि बंगाल में होती है। पूर्वी क्षेत्रों में घर-घर राम व रामायण की पूजा की जाती है। गोबर के दस उपलों पर वहाँ दस फूल, काशीफल या तोरई के लगा दिये जाते हैं। घोड़े के चित्र के रूप में भित्ति अलंकरण तथा भूमि अलंकरण में विभिन्न प्रकार के आटे के चौक भी बनाती हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के रहने वाले कन्नौजिया ब्राह्मणों के यहाँ के भित्तिचित्र नवरात्रि के दिनों में देखते ही बनते हैं (चित्र : ३० ख)। प्रतिपदा को ही भित्ति को गोबर से लीपकर एक जौ की बाल के सदृश चित्रण ऐपन से किया जाता है। प्रतिदिन इसी चित्रण में एक नवीन बाली और चित्रित कर दी जाती है। सप्तमी को पूरी नौ कर देते हैं। रोज ही घर की बड़ी (बूढ़ा) स्त्री इनकी पूजा धूप, दीप, नैवेद्य और मिष्ठान सामग्री के साथ करती है। भूमि पर प्रतिदिन एक ही प्रकार का चित्र गोबर से लीपकर चावल के पीठे आ आटे से बनाया जाता है। पंचमी के दिन एक साल पुरानी भद्र-काली का चित्र, जोकि सफेद कपड़े पर पीली रंग (हल्दी) से बनाया जाता है, उसके मुँह को गुड़ व घी से जुठलाकर सफेद फूलों की माला पहना देते हैं। ऐसा वे सात बार करती हैं और हर बार अपने आँचल में रख लेती हैं, साथ में 'स्थान से आँचल में आ जाओ' भी कहती रहती हैं। इसके बाद माला को चित्र के ऊपर टेंगी ऊदी (हल्का बैंगनी रंग) धोती से बाँध देती हैं। गंगाजी के पानी से देवीजी का मुँह धोते हैं, तत्पश्चात् इस चित्र को उठाकर रख देते हैं। सप्तमी की शाम को उड़द की दाल व मिट्टी के द्वारा साटे (साटे हुए कपड़े = जिन कपड़ों को पिसी दाल, आटा, मैदा या बेसन आदि के घोल से एक ओर से लीप दिया जाता है, जिससे कपड़ा कड़ा हो जाता है) पर ऐपन से देवी जी का नवीन चित्र बना दिया जाता है तथा दीवार पर टाँग दिया जाता है।

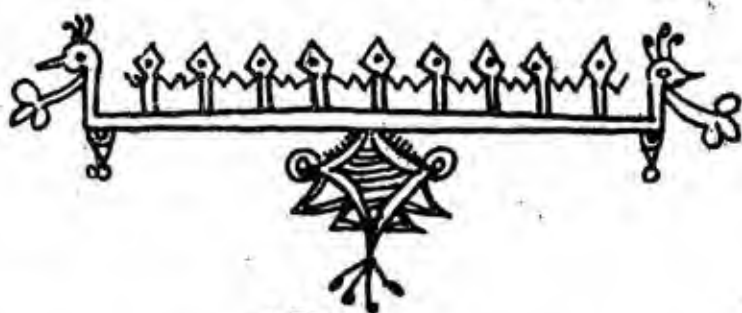
ये लोग जौ भी बोते हैं, जिसको सुजिया कहते हैं। नवमी को गोबर से शिव-पार्वती का चित्रण करते हैं जिनको 'धाम गौरिया' कहते हैं। उसी के चारों ओर गोबर की दस उपलियाँ रखते हैं, ऐपन से चौक बनाकर धाम गौरिया को उसमें स्थापित करते हैं। चौक के चारों ओर शंख की आकृतियाँ बनाई जाती हैं।

बुदेलखण्ड में नवरात्रि के दिनों में सर्वथा एक नवीन रूप देखने को आया। यहाँ रामलीला भी होती है और रावण भी जलता है परन्तु उस पर उन लोगों में उल्लास देखने को नहीं मिलता जितना कि एक अन्य उत्सव 'ज्वारों के मेले' में मिलता है। नवरात्रि के दिनों में कमल, त्रिकोण, षटकोण, बिन्दु और रेखाओं आदि से बनाये जाने वाले भूमि-अलंकरण देवी के आह्वान हेतु होते हैं, जोकि बहुत ही कलात्मक होते हैं।

नवरात्रि के कुछ प्रमुख उत्सव व खेल : नवार शुक्ल प्रतिपदा से न्यौरता (यह नवरात्रि का अपभ्रंश है) आरम्भ होता है। इस समय पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ब्रज प्रदेश, रहेली व पूर्वी उत्तर प्रदेश के अवधी क्षेत्रों की कन्याएँ घर की किसी दीवार



(क)



(ख)

चित्र ३० : दशहरा चित्रण। चित्र के क-भाग में मेरठ जिले में रावण का भूमि चित्रण दर्शाया गया है। दाहिनी तरफ का घुड़सवार घर की बाहरी भित्ति पर बनता है। ख-भाग में कन्नौजिया ब्राह्मणों द्वारा चित्रित दशहरा है। बायीं तरफ जो की बाली तथा दायीं तरफ धाम घोरिया व नीचे का चित्रण एक लोकप्रिय भूमि अलंकरण है।

के सहारे एक मिट्टी का घर बनाती हैं जिसके बाहर दोनों ओर हाथ बनाकर लगा दिये जाते हैं। इस घर में ऊपर जाने के लिए छोटी-छोटी सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं। घर के सिरे पर बीचोंबीच एक सिर लगा दिया जाता है। बीच दीवार पर छत के ऊपर गौरी की पूर्ण स्त्री मूर्ति मिट्टी की बनाई जाती है। कभी-कभी देवी के एक हाथ में फूल की छड़ी व दूसरे हाथ में पंखा बनाया जाता है। कभी-कभी देवी के दो पैर भी बनाये जाते हैं। गौरी की मूर्ति के साथ दीवार पर सूर्य-चन्द्र, पक्षी, फूल आदि का भी अलंकरण बना रहता है। फिर प्रातःकाल लड़कियाँ अथवा नव-विवाहिता बधुएँ एक लोटा जल भर के न्यौरते के आसपास बैठती हैं और शुद्ध पीली मिट्टी से बिना हाथ-पैर की गौरी बनाकर सीढ़ियों पर गीत गाती हुई बिठा देती हैं। गीत का आरम्भ इस प्रकार है :

गौरा रे गौरा खोलो किवरिया।

जब गौरी चढ़ जाती है तब लोटे में उसकी साँई (परछाई) देखी जाती है। एक गीत इस प्रकार है :

अपनी गौर की साँई देखूँ, काका पहने देखूँ

नाक में नय पहने देखूँ, कान में बुन्दा पहने देखूँ।

इस तरह गीत की कड़ियों के साथ समस्त शृंगार की वस्तुओं, गहनों व कपड़ों की व्याख्या होती जाती है। दूसरे दिन पुरानी गौरी घर के भीतर रख दी जाती है तथा नई बनाकर चढ़ाई जाती है। इसी तरह नौ दिन तक गीतों का कार्यक्रम तथा गौरा की चढ़ाई चलती रहती है। नवमी के दिन न्यौरते पर बासी गौरी हठी चढ़ाई जाती है। इस दिन सभी वस्तुओं को, जोकि न्यौरते में दीवार आदि पर बनाये जाते हैं, बहुरंगी रंगों से सजाया जाता है। धाघरा-चोली व चुन्नी विभिन्न रंगों अथवा रंगीन कागज अथवा कपड़ों से बनाया जाता है। प्रातःकाल गाये जाने वाले गीतों से शृंगारप्रियता व स्त्री-स्वभाव के सम्बन्ध में मालूम पड़ता है जबकि सांध्य गीतों से भवानी अथवा दुर्गा अथवा गौरा के प्रति अत्यन्त श्रद्धा भरे मन से पूर्ण समर्पण भाव। दशहरे के दिन न्यौरते की गौरी विसर्जित की जाती है। यह लोककला की एक अत्यन्त सुन्दर कलाकृति है (चित्र : ३१)। कहीं-कहीं नवमी के दिन गौरा व शिव का विवाह रचाकर दशहरे को विसर्जित किया जाता है। न्यौरते का यह उत्सव रहेली, अवधी क्षेत्रों की विशेषता है। आगरे के आसपास भी यह मनाया जाता है।

चंदा तरैया या सिमरा सिमरी : न्यौरते के समान एक अन्य त्यौहार अवधी और कन्नौजी क्षेत्रों में सिमरा सिमरी या चंदा तरैया के नाम से नवरात्रि के दिनों में मनाया जाता है। यह त्यौहार अविवाहित कन्याओं तथा विवाहित लड़कियों (जो उस समय अपने मैके (पीहर) में होती हैं) के द्वारा खूब धूमधाम से मनाया जाता है।

नवार की अमावस्या के दिन घर के बाहर की दीवार पर मिट्टी से एक मालिन

की आकृति बनाई जाती है। साथ में फूलों की डलिया होती है। नीचे भूमि पर एक आदमी व एक स्त्री मिट्टी के बनाये जाते हैं, जिनको ही सिमरा-सिमरी कहते हैं। प्रतिपदा से क्वारी लड़कियाँ सुबह नहा-धोकर सात डुगिया मिट्टी की बनाकर उसमें जल व फूल भरकर मालिन के सामने रख देती हैं तथा विवाहिता, जो मँके में होती हैं, नौ डुगिया बनाकर सिमरा व सिमरी पर प्रतिदिन चढ़ाती हैं। लोकगीत भी गाती जाती हैं। नवरात्रि के अंतिम दिन प्रत्येक विवाहित स्त्री एक लड़के की (सिमरा) तथा अविवाहित एक लड़की (सिमरी) की आकृति मिट्टी या कपड़े से बनाती हैं। उसे खूब सजाती हैं। लड़के वाली लड़की चार बाँसों से चंडोल बनाकर उसे कागज से सजाती हैं, लड़की वाले दान-दहेज तैयार करते हैं, पकवान बनाते हैं। दान-दहेज के रूप में इन किशोरियों की कला देखते ही बनती है। पण्डित जी बुलाये जाते हैं, वन्नी-वन्ने (गीत) गाये जाते हैं और चंडोल के नीचे सिमरा-सिमरी का ब्याह रचाया जाता है। इसमें सबसे अधिक रोचक बात यह है कि यदि उस मुहल्ले में सिमरा दो या एक है तथा सिमरी आठ या दस तक, तब एक-एक सिमरा के साथ चार-चार या पाँच-पाँच सिमरी का ब्याह रचा दिया जाता है। हिन्दू धर्म के अनुसार लड़की मंडप में आकर बिनब्याह नहीं जा सकती। इसलिए ऐसा विवाह कराया जाता है तथा साथ ही साथ यह प्रथा बहु-पत्नी प्रथा की एक कलात्मक झाँकी भी प्रस्तुत करती है। दशमी तथा आने वाली पूर्णिमा को सिमरा-सिमरी, डुगिया व मालिन आदि को बटोर कर विसर्जित कर दिया जाता है।

गावों में इसकी धूमधाम देखते ही बनती है। इस समय कन्याओं की कलात्मक प्रवृत्ति उनके द्वारा बनाये गए गुड्डे- गुड़ियों, मालिन की मिट्टी की प्रतिमा व सिमरा-सिमरी के रूप में देखने को मिलती हैं। यह त्यौहार कानपुर-फर्रुखाबाद आदि जिलों में अधिक मनाया जाता है।

बुंदेलखण्ड में नवरात्रि के दिनों में जहाँ बुजुर्ग स्त्री-पुरुष 'ज्वारों के मेले' में मगन होते हैं, वहीं दूसरी ओर बच्चे 'नारे सुउटा' तथा 'दिरिया' नाम के त्यौहारों को मनाने में लगे होते हैं।

नारे सुउटा : चित्र घर से बाहर की दीवार पर बनाया जाता है (चित्र: ३२)। कहा जाता है कि 'सुउटा' कोई दानव था, जो कुंवारी लड़कियों का अपहरण करता था और उन्हें भार डालता था। उसके अत्याचारों से दुखी होकर किशोरियाँ माता दुर्गा की शरण में गईं तथा नौ दिन तक व्रत रखकर पार्वती जी को प्रसन्न किया। तब पार्वतीजी ने अपनी शक्ति के 'सुउटा' नामक दानव का संहार किया जिसके कारण इस त्यौहार का नाम 'नारे सुउटा' पड़ा। किशोरियाँ 'नारे सुउटा' का दानव की शक्ल में चित्रण घर के बाहरी दालान में करती हैं, पीछे हिमालय का रूप भी दिया जाता है, उसमें सीढ़ियाँ भी लगाई जाती हैं। 'सुउटा' खेलने वाली लड़कियाँ अपनी-अपनी नौ गौर इसके सामने रखती हैं। पंचमी से गौर (पार्वती) की स्थापना 'सुउटा' के चित्र के सम्मुख भूमि पर करती हैं और रंग-बिरंगा चीक

पूरती हैं। अल्पना या रंगोली के रूप में इन किशोरियों की कला देखते ही बनती है (चित्र : ३३)। पंचमी से नवमी तक दूर्वा, अक्षत, पुष्प, दूध, फूल आदि चढ़ाती हैं, सब लड़कियाँ मिलकर गाती हैं। लड़कियाँ ब्राह्म मुहूर्त में उठकर नये-नये ताजे फूलों से डलिया सजाकर नदी पर जाती हैं। सूर्योदय से पहले ही स्नान आदि के बाद दूध में फूल गुवाकर कांय डालती हैं (अर्घ्य देने को कांय डालना कहते हैं)। कांय डालने के बाद सामूहिक रूप से गाती हैं :

हिमालय की कुँवरि लड़ायती, नारे सुअटा, गौरा बाई तेरा नाम।

इस सम्पूर्ण गीत में हिमालय की पुत्री पार्वती के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त की गई है। इसके बाद आरती उतारते समय गाती हैं :

झिलमिल हो, झिलमिल हो तेरी आरती, महादेव तेरी आरती।

को बोओ नौनी, चंदा बोओ नौनी, सूरज बोओ नौनी।

नीने सलाने-भीजी कंत तुमाये, बिरन हमाये। झिलमिल री तेरी आरती।...

कांये डालते समय के अन्य गीतों की कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जा रही हैं :

(१) उठो चन्दा मल भइया, भोर भयी नारे सुअटा, मालिन खड़ी तेरे द्वार।

कौन नगर की मालिन, नारे सुअटा, कौन नगर के फूल।

वृन्दावन की मालिनी नारे सुअटा बेला चमेली के फूल।

(२) ति नारे सुअटा गौराबाई मेरा नाम नांय।

हिमाचल के कुँवरे लड़ायती नारे सुअटा।

गीता बाई मेरा नाम-नारायण जूँ की कुँवरे लड़ायती नारे सुअटा।

प्रथम गीत में सभी भाइयों का नाम तथा दूसरे में सभी लड़कियों के नाम, पिता के नाम के साथ लिये जाते हैं। गौर की कांय देते समय का एक गीत सांझी व न्यौरते के समान ही है :

हमारी गौर की झाँई देखो, क्या-क्या पहने देखो।

माथे बिन्दी कानन बुंदा देखो, आदि, पर पराई गौर की झाँई देखो,

का पहने देखो।

नाक नकटी देखो, कान बुंछा देखो।

जिस समय झाँसी की बालिकाओं से यह गाना सुना था, बहुत मुश्किल से मैं अपनी हँसी रोक पाई थी। नारी मन की ईर्ष्या का यह गीत जीता-जागता उदाहरण है।

नवरात्रि में इस त्यौहार को मनाने के बाद नौवें दिन संध्या को खूब बड़ा व सुंदर-सा चौक पूरने के बाद भीगे हुए चनों को तलकर 'सुअटा' की गौरी रानी (गौरी की मूर्ति) को भोग लगाया जाता है, भोग लगाते समय भी वह कहती हैं—

'कि अपनी गौरा रानी को पेट पिरोनो भसकूँ।' नौमी के दिन खेल के सभी स्थानों में नदी तक अत्यन्त सुंदर चौक पूरे जाते हैं जोकि कुमारियों की लगन व कला के सुंदर उदाहरण हैं।

नवरात्रि के नौ दिन तक रात्रि को भी किशोरियों का किसी न किसी प्रकार

का कार्यक्रम चलता है।

सन्ध्या के समय सभी किशोरियाँ न्यौरता स्थल पर एकत्रित हो जाती हैं और एक खेल खेलती हैं। मैदान में एक मटका उल्टा करके रख देती हैं, फिर उस पर बाँस की एक टोकरी रख दी जाती है और बारी-बारी से प्रत्येक लड़की कुछ दूरी से दौड़ती हुई उस मटके को लाँघने का प्रयास करती है। असफल होने पर उसे एक मुट्ठी अनाज नौरता फण्ड के लिए देना पड़ता है। उसे प्रत्येक दिन नौ बार लाँघना पड़ता है तथा वह जितनी भी बार असफल हुई उतनी ही मुट्ठी अनाज उसे देना पड़ता है।

नवमी को इस खेल की समाप्ति के साथ बालिकाओं का एक दूसरा त्यौहार शुरू हो जाता है। नवमी की रात्रि को 'झझरी' (मिट्टी की हाँडी जिसमें छेद होते हैं), जिसको यहाँ ढिरिया कहते हैं, समस्त घरों में ले जायी जाती है। छिद्र वाले इस घड़े में आधे दूर तक रेत या मिट्टी भर देते हैं। उसके पश्चात् एक लड़की इस झझरी को सिर पर रखकर आगे-आगे चलती है तथा बाकी सब गाती हुई पीछे-पीछे। इस समय के गाये जाने वाले गीतों को बुंदेली लोक साहित्य में अत्यन्त भावपूर्ण गीत कहा गया है :

(अ) पूछत पूछत आय है, नारे सुअटा कौन बिरन ?

तेरी पीर पौरन बैठे भैया पोरिया-नारे सुअटा।

चैकिन बैठे कुतवाल, बड़ी अटारी, बड़े ढवा नारे सुअटा।

बड़े सुमाये नांव-गजमोतिन के झुमका नारे सुअटा,

नारे सुअटा, लटके तेरे द्वार।

(ब) तुम जिन मानों भैया मंगन मंगन पूजत पूजत आये हैं।

नारे सुअटा, कौन बड़ी तेरी पीर ॥

इतनी आकत डारियों नारे सुअटा,

आवे पंसेरी दो चार।

लड़कियाँ अपनी पहली भिक्षा भाई-भाबज से ही माँगती हैं। भाभी भी उन्मुक्त हार्थों से कोपर (सूप) में भरकर अक्षत (चावल) प्रदान करती हैं, जिस पर किशोरियाँ संतुष्ट होकर भाभी को आशीर्वाद देती हैं। वे यह कहती हैं कि जितने अक्षत तुमने दिये हैं, उतने ही ऐश्वर्यशाली तुम्हारे पुत्र हों और पुत्र बंधुओं से तुम्हारी यह चित्राकित अटारी भर जाये। झाँझी, जो कि ढिरिया के रूप में बुंदेल-खण्ड क्षेत्र में लोकप्रिय है, पूर्णमासी तक धूमधाम से मनाई जाती है।

दसवीं की रात्रि को सभी लड़कियाँ एक साथ मिलकर खाना खाती हैं, जिसका व्यय 'ढिरिया' में आये पैसों से होता है। इस सामूहिक खानपान को 'हप्पू' कहते हैं। हास-परिहास भी चलता है। वे अपनी गौर के लड़का तथा पराई गौर की लड़की हुई बताती हैं और गाती हैं :

अपनी गौर को पेट पिरानो सारे लड्डुआ हप्प ।

अपनी गौर के लड्डुका भव सारे लड्डुआ हप्प ।

पराई गौर को पेट पिरानो सारे लड्डुआ हप्प ।

पराई गौर के बिटिया भई सारे लड्डुआ हप्प ॥

हप्पू के सामूहिक खानपान के साथ ही नारे सुउटा की रंगारंग व मनभावन कथा, वात्सल्य, शृंगार, बिछोह से भरपूर गीतों का यह त्यौहार समाप्त होता है । पर डिरिया का त्यौहार पूर्णमासी तक चलता रहता है ।

विशेष : नवरात्रि के दिनों तथा श्राद्धपक्ष में मनाये जाने वाले सभी त्यौहार बालिकाओं व बालकों के त्यौहार हैं, जिनसे सम्बन्धित गीत, भूमि और भित्ति अलंकरण भी हैं । साँझी व संजिया बेची कुछ-कुछ मिलती हुई भी अपने उद्देश्य में अलग-अलग हैं । मामुलिया अवश्य अपने भाव-पक्ष में साँझी से मिलती है, पर कला-पक्ष में बिल्कुल नहीं । नौराते, न्यौरता, सिमरा-सिमरी, नारे सुउटा नवरात्रि के दिनों में मनाये व चित्रित किये जाते हैं तथा किसी खेल की समाप्ति शिव व गौरा के विवाह से, तो किसी की शिव व गौरा के प्रतीकात्मक रूप गुड्डा व गुड़ियों के विवाह के रूप में, तो किसी की गौरी की आराधना के रूप में होती है । सभी खेलों पर गाये जाने वाले गीत बालिकाओं का अलहड़पन, किशोरावस्था की उम्रों व कामनाएँ, अच्छे घर-वर की चाह, पिता के घर को सुखी-समृद्ध व धनधान्य से पूर्ण होने की कामना, भाई के आयुष्मान होने की ईश्वर से प्रार्थना, बालिकाओं का शृंगार की वस्तुओं के प्रति स्वाभाविक झुकाव, स्त्री मन की कमजोरी और विवाह के बाद गृहस्थ के भार से मुक्ति व दमित जीवन, सास-ननद के ताने तथा पिता, माता, भाई-बहन के दुलार की समवेत स्वरों के साथ हमारे मनःस्थल को स्पर्श करते हैं । ये खेल हमारी संस्कृति की धरोहर हैं । इनका भाव-पक्ष जितना प्रबल है, उतना ही कला-पक्ष मुखर व लुभावना ।

शरद पूर्णिमा : लोग शरद पूर्णों भी कहते हैं । यह आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को मनायी जाती है तथा अपनी धवल चंद्रिका के लिए न केवल भारत वरन् विदेशों में भी प्रसिद्ध है । न जाने कितने यात्री ताजमहल, अमृतसर का स्वर्णमन्दिर, खजुराहों के मंदिरों की छटा देखने भारत आते हैं । शरद पूर्णों के दिन ही साँझी, संजिया, टेसू, झाँझी, सिमरा-सिमरी व नारे सुउटा आदि का सामान नदियों में विसर्जित किया जाता है ।

वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद आकाश स्वच्छ हो जाता है । यह समय है जब आकाश में आकाशगंगा का उदय होता है । स्वच्छ आकाश में असंख्य तारों की जगमगाहट से भरपूर एक चौड़ी-सी पट्टी आप रात्रि में देख सकते हैं । ऐसा हमारे धर्मग्रंथों का विचार है कि इस दिन देवता भी प्रसन्न होकर पृथ्वीवासियों पर अमृत-वर्षा करते हैं । इस दिन सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में धी, काली मिर्च व बूरा मिलाकर अथवा खीर बनाकर अथवा दूध में चिवड़ा (चौले) भिगोकर अग्नि में

रख देते हैं तथा सुबह उठकर खाते हैं। प्राचीन काल में इसी दिन कौमुदी उत्सव मनाया जाता था। श्रीकृष्ण ने इसी दिन महारास रचाया। ब्रज में इस दिन रास-लीला के कीर्तन गाये जाते हैं। वैद्य लोग रात भर शरद पूनों की चाँदनी में रखी खीर की दवाई भी बनाते हैं जो बेहोशी व मिरगी तथा दमा के रोगियों को दी जाती है।

कार्तिक मास

करवा चौथ : उत्तर प्रदेश के पूर्वी व उत्तराखण्ड के क्षेत्रों को छोड़ सभी जगह करवा चौथ का त्यौहार विवाहित स्त्रियों द्वारा मनाया जाता है। कहीं-कहीं यह त्यौहार कुआरी लड़कियों का भी है। बुंदेलखण्ड, बनारस तथा अन्य भोजपुरी क्षेत्रों में इस त्यौहार का प्रभाव कम है।

करवा चौथ कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की चौथ को मनाया जाता है। इस समय स्त्रियाँ करवा चौथ की कथा से सम्बन्धित चित्र भित्ति पर बनाती हैं। कहीं यह चित्र दीवार को गोबर से लीपकर मूली-पालक आदि की पत्तियों से हरा करके चावल के पीठे, एपन (चावल व हल्दी पिसी हुई) या फिर सफेद भित्ति पर रंगों से बनाती हैं। करवा चौथ के भित्ति-चित्रण में बहुत ही विभिन्नता है। ब्रज व खड़ी बोली के क्षेत्रों में चित्र प्रायः चावल के पीठे व एपन से बनाये जाते हैं जबकि बुंदेलखण्ड में विभिन्न रंगों से। कन्तीजी व अवधी क्षेत्रों में दोनों ही प्रकार के इन चित्रों में करवा, नसैनी पर चढ़कर अर्घ्य देती एक स्त्री, पेड़ की ओट से दीपक को छलनी द्वारा चन्द्रमा के रूप में दिखाता हुआ भाई, देवरानी, जिठानी, धोबिन, मालिन, कुम्हारी, जमादारिन, श्रवण कुमार, शिवलिंग, यमुना, तुलसी, दूध देने वाली गाय, हाथी, घोड़ा, तोता, मोर, विभिन्न प्रकार की सुहाग की वस्तुएँ, कमल, फूल, फल तथा स्वास्तिक आदि को चित्रित किया जाता है (चित्र : ३४)।

इलाहाबाद के एक खरे परिवार में मुझे एक रोचक चित्र देखने को मिला। प्रारम्भ में स्त्रियाँ मरे हुए आदमी का चित्र इसमें बनाती हैं तथा कथा सुनने के बाद मरे हुए पुरुष के स्थान को गोबर से लीपकर चावल के पीठे से जिव्दे मनुष्य की आकृति में बदल देती हैं (चित्र : ३५)। अधिकतर स्त्रियाँ सुबह अंधेरे ही ४ से ५ बजे के बीच में कुछ मीठा दही या दूध में भीगे हुए चिवड़े अथवा खीर, सूखी मेवा अथवा फल खा लेती हैं। फिर दिन भर निर्जल व्रत रखती हैं। शाम को श्रृंगार आदि करके थाली में बादाम, अखरोट, किशमिश, ताजे फल तथा साड़ी-गहना, जो भी सास, ननद अथवा जिठानी को देना चाहें, रखकर किसी एक घर में सामूहिक रूप में बैठकर आपस में बदलती हैं। यह प्रथा पंजाब के खत्री व उत्तर प्रदेश के खत्री व माथुर परिवारों में अधिक है। कहीं-कहीं जहाँ घर की दो उपासिनी स्त्रियाँ होती हैं तो दोनों आपस में पानी या चिवड़े बताशे से भरा करुआ 'ले सुहागन करुआ, दे सुहागन करुआ'—कहकर आपस में बदलती हैं और कहीं

पर कसए को मिनस कर (दान करके) कुछ रुपयों सहित सास या मान्य को दे देती हैं (चित्र : ३६)। शाम को चन्द्रमा को देखकर अर्घ्य देने का प्रचलन है। तभी वह खाना खाती हैं। अवधी व रहेली क्षेत्रों के कुछ घरों में शाम को चन्द्रमा को अर्घ्य देने से पहले चावल के पीठे से छत पर या आंगन में चन्द्रमा बनाया जाता है। चन्द्रमा निकलने पर दूर्वा, पाँच मिट्टी की डलियाँ, फूल, चावल, अक्षत लेकर (साथ में जलता हुआ दीपक भी होता है) चावल के पीठे से बनाये चन्द्रमा की पूजा की जाती है और चन्द्रमा निकलने पर अर्घ्य देकर व्रत तोड़ती हैं। बनाये गये चन्द्रमा की पाँच या सात परिक्रमा करके पूजा समापन करती हैं।

करवा चौथ के दिन स्त्रियों का शृंगार देखते ही बनता है। ६० वर्ष की सुहागिन प्रौढ़ा भी नयी उमंग से भर उठती है। इस समय कही जाने वाली एक कथा यहाँ प्रस्तुत कर रही हैं।

सात भाइयों की एक बहन थी। उसने करवा चौथ का व्रत किया। भाई बहन के लिए मिठाई लाये तो बहन ने बताया कि आज मेरा व्रत है, शाम को चन्द्रमा देखकर ही कुछ खाऊँगी। भाइयों ने सोचा ऐसा उपाय किया जाये जिससे भ्रम में पड़कर बहन यह समझे कि चन्द्रमा उदय हो गया है। इस तरह का विचार करके कुछ भाइयों ने पहाड़ी पर जाकर आग जलाई और उसके सामने छलनी कर दी जिससे चन्द्र उदय का भ्रम हो गया। इधर अन्य भाइयों ने बहन को उदित चन्द्रमा दिखाया। बहन ने भावज से कहा, चलो पूजन करें। भावज ने जवाब दिया, आप कर लें, मेरा चाँद अभी नहीं निकला। बहन पूजा कर ज्यों ही भोजन करने बैठी कि प्रथम ग्रास में बाल निकल आया, द्वितीय ग्रास लेते ही छींक आई और तीसरे में नाई ने आकर बताया कि उसके पति की मृत्यु हो गई है, इसलिए जैसी बैठी है, वैसी ही भेज दो। चलते समय भावज बोली, पति को यों ही लिए बैठी रहना। ये चौथ परमेश्वरी का प्रकोप है। बहिन वहाँ पहुँची और पति के शव को ऐसे ही लिए बैठी रही। मंगसिर की चौथ आई। उसके पैर पकड़ लिए और कहा कि मेरा सुहाग फिर से दो। उसने कहा, पूस की चौथ देगी। इसी तरह महीने के महीने चौथ आती गई और एक-दूसरे की दिलासा देती गई। अन्त में कार्तिक की करवा चौथ आई। उसके पैर कसकर पकड़ लिए। उसने कहा कि अब पैर पकड़ने से क्या होता है? तब तो भाइयों के कहने पर व्रत खंडित कर दिया था। उसने कहा कि माफ कर दीजिए, फिर कभी न होगा। उसने चौथ माता के पैर नहीं छोड़े। चौथ माता आशीष देने लगीं : 'शील सपूती हो, बूढ़ सुहागन हो, सात पूत की माँ हो।' इतना सुनते ही वह बहन बोली, मेरा पति तो मृत है। तब चौथ परमेश्वरी (माता) ने अपने प्रताप से उसे जीवित कर दिया और स्वयं चली गई। इस तरह बहन ने अपना लुटा हुआ सुहाग पा लिया और सुख से रहने लगी।

करवा चौथ की अन्य कहानियाँ भी आरम्भ तो एक ही प्रकार से होती हैं और अन्त भी लगभग एक-सा है परन्तु कहीं सुहाग देने का अधिकार अमर सुहागवती

सोना धोबिन को है तो कहीं चौथ माता को, तो कहीं बहन की सेवाभक्ति को । अमर सुहाग के पाने की लालसा में यह त्यौहार सभी वर्णों की स्त्रियाँ एक ही प्रकार से उल्लासपूर्वक मनाती हैं । नवविवाहिता बधू को ससुराल में मायके से कपड़े, गहने, पकवान, बर्तन आदि भेजे जाते हैं । सास भी इस समय बहू को कुछ उपहार देती है ।

अहोई अष्टमी : कार्तिक मास कृष्ण पक्ष की अष्टमी को अहोई अष्टमी मनायी जाती है । यह व्रत पुत्रवती स्त्रियाँ ही करती हैं । अहोई अष्टमी की कथा इस प्रकार है । सात दौरानी जिठानी थीं । छह के तो बच्चे थे, सातवीं के कोई बच्चा नहीं था । एक दिन सभी मिल-जुलकर मिट्टी खोदने गईं । वहाँ सातवीं ने अहोई माता को बैठा देखा । अहोई माता ने सातवीं बहू की उदासी का कारण पूछा । उसने बताया कि सबके बच्चे हैं, मेरे कोई बच्चा नहीं है । बात सुनने पर अहोई माता ने कहा, आज अहोई अष्टमी है, अहोई माता का चित्र बनाकर पूजन करना, तुम्हारे भी पुत्र होगा । वह घर आई और चित्र बनाकर व्रत-पूजन किया और नौ मास बाद सचमुच लड़का उत्पन्न हुआ । कुछ दिनों बाद अहोई माता आई और पूछने लगी, अब तो खुश हो । बहू ने लड़के के चुटकी भर दी, बच्चा रोने लगा । अहोई ने पूछा कि क्यों रोता है ? बहू ने कहा, खेलने के लिए दूसरा भाई चाहता है । इस पर अहोई माता ने कहा, होगा । इस तरह बहू ने धीरे-धीरे करके अहोई माता की कृपा से सात पुत्र प्राप्त कर लिए और सुख से रहने लगी । इसी से मिलती-जुलती कुछ अन्य कहानियाँ भी हैं, जिनका सार अहोई देवी अथवा स्याऊ माता की कृपा से पुत्र की प्राप्ति है ।

कन्नौजिया ब्राह्मणों के यहाँ की कहानी इस प्रकार है । एक गरीब ब्राह्मणी थी जिसके कोई संतान नहीं थी । सास-ननद, देवरानी-जिठानी सभी उसे ताना देती थीं । एक दिन उसकी भेंट बीबी फातिमा से हो गई । उसने अपने दुःख का कारण बीबी फातिमा को बताया । उसने कहा कि आज अबही आठें हैं, चंद्रमा निकलने पर हम पूजा करेंगी । तुम मेरे घर के पिछवाड़े आ जाना तो हम पूजा का फरा फेंक देंगे, तुम खा लेना । तुम्हारे अवश्य लड़का होगा । जब चन्द्रमा की चांदनी फैल गई तो बहू अपनी सास से बोली, मेरे पेट में दर्द हो रहा है, हम पायदाने को जायेंगे । इस तरह वह पिछवाड़े पहुँच गई और जैसे ही बीबी फातिमा ने फरा फेंका उसने ले लिया और मुँह में रख लिया । इतने में सास ने आवाज दी, बेचारी ने जल्दी में उसे पूरा ही निगल लिया । जब उसके लड़का हुआ तो लड़के के मुँह में पूरा फरा देखकर सास ने पूछा । बहू ने सारी बात सच्ची-सच्ची बता दी । फिर बीबी फातिमा के यहाँ से देवता लाये गये, उनकी पूजा की गई । बहू ने विधिवत् पूजन किया, भोग खिलाया परन्तु पानी पिलाना भूल गई । देवता प्यास के मारे हुआ-हुआ करके गिर पड़े (मूर्च्छा खाकर गिर गये) । सबरे ढूँढ़ने पर न मिले । इतने में कहीं से उसे आवाज सुनाई पड़ी कि हर साल अष्टमी को मुझे चित्रित

करके विधिवत् पूजन करना, तुम पूर्ण सुखी होगी।

कन्नौजिया ब्राह्मणों के यहाँ की कथा पर मुस्लिम धर्म का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसलिए अहोई अष्टमी के चित्रण में अन्य लोगों के चित्रण से अन्तर दिखलाई पड़ता है। इन लोगों के यहाँ अष्टमी में जहाँ एक ओर सूर्य चन्द्र तारे, विभिन्न देवता, आरती का सामान चित्रित मिलता है, वहाँ दूसरी ओर पति दाढ़ी वाले तथा पति व पत्नी, शराब का प्याला हाथ में व हुक्का पीते चित्रित किये जाते हैं। रंग योजना इतनी अधिक सुंदर है कि आप देखते ही रह जायें (चित्र : ३७ रंगीन)

खड़ी बोली व ब्रज के क्षेत्रों में स्याऊ माता की कहानी अधिक सुनी जाती है जिसके लिए प्रसिद्ध है कि पहले यह बच्चों को खाने वाली देवी थी जो कि बाद में उनकी रक्षक बन गई। स्त्रियाँ इस दिन सफेद दीवार पर गेरू से या बहुरंगी अहोई अष्टमी का चित्रण लगभग तीन-चार दिन पहले से करती हैं। इसमें अहोई माता की आकृति एक स्त्री के रूप में होती है, जिसके वर्गाकार या आयताकार पेट में स्याऊ, स्याई, उसके बच्चे, सात औरतें, सात आदमी, कहीं-कहीं सात बच्चे, सूर्य, चंद्र, स्वास्तिक, मोर, तोता आदि बनाये जाते हैं। कहीं-कहीं ऊपर ओढ़नी व नीचे पीड़ा भी बनाया जाता है। इसके अलावा चौपड़, चौक, सूर्यचन्द्र, तारे; अर्घ्य देती हुई स्त्री-मूर्ति, सात या आठ औरतें, सात या आठ पुरुष, आठ बच्चों का चित्रण करते हैं (चित्र : ३८)। सायंकाल तारे निकलने पर पूजा करने के बाद व्रत खोला जाता है। अहोई माता का चाँदी का चित्र भी बनवाया जाता है और इसे लाल या काले धागे में पिरोया जाता है। इस धागे में पहली अहोई को चाँदी के दो दाने डाले जाते हैं। इसके बाद प्रत्येक वर्ष दो दाने बढ़ाते जाते हैं। अहोई एक व दो सिर वाली बनाई जाती है। बहू के प्रथम बच्चा होते ही यदि सास साथ रहती है तो दो मुँहवाली अहोई बनाई जाती है (चित्र : ३९)।

अहोई का नाम भी उत्तराखण्ड में सुनने को नहीं मिलेगा। हरिद्वार से दक्षिण के क्षेत्रों से लेकर ब्रज, रूहेली, कन्नौजी व अवधी क्षेत्रों में इसका अधिक महत्त्व है। परन्तु सबसे अधिक महत्त्व उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिले सहारनपुर, रुड़की, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, आगरा व मथुरा के आसपास के क्षेत्रों में है, अन्य स्थानों पर कम।

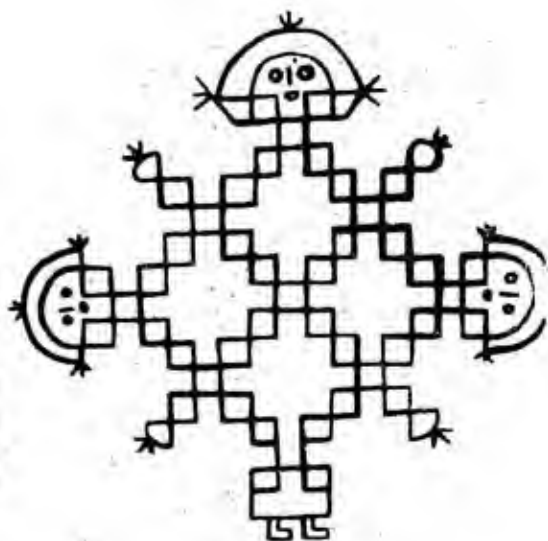
घन तेरस : कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को घन तेरस के नाम से पुकारते हैं। इस दिन यमराज की पूजा की जाती है जिससे वे खुश रहें। इस दिन नये बर्तन खरीदना शुभ माना जाता है। शाम को कूछ दीपों से दीपदान होता है, बर्तन खरीदने से लक्ष्मी का घर में बास होता है; ऐसा विश्वास है। नरक चतुर्दशी को कुछ लोगों के यहाँ पटले पर श्री से कृष्ण जी का चित्र बनाकर पूजा की जाती है। कहा जाता है कि इस दिन श्रीकृष्ण ने नरकासुर का वध किया था। यमराज की प्रसन्नता के लिए सायंकाल को दीपदान भी करते हैं।

बड़ी दीपावली : कार्तिक की अमावस्या के दिन बड़ी दीपावली मनाई जाती है। राम द्वारा लंका पर विजय के पश्चात् अयोध्या पहुँचने पर सम्पूर्ण अवध क्षेत्र को दीपमालिकाओं से सजाया गया था। अयोध्या की शोभा अतुलनीय थी। आज भी उसी समय को स्मरण कर घरों को दो दिन पहले से ही कुछ दीपकों के द्वारा अमावस्या को अनगिन दीपों से सजाया जाता है। बाद में इसमें गणेश-लक्ष्मी की पूजा भी जुड़ गई। गणेशजी विघ्ननिवारक हैं व लक्ष्मी धन और ऐश्वर्य को देने वाली हैं। इस समय सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में दीपावली का उत्सव बहुत ही धूमधाम से और उल्लासपूर्वक मनाया जाता है। बच्चों का तो यह मनभावना त्यौहार है।

उत्तराखण्ड में इस समय गेहू से जमीन को लीप कर अति सुंदर ऐपन बनाये जाते हैं। हाथों की मुट्ठियों की सहायता से लक्ष्मी के पैर मुख्य द्वार से पूजा-स्थल तक बनाये जाते हैं। बीच में सुंदर-सुंदर ऐपन बनाये जाते हैं जो कि तंत्रों पर भी आधारित होते हैं। अष्टकमल, षट्भुज कमल, हाथी की सहायता से यह ऐपन बनाये जाते हैं। सार्यकाल लक्ष्मीजी का चित्रण हाथियों सहित भूमि पर या थाली में किया जाता है। इसके बाद गन्ने के तीन भाग करके मण्डप छाया जाता है। उसके ऊपर नारियल बाँधा जाता है, फिर घर का एक लहंगा-दुपट्टा पहनाकर लक्ष्मीजी का आकार दे दिया जाता है। घर के समस्त गहने भी पहना दिये जाते हैं। इसके बाद लक्ष्मीजी की पूजा विधिवत् करके पकवान व मिष्ठान आदि से भोग लगाया जाता है और दीपदान दिया जाता है। इस क्षेत्र में रसोईघर को भी भित्ति अलंकरण द्वारा सजाया जाता है, जिसका प्रचलन किसी भी त्यौहार पर उत्तर प्रदेश के किसी भी भाग में नहीं है (चित्र : ४०)।

उत्तराखण्ड के जौनसार-बाबर क्षेत्र में दीपावली का त्यौहार कार्तिक पूर्णिमा से कार्तिक अमावस्या तक चलता है।¹¹

उत्तराखण्ड की भुक्ता जनजाति भी दीवाली को एक साधारण रूप में मनाती है। शेष उत्तर प्रदेश में भित्ति पर दीपावली का अंकन किया जाता है, जिसमें बहुत विभिन्नता है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश (खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा) तथा बुंदेलखण्ड में इस चित्रण को सौरती/सुराती कहते हैं (चित्र : ४१), जबकि अन्य क्षेत्रों में दीपावली ही। सौरती में मानवाकृति के भीतर, जो अधिकतर सफेद भित्ति पर गेहू से बनाई जाती है, एक रुपया पान के ऊपर रखकर सौरती पर पूजन के समय चिपका दिया जाता है। दीपावली चित्रण में अन्य जगह गणेश-लक्ष्मी, चन्द्र-सूरज, तारागण, विभिन्न देवी-देवता, स्वास्तिक-चौक-चौपड़, हाथी, गाय, मोर, तोता, ऊँट, गाजे-वाजे वाले, दीपक, सगुन चौथ आदि चित्रित किये जाते हैं (चित्र : ४२, ४३, ४४ व ४५ रंगीन)। यह दीपावली का चित्रण अधिकतर रंगों से भरा होता है। भूमि पर अति सुंदर-सुंदर चौक देखने को मिलते हैं। शाम के समय सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश के स्त्री-पुरुष गणेश-लक्ष्मी की पूजा करते हैं। दो-तीन दिन तक दीपावली का मेला लगता है, जिसमें क्षेत्र विशेष की विशेषता को लिए हुए



चित्र ४१ : सीरती। खड़ी बोली, ब्रज तथा बन्देली भाषी क्षेत्रों में शोपावली के समय का चिह्न।



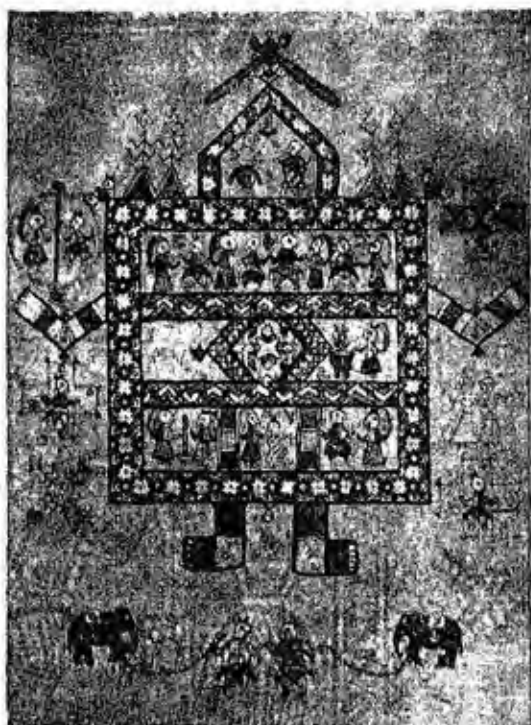
चित्र ४२ : श्वेताम्बर जीनों में प्रचलित चिह्न। इसे वेरु से बनाते हैं।



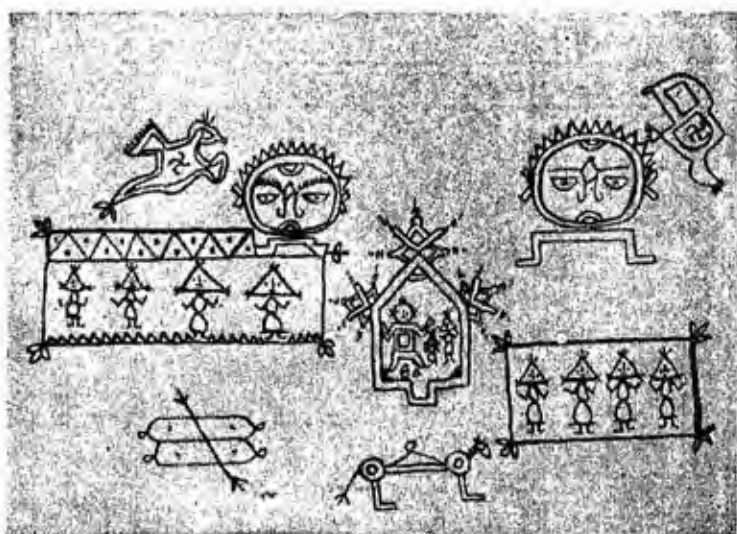
चित्र ४३ : दीपावली ।
बनारस में प्रचलित
रंगीन भित्ति चित्रण ।



चित्र ४४ : दीपावली । भित्ति चित्रण का एक लोकप्रिय नमूना ।



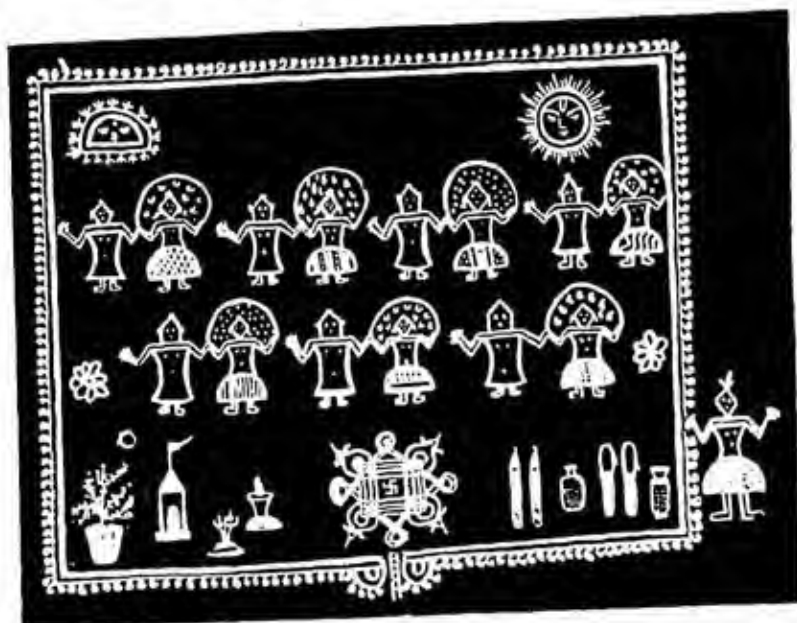
चित्र ४५ : दीपावली ।
बुन्देलखण्ड की खत्री
जाति में प्रचलित
भित्ति चित्रण ।



चित्र ४६ : भाई दूज । चतुर्वेदी परिवारों में प्रचलित भित्ति चित्रण । इसे सफेद दीवार पर
खास की राख (जलाकर) से बनाया जाता है ।



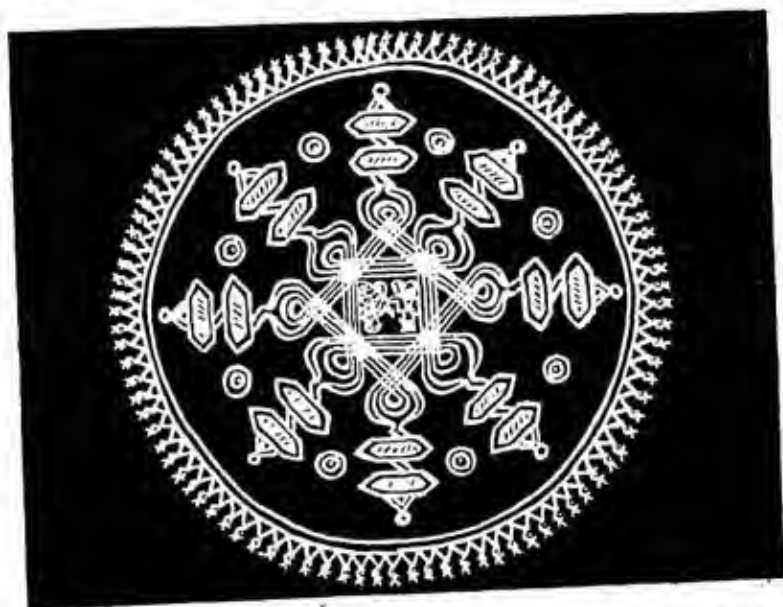
चित्र ४७ : भाई दूज । कन्नोजिया ब्राह्मणों में प्रचलित भूमि चित्रण ।



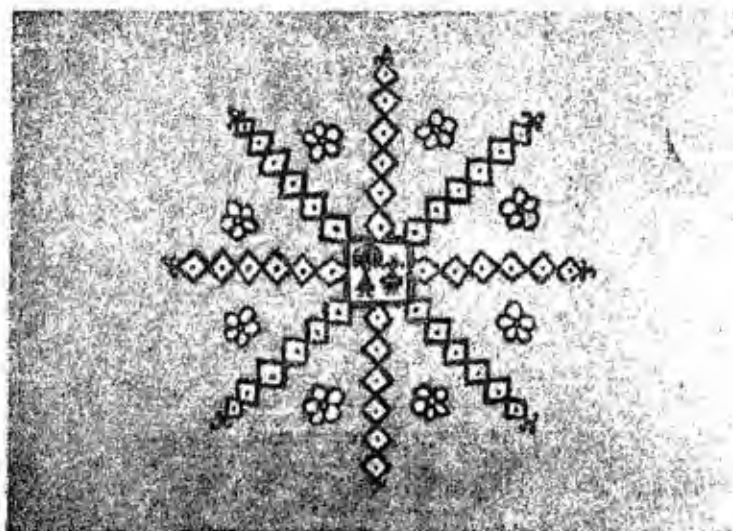
चित्र ४८ : भाई दूज । एक लोकप्रिय भूमि चित्रण का नमूना ।



चित्र ४६ : देवउठान
एकादशी । कुमाऊँ क्षेत्र का
घुइया पट्टक । इसे सूर्य के
पीछे, बताते हैं ।



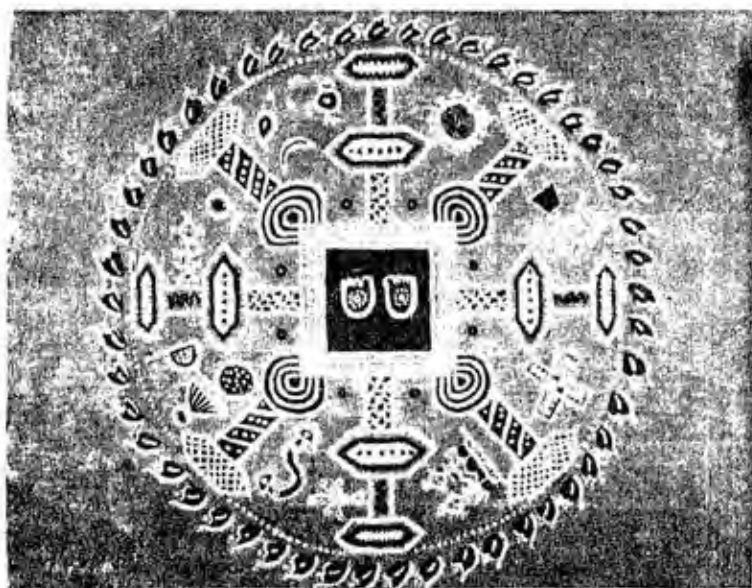
चित्र. ५० : देवउठान एकादशी । बज्र तथा खड़ी बोली क्षेत्र का भूमि अंतकरण । बीच में
विष्णु और मुलसी का चित्रण है ।



चित्र ५१ : देवउठान एकादशी । एक लोकप्रिय भूमि असंकरण ।



चित्र ५२ : देवउठान
एकादशी । फहेंखाबाव
में प्रचलित भूमि
असंकरण । बीच में
विष्णु के पैर चित्रित
हैं !



चित्र १३ : देवउठान एकादशी । कानपुर में प्रचलित भूमि अलंकरण । मोहर से लिपी भूमि पर भावल के पीछे तथा नेरु से बनाते हैं ।



चित्र १४ : देवउठान एकादशी । बनारस में खत्री परिवार में प्रचलित भूमि अलंकरण ।



विभिन्न प्रकार के मिट्टी, पेपरमशी, काली मिट्टी के बने व रंगे हुए खिलौने देखने को मिलते हैं। फुलझड़ियाँ, आतिशवाजी की चकाची और शोर, घरों की बत्तों द्वारा जगमगाहट और मोमबत्ती व दीपों की टिमटिमाहट देखते ही बनती है।

गोधन : दीपावली के दूसरे दिन ही गोधन का त्यौहार मनाया जाता है। कुमार्युत्तरी क्षेत्र में गोबर से एक कुंड बनाते हैं उसे दूध-दही से भर देते हैं, मथते हैं, फिर जो भी मक्खन निकलता है उसको हुवन में डालते हैं। खीर-उड़द का बड़ा व पाँच प्रकार की सब्जियों को एक साथ बनाकर बिधिवत पूजन, फूल-रोली-अक्षत-नैवेद्य आदि से करके भोग लगाते हैं और प्रसाद बाँटते हैं। गोधन को अन्नकुट का त्यौहार भी कहा जाता है। उत्तर प्रदेश में यह क्षेत्रीय विशेषता के साथ मनाया जाता है। प्रायः दीपावली की रात अभी शेष ही होती है कि अचानक लकड़ी से सूप पीटने की ध्वनि गूँज उठती है। यह कार्य घर की बूढ़ाएँ करती हैं जिसका अर्थ होता है कि लक्ष्मी को जगाना व दलिद्वर (दरिद्रता) को हटाना। बनारस में सुबह-सुबह यह काम बहाँ के हरिजन करते हैं और उन्हें घरों से खील-बताणे और मिठाई आदि मिलते हैं।

खड़ी बोली वाले क्षेत्रों में प्रायः गोबर की एक मानवाकृति बनाते हैं। नयी रुई से आँख, नाक, कान, ओंठ तथा हाथ-पैरों की अंगुलियाँ बनाते हैं। हाथ-पैरों में चार-चार पान की सीकें लगाते हैं। शाम को मिलवाँ सब्जी, कढ़ी-चावल, रोटी व पकवानों से उनकी पूजा की जाती है। गायों को सजाते हैं। गोधन की परिक्रमा भी की जाती है।

अज प्रदेश में गाय-बछड़ों के पूजने का भी प्रचलन है। यहाँ भी गोबर द्वारा एक मानवाकृति बनाई जाती है। उसकी सूँधी (नाभि) में दूब, खील-बताणे भर दिये जाते हैं। बिधिवत् पूजन के बाद छप्पन प्रकार का भोग लगाया जाता है। कहीं-कहीं गाय के बछड़े से इसे रौंदवाने की भी प्रथा है।

रहेली, अबधी, कन्नौजी व भोजपुरी में बनारस के आसपास के क्षेत्रों में इस दिन गोबर का एक सम्पूर्ण गाँव बनाया जाता है, जिसमें बच्चे खाना खाते हुए, खाना पकाती हुई माँ, चौपड़ खेलते हुए और हुक्का पीते हुए घर के पुरुष, शृंगार करती हुई स्त्रियाँ, नौद में चारा खाती हुई गाय व बछियाँ, बछड़े, एक कुत्ता रख-वाली के लिए व दो बंदूकधारी पुरुष द्वार पर बनाये जाते हैं। सुबह कच्चे खाने से भोग लगाया जाता है। शाम को इस गोधन को पान की सीकों से छाकर बाहर व भीतर दीपक जलाये जाते हैं। तब ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण के संरक्षण में गोवर्द्धन पर्वत के नीचे समस्त गोकुल सुख व शान्ति की नौद सो रहा है।

बनारस में यह त्यौहार सभी वर्ण की जातियाँ एक साथ मिलकर मनाती हैं। छप्पन प्रकार के खाने सभी स्त्रियाँ मिलजुल कर बनाती हैं। यहाँ पर गोधन का आकार पहले की ही तरह होता है। अन्तर केवल इतना है कि बनारस में गोकुल गाँव को छाने के लिए आड़ी सीकें काम में लाते हैं। इसके बाद कृष्णजी की गोबर

की एक मूर्ति बनाकर छाई गई सीकों पर बीचोंबीच खड़ी कर दी जाती है। इसके बाद पर्वत के आकार में समेटे सीकों को छा दिया जाता है। विधिवत पूजन, आरती व भोग लगाने के बाद गोबर समेट दिया जाता है और आई हुई प्रत्येक महिला थोड़ा-थोड़ा गोबर अपने साथ ले जाकर देवता के स्थान पर रख देती है। अन्य भोजपुरी क्षेत्रों में (पूर्वी उत्तर प्रदेश) गोबर की एक आकृति बनाकर उसकी छाती पर ईंटें रख दी जाती हैं और उसी को स्त्रियाँ मूसल से कूटती हैं। यहाँ पर गोबर से बनी मनुष्याकृति इन्द्र का प्रतीक है। गोधन कूटने की प्रथा इन्द्र के मद को चूर्ण करने का प्रतीक है क्योंकि इसी दिन श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर उठाया था और इन्द्र के मद (अभिमान) को चूर्ण किया था।

बुंदेलखण्ड में गोधन बनाते तो ब्रज के समान ही हैं परन्तु पूजा करने के बाद खूब नाचते-गाते हैं। ढण्डों से खेलते हैं। कहीं-कहीं गोबर से सथिया (स्वास्तिक) रखने का भी प्रचलन है। भोजपुरी क्षेत्रों में बच्चों का विशेष खेल पिड़िया आज से शुरू होता है। यह एक माह तक चलता है। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को इसका विसर्जन किया जाता है। गोधन के गोबर से ही क्वारी लड़कियाँ पिड़िया लगाती हैं। घर की किसी भी दीवार पर गोबर की छोटी-छोटी सैकड़ों मनुष्याकृतियाँ बनाकर चिपका दी जाती हैं। फिर उन पर आटे के द्वारा चित्र बनाये जाते हैं। यह आकृतियाँ देखने में गोलाकार होती हैं। भाई का मंगलकामना के लिए व्रत रखती हैं। व्रत खण्डित हो जाने पर प्रायश्चित्त भी करती हैं। आखिरी दिन चावल व नये गुड़ की खीर खाती हैं। खाते समय कानों में रुई ठूस ली जाती है जिससे भोजन करते समय कोई शब्द न सुनाई पड़े, नहीं तो खाना छोड़ना पड़ता है। भोजनोपरान्त दूसरे दिन प्रातःकाल मूर्तियों को बटोर कर किसी नदी में विसर्जित कर देते हैं। इस क्रिया को रिड़ियाँ दहवाना (विसर्जित करना) कहते हैं। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत भाई-बहन के अटूट प्रेम से भरे होते हैं।

भाई दूज : गोधन के दूसरे दिन भाई दूज अथवा यम द्वितीया त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन भाई को बहन टीका करती है और भाई-बहन का हाथ पकड़कर यमुना में स्नान करने को पुण्य माना जाता है।

इससे सम्बन्धित कथा इस प्रकार है। यमराज और यमुना भाई बहन थे। भाई दूज के दिन यमुनाजी ने यमराज को खाने का निमन्त्रण दिया। यमराजजी समय पर जीमने आ पहुँचे। खूब स्नेहपूर्वक बहन ने तरह-तरह के पकवान, मिठाई खिलाए। यमराजजी उसके इस व्यवहार से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बहिन से कहा, बरदान माँगो। यमुनाजी बोलीं, जो कार्तिक मास में यमुनाजी में स्नान करे, वह यमलोक को नहीं जावे। इस पर यमराजजी बोले, यह तो बहुत है। इस पर यमुनाजी ने कहा कि जो इस दिन भाई-बहन हाथ पकड़कर यमुना में स्नान करे तो वह यमलोक में नहीं जावे। यमराज इस पर एवमस्तु कहकर अपने लोक में चले गये।

ब्रज के क्षेत्र में चतुर्वेदी ब्राह्मणों के यहाँ कहीं भित्ति पर तो कहीं भूमि पर भाई दूज लिखी जाती है (चित्र : ४६)। ब्रज के क्षेत्र में ही यमुना-स्नान का अत्यधिक महत्त्व है।

उत्तराखण्ड में इस दिन चावल में मोमन लगाकर दही से माँडते हैं तथा घोघे के आकार में तल लेते हैं। भगवान की पूजा के बाद भाई को तिलक लगाते हैं और प्रसाद के तौर पर बाँट देते हैं। अन्य पश्चिमी क्षेत्र में गोबरद्वन को दूसरे दिन उठाकर उसके स्थान पर आटे या हल्दी का चोक पूरा जाता है तथा गोबर की एक गौर बनाई जाती है। इस गौर की आँख-नाक आदि कुछ भी नहीं बनाई जाती। फिर गौर की पूजा खीलों से करके गीत गाते हैं।

रहेली, कन्नौजी और अवधी क्षेत्रों में ऐपन या चावल के पीटे से भाई दूज जमीन पर चित्रित की जाती है (चित्र : ४७ व ४८) जिसमें एक बैरी, चन्द्र-सूरज, भाई-बहन, चौक-शिवाला आदि चित्रित करते हैं। कहीं यह बैरी उल्टा करके तथा कहीं केवल उसका सिर ही बनाते हैं। फिर भटकटैयाँ, बैरी, बबूल आदि का काँटा उसके मुख पर रखकर तथा सकोरे में सात तरह का अनाज, धी, नमक-मिर्च रखकर मूसल से सभी बहिनें कूटती है। भाई के आयुष्मान होने की कामना करती हैं। टीका करती हैं और मिठाई आदि खिलाती हैं तथा भाई भी भेंटस्वरूप कुछ-न-कुछ बहनों को देता है। पूर्वी क्षेत्र में बनारस आदि में कहीं-कहीं भित्ति पर तथा कहीं गोबर से भाई दूज भी बनाई जाती है।

पूर्वी क्षेत्रों में एक विशेष चौकाने वाला रिवाज यह भी है कि इस त्योहार के दिन बहनें अपने सभी भाइयों, भतीजों को शाप देती हुई कहती हैं, फलाँ भैया को खाऊँ, फलाँ को चबाऊँ। जिनके घरों में लड़कियाँ नहीं होती, वे पड़ोस की लड़की से कह देती हैं, मेरे बेटे और नाती को भी खा लेना। भाई की दीर्घायु-कामना की इस विधि से सम्बन्धित दो कहानियाँ यहाँ दी जा रही हैं।

पहली कहानी : एक बहन के कई भाई हुए, पर सब मृत्यु का ग्रास बन गये। एक भाई बड़ी मनोतियों के बाद जीवित बचा। एक दिन बहिन ने पक्षियों का वार्तालाप सुना जिममें कहा जा रहा था कि यह लड़का अपने विवाह में फेरों के समय ही मर जायेगा क्योंकि आज तक इसको किसी ने गाली या शाप नहीं दिया है। यह बहुत लाड़ला है। इसे कोई गाली या शाप देना ही नहीं। गाली से आयु बढ़ती है। बहिन ने उसी दिन से भाई को रात-दिन गाली देना आरम्भ कर दिया। सभी ने बहुत डाँटा, समझाया, मना किया पर वह मानी नहीं। विवाह के दिन भी दिन भर वह भाई के साथ छाया की तरह लगी रही और कहती रही, भैया खाऊँ-भैया खाऊँ। फेरों के समय उसने भाई के सिर पर आँचल फैला दिया। इतने में अचानक ऊपर से शूल गिरा जिसे बहिन ने आँचल में रोक कर भाई की रक्षा की।

दूसरी कहानी : एक स्त्री को साँप से प्रेम था। एक दिन साँप उसके पति के जूते में छिपकर बैठ गया। जब पति ने जूता पहनना चाहा तो उसे साँप दिखाई

दिया। उसने साँप को मार कर बाहर के पेड़ पर टाँग दिया। स्त्री ने जब साँप को मरा देखा तो वह उसे उठा लाई तथा कई टुकड़े करके एक अपने जूड़े, एक अंगिया में, चार चारपाई के चारों पायों तले तथा एक टुकड़ा दीपक में रख दिया। जब पति घर आया तो स्त्री ने कहा, 'या तो मेरी पहेली बूझो नहीं तो मरने के लिए तैयार रहो।' पहेली ऐसे थी—एक जुरवाँ धरा। एक अंगिया धरा। चार पाया धरा। एक दीपक धरा। बोलो क्या? पति बहुत कोशिश करने के बाद भी नहीं समझ पाया। वह मरने को तैयार हो गया। मरने से पहले उसने अपनी स्त्री से कहा कि मुझे अपनी बहन से मिल आने दो, नहीं तो वह भाई दूज पर भूखी रह जायेगी। स्त्री इस पर राजी हो गई। भाई को असमय अपने यहाँ आया देख बहिन ने उसकी बहववासी व दीन-हीन दशा देखकर आने का कारण पूछा। भाई ने सब कुछ बता दिया। बहन भाई के साथ चलने का आग्रह करने लगी। दोनों ही घर से चल पड़े। रास्ते में देर हो गई तथा नदी किनारे ही वह विश्राम करने लगे। भाई तो सो गया पर बहन बहुत चिन्तित थी। इतने में ही उसे नदी किनारे कुछ स्त्रियाँ कुछ बात करती दिखाई दीं। ये सब विभिन्न घरों की लक्ष्मी थीं। भाई के घर की लक्ष्मी कह रही थी कि कल रात तो मैं कष्ट में रही दुर्गन्ध के मारे। अन्योंने पूछा, कैसे? इस पर उसने सारी बात बता दी और दुःख से बोली, आज शाम तक वह वापस आ जाएगा और बेचारा मारा जायेगा। सभी लक्ष्मियों को बहुत अफसोस हुआ और वे स्त्री की भर्त्सना करती हुई चली गईं। बहन उसी समय भाई के साथ चल पड़ी और घर पहुँचकर साँप की बोटियाँ निकाली तथा भाई की प्राण-रक्षा की।

भाई दूज के दिन गाली देने समय पुरुष वहाँ से हटा दिये जाते हैं। गाली देने के पश्चात् भटकटिया अथवा रँगनी के काँटों से वे अपनी जीभ को दाग कर दण्डित करती हैं जिससे कि गाली और शाप देने के द्वारा किये गये पाप का प्रायश्चित्त हो जाये और कहती हैं कि जिस-जिस को मैंने खाय़ा-चबाया है, उस-उस की आयु बढ़े, उसे हनुमन्ते का बल दे। जिस तरह रक्षाबंधन भाई के द्वारा बहन को दिया रक्षा-बंधन है, वहाँ दूसरी ओर भाईदूज बहन का भाई को दिया रक्षा-कवच है।

बुंदेलखण्ड में गोबर से आँगन में ग्वाले तथा डंडा बनाते हैं और बहनें उसकी रोली-चावल, मिठाई आदि से पूजा करती हैं। बहन भाई को टीका करती है। बुंदेलखण्ड के प्रजापति जाति के लोग गोबर के खेल-खिसौने दरबाजे के दोनों ओर बनाते हैं, फिर कच्चे खाने से पूजा करते हैं। यहीं पर अहोई जाति के लोग गोबर से सात भाई-बहन, खीर खाती बहन, शंकर-मार्वती जी तथा एक गुड़िया जिस पर रुई की आस जोड़ी जाती है, बनाते हैं। फिर कथा कहती जाती है जिसे पुरुष नहीं सुनते। बहन भाई को टीका लगाती है। बुंदेलखण्ड में कहीं-कहीं पड़वा व दौज, दोनों दिन, निम्नवर्गीय जातियाँ दीपक लेकर सुबह-सुबह जगाने जाती हैं। इस समय घर का मालिक चावल व अन्य सामान जनको देता है।

इसी क्षेत्र में कहीं-कहीं गोबर का स्वास्तिक बनाकर दरवाजे के दोनों ओर रख देते हैं। एक दुश्मन भी बनाते हैं। होम में खीर आदि चढ़ाते हैं। मूसल व दुश्मन की भी रोली व अक्षत आदि से पूजा करते हैं।

सूर्य छट या डला छट : कार्तिक मास की शुक्ला षष्ठी को सूर्य छट या डला छट मनाया जाता है। यह त्यौहार केवल पूर्वी उत्तर प्रदेश के भोजपुरी क्षेत्रों में होता है। आरम्भ षष्ठी की सांध्य बेला में डूबते सूर्य को अर्घ्य चढ़ाने के साथ तथा समापन सप्तमी के भोर के उबते सूर्य को अर्घ्य चढ़ाने के बाद होता है। पूजन तथा अर्घ्यदान देते समय सूर्य की किरणों को अवश्य देखना चाहिए। ये किरणें चर्म रोग व आँख की बीमारी से लोगों को मुक्ति दिलाती हैं। यह अलंकृत नहीं किया जाता।

बेवउठान एकादशी : कार्तिक शुक्ला एकादशी को देवोत्थान अथवा देवउठान एकादशी मनाई जाती है। यह त्यौहार विष्णुजी के चार मास शयन करने के बाद जागने की खुशी में मनाते हैं। उत्तराखण्ड के कुमायूनी क्षेत्र में घुइया पटक के नाम से इसे मनाया जाता है। इस दिन सूप के पीछे तथा पृथ्वी पर चित्र बनाने का रिवाज है (चित्र : ४६)। सूप में चित्र बनाने के बाद मिट्टी के दो जलते हुए दीपक रखे जाते हैं जिसमें से एक बड़ा व एक छोटा होता है। इस सूप में दाड़िम व अखरोट एक-एक रखा जाता है। घुइया (जो दुर्भाग्य व गरीबी की देवी मानी जाती है) को गन्ने के टुकड़े द्वारा सूप को पीछे से पीटते हुए घर के प्रत्येक कमरे में जाते हुए बड़ी बूढ़ी कहती है, 'निकल अलक्ष्मी, निकल' तथा लक्ष्मी को आने का आह्वान करती हैं। इसके बाद अनार व अखरोट को ऊखल-मूसल द्वारा कटते हैं जिसका अर्थ होता है अलक्ष्मी व दुर्भाग्य को समाप्त कर देना। इसके बाद छोटे दीपक को घर के बाहर ऊखल के पास रख दिया जाता है और बड़े दीपक को कुलदेवता के स्थान पर रख दिया जाता है। इस समय चक्की, ऊखल, मूसल व झाड़ू को भी ऐंपन से सजाते हैं। घर के मुख्य द्वार से कुल देवता के स्थान तक लगातार एक जोड़ी पाँव बनाने की प्रथा है जो लक्ष्मी-आगमन का सूचक है। रात को दीपकों से रोशनी भी की जाती है, पटाखे भी छोड़े जाते हैं। ब्रजभाषा, खड़ी बोली वाले क्षेत्र में तुलसी एवं विष्णु अथवा कृष्णजी की शादी की जाती है और भूमि पर गेरू व पीठे से विभिन्न प्रकार के चौक पूरे जाते हैं (चित्र : ५० व ५१)। ब्रज में इस दिन की शोभा देखते ही बनती है। सुबह-सुबह गोबर से लीप कर पीठे से चौक पूर कर डलिया से ढक देते हैं। शाम को गन्ने को तिपाही के आकार में चौक के ऊपर खड़ा कर दिया जाता है। एक पट्टे पर पाँच अथवा सात जलते दीपक रखे जाते हैं। साग, सिंघाड़े, शकरकन्द, गन्ना, चावल, मिठाई, फल-फूल आदि से पूजा करते हैं। घर के सभी पुरुष दीपकों से आरती उतारते हैं और कहते जाते हैं :

उठो देव, बैठो देव, पावरिया चटकाओ देव।

बवारों का ब्याह करो, ब्याह का गौना करो देव,

गौनेन को छोरा करौ, सुखी करो देव ।

ब्रज प्रदेश की एक लोकप्रिय कथा यहाँ दे रही हूँ, जिससे ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र-विशेष में तुलसी को कृष्ण कितने प्रिय थे ।

तुलसी में सावन में दो-तीन पत्ते आ जाते हैं । भादों में तुलसी लहराने लगती है और क्वार में युवा हो जाती है । उसके माता-पिता को तुलसी के विवाह की चिन्ता सताई । तुलसी से वर के विषय में पूछा गया तो तुलसी ने कहा, 'उगता हुआ सूर्य गर्म होता है, चन्द्र एक पखवारे का राजा होता है । ब्रह्मा चार सिर वाले, विष्णु चार भुजा वाले, शिव जी जटा वाले और गणेश जी सूंड वाले हैं । शुक्र की एक आँख है, शनीचर ग्रहों से घिरे हैं, मंगल पीड़ादायक, बुध बुद्धिहीन तथा बृहस्पति शीतल है, इसलिए जग को ज्योतिर्मय करने वाले श्रीकृष्ण ही मेरे पति हैं ।'

रहेली, कन्तौजी, पश्चिमी अवधी के क्षेत्र एक से एक सुंदर भूमि-चित्रों में अपना सानी नहीं रखते । चावल के पीठे व गेरू या फिर ऐसन व गेरू या फिर केवल गेरू से पूरे आँगन को घेरते हुए चित्र बनाते हैं (चित्र : ५२-५३) । यहाँ पर तुलसी का विवाह विष्णु से होता है । पूजाविधि में कुछ ही अन्तर है ।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में यह त्यौहार सामूहिक रूप से एक साथ मनाया जाता है । मुहल्ले के प्रत्येक घर की स्त्रियाँ एक बार मण्डप अपने यहाँ बनवाने की हठ करती हैं । प्रत्येक स्त्री कोई-न-कोई सब्जी-मिष्ठान आदि बनाकर मण्डप वाले घर में लाती है । चौक पूर कर तुलसी के चौरों को उस पर रख दिया जाता है । अन्य देवतागण भी रखे जाते हैं । मण्डप के नीचे विष्णु व तुलसी का विवाह खूब धूम-धाम से किया जाता है (चित्र : ५४) ।

बुंदेलखण्ड में इस दिन गुड़िया बनाते हैं । पाँच गल्लों का मण्डप बनाते हैं । फिर चने की भाजी, सिचाड़ा, नयी सब्जी व फल आदि से पूजा की जाती है । कहीं-कहीं गेरू से भूमि और भित्ति पर चित्र बनाते हैं । स्त्रियाँ पूजा करते समय कहती हैं—उठो देव गुड़ खाओ देव, कुआरों का ब्याह, विवाहिता का गौना तथा बिदा कराओ देव ।

देवउठान के भूमि-अलंकरणों में विविधता है । यह बहुत ही कलात्मक होते हैं । पल्ल्या (पाँव) भी बनाये जाते हैं । ये विष्णु के प्रतीक हैं । अधिकांशतः चित्र चावल के पीठे से ही बनाये जाते हैं । कहीं-कहीं हल्दी या गेरू भी प्रयोग में लाया जाता है ।

पौष मास

मकर संक्रान्ति : यों तो प्रत्येक मास संक्रान्ति आती है, पर मनाई कर्क व मकर की ही जाती है । सम्पूर्ण भारत में मकर संक्रान्ति ऋतु-परिवर्तन, सूर्य संक्रमण का

पर्व है। इस दिन सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में तिल, तिल से बने लड्डू तथा अन्य पकवान, खिचड़ी, पापड़, फल-सब्जी, सूखी मेवा, कपड़े आदि के मनसने (दान) तथा गंगा में नहाना आदि प्रचलित है। उत्तराखण्ड में कुमायूनी क्षेत्रों में यह अलग ही प्रकार से मनाया जाता है।

कुमायूनी क्षेत्रों में यह सर्वथा नवीन रूप में देखने को मिलती है। यह बच्चों का मगभावना त्यौहार है। इस त्यौहार की कलात्मकता बच्चों के लिए बनाई गई माला में होती है। संक्रान्ति के दो दिन पहले तवे पर एक रोटी एक ही तरफ से सेंक कर बनाते हैं जिसे कौबों के लिए रख लेते हैं। संक्रान्ति के दिन जो भी कच्चा खाना बनाया जाता है, उसमें से थोड़ा इस पर रख दिया जाता है। संक्रान्ति के दिन रात्रि को जलेबी, गुंशियाँ, डमरू, तलवार, सकरपारे, ढाल, पूरी, मीठे आटे की तली जाती हैं। सबसे बाद में पाँच कौबे भी बनाये जाते हैं। फिर केवल कौबों को छोड़कर समस्त तला मीठा सामान, अनार के फूल, संतरा, गन्ना, उड़द का बड़ा आदि से उतनी ही मालाएँ बनाई जाती हैं जितने बच्चे हों। संक्रान्ति की सुबह बच्चे चार बजे ही उठ जाते हैं। नित्य कर्म से निवृत्ति के बाद वही व मीठा खाते हैं, फिर माला पहनते हैं और रोटी पर वह पाँच कौबे भी रखकर सबसे ऊँचे स्थान पर रख देते हैं। जब तक कौए खाना न खा लें, बच्चे माला में पड़ा सामान नहीं खा सकते।

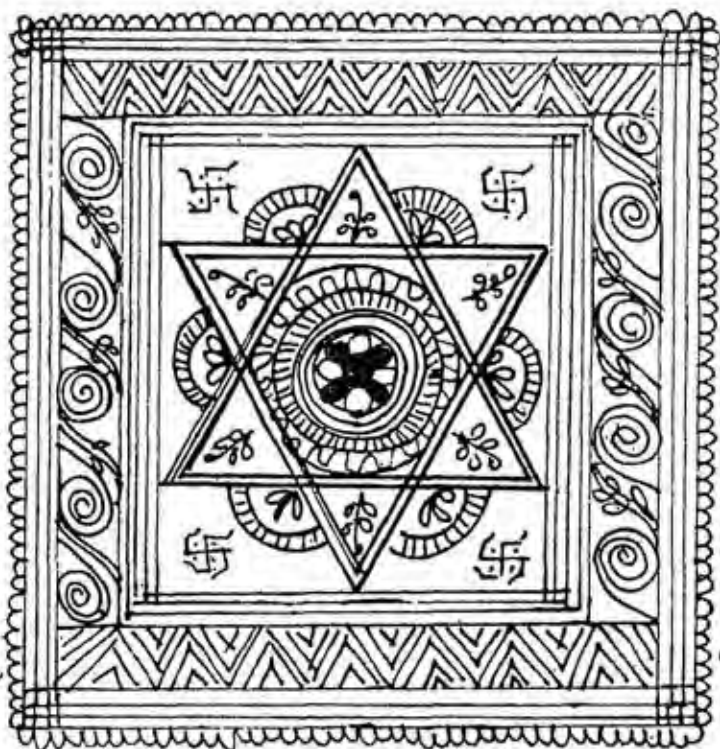
सूर्य पूजन : पौष मास के प्रथम रविवार को कुमायूनी क्षेत्र में सूर्य देवता की पूजा की जाती है। इस समय सूर्य भगवान की चौकी पटले पर बनाई जाती है (चित्र : ५५)। इसी चौकी को नवजात शिशु के प्रथम सूर्य-दर्शन के समय भी बनाया जाता है। इसमें सूर्य, चन्द्र, विष्णु-लक्ष्मी तथा शेषनाग के साथ, शंख, चौक व पूजा की विभिन्न आरती व अन्य सामान बनाया जाता है। इसकी मंत्रोच्चारण के साथ विधिवत् पूजा की जाती है। यह कुमायूनी क्षेत्र को छोड़ अन्य उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में नहीं मनाया जाता।

संकट चौथ : यह माघ कृष्ण चौथ को मनाया जाने वाला त्यौहार है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्रों में इसका अधिक महत्त्व है। इसका उत्सव सामूहिक रूप से मनाया जाता है। किन्तु पूजा मिट्टी या गोबर के गणेश जी बनाकर करते हैं। यहाँ पर सर्वप्रचलित एक कहावत है : 'एकतरैया पापी देखे, दो देखे चंडाल। तीन तरैया राजा देखे, सब देखे संसार।'।

इन क्षेत्रों में व्रत तारे देखकर खोला जाता है। उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में काँसे की थाली में तिलकुट बनाकर चाँदी के रुपये द्वारा पुत्रों से कटवाने का प्रचलन है। यह तिलकुट मेंढा या बकरे की आकृति का प्रतीक है। कहीं-कहीं पटले पर घी से सकट-सकटुआ को भी चित्रित करने की प्रथा है।

सकट-सकटुआ की कथा इस प्रकार है। किसी समय एक राजा व्यापार के लिए बाहर गया। जब वह दूसरे राज्य के किनारे पहुँचा, तब नाव किनारे ही

अटक गई। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह हिल न सकी। राजा बहुत परेशान हुआ तथा दूसरे राज्य के राजा के पास पहुँचा। राजा ने राज्य में डुगी पिटवाई कि जो भी नाव को निकाल देगा उसे मुँहमाँगा इनाम मिलेगा, पर किसी से नाव हिल भी न पाई। राजा ने पण्डित बुलवाये तथा उपाय पूछा। पण्डितों ने कहा कि जो भी बच्चे 'संकट चौथ' के दिन उत्पन्न हुए हैं वे ही नाव को खे सकेंगे। राज्य में घोषणा कर दी गई। केवल दो ही बच्चे, जो कि जुड़वा थे, आये। उनके हाथ लगाते ही नाव चल दी और राजा बच्चों को लेकर अपने देश चला गया, जहाँ राजा ने बच्चों को अपना मंत्री बना लिया। ये बच्चे बाहु बल में बेजोड़ थे।



चित्र ५६ : सरस्वती की चौकी

वसन्त पंचमी : यह माघ शुक्ला पंचमी को मनाई जाती है। उत्तराखण्ड में कुमायूँनी क्षेत्रों में चावल के पीठे से सरस्वती की चौकी बनाई जाती है (चित्र : ५६)। पीले कपड़े भी पहनते हैं। जौ की बालियाँ लाते हैं। रोली-अक्षत से पत्तियों की पूजा होती है। बालियों को पाँच बार सिर से स्पर्श करते हैं। पत्नी, पति व देवर के, टीका करती है। ननद-भावज को इस समय कुछ-न-कुछ देती है।

चावल से सरस्वती-पूजन का विधान है। रूहेली क्षेत्रों में कुछ जातियाँ पटले पर बसंत व बसंता धी से बनाकर रोली-चावल से पूजा करके उन पर पूड़ी, पूआ, हलुवा, आम की टहनी, बौर, सरसों व गेंदे के फूल चढ़ाती हैं। सूजी का पीला मीठा हलुवा या नमकीन, बसन्ती रंग के चावल भी बनाये जाते हैं।

पूर्वी उत्तर प्रदेश में भी सरस्वती पूजन का विधान है। लोग पीले वस्त्र पहनते हैं तथा आज के दिन से गुलाल खेलते हैं। बसन्त पंचमी से ही होली की मस्ती शुरू हो जाती है। होरी, रसिया, स्वाँग, धमार व फाग की मधुर स्वरलहरियाँ बायु-मण्डल में होली तक छाई रहती हैं।

यह त्यौहार ऋतुराज बसन्त के आगमन का सूचक है। सर्दी कम होती जाती है तथा चारों ओर धरा फूलों से सुशोभित हो जाती है। आम के वृक्ष पर बौर आ जाता है। कोयल कूकने लगती है, पीले-पीले सरसों के फूलों से खेत भर जाते हैं और सर्वत्र फैले सुगंधित व सुन्दर फूलों को देखकर हृदय फूला नहीं समाता। आरम्भ में यह त्यौहार ऋतु-परिवर्तन का त्यौहार था।

फाल्गुन मास

होली : फाल्गुन की पूर्णिमा को यह त्यौहार मनाया जाता है। इसे होलिकोत्सव भी कहते हैं। सभी जातियाँ, वर्ण तथा सभी आयु के लोग हर्षोल्लास के साथ इसे मनाते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में तो इसका निखार देखते ही बनता है। ब्रज की भूमि का चप्पा-चप्पा रंगों व फागों से रसबिभोर होता है। वृन्दावन, गोवर्द्धन, वरसाने की होली देखते ही बनती है। यह त्यौहार बच्चे, जवान, बूढ़े, भाभी, नन्द-देवर, साली-जीजा का हास-परिहास का त्यौहार है।

पूर्णिमा की रात्रि को होली जलाई जाती है। प्रत्येक शहर व गाँव में जगह-जगह होली जलाने के लिए लकड़ी तथा अन्य जलने वाली वस्तुएँ एकत्र की जाती हैं। घरों में महिलाएँ विविध प्रकार के पकवान बनाने में व्यस्त होती हैं। ब्रज के चतुर्वेदी परिवार तथा रूहेली, अवधी, भोजपुरी, कन्नौजी व बुंदेली क्षेत्रों में कुछ जातियों में, जिनमें कायस्थ, कान्यकुब्ज ब्राह्मण व क्षत्रियों की उपजातियाँ सम्मिलित हैं, आँगन को गोबर से लीपकर प्रत्येक संध्या को चमचे की सहायता से फाल्गुन शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आटे के द्वारा चित्रण प्रारम्भ करते हैं। **रंग भरनी** एकादशी से यह चौक रंगीन हो जाते हैं (चित्र : ५७ रंगीन)। पूर्णिमा को रंगीन चौक बनाकर उस पर पहले से गोबर से बनाकर सुखाई हुई गुलरियाँ, वरमुलिया, बड़कुला/गुरली से पोई गई पाँच या सात मालाएँ रखी जाती हैं और एक होलिका भी बनाई जाती है। मुहूर्त के अनुसार घर के मंद बाहर जाकर मुहल्ले की होलिका-दहन में भाग लेते हैं। जौ और गेहूँ की बालियाँ, चना और गन्ने भूनते हैं, परिक्का करते हुए होलिका माता की जय-जयकार करते हुए उल्लसित होते हैं। गुलाल एक-दूसरे के माथे पर मलते हैं और उसी होली के कुछ अँगारे घर की होली

जलाने के लिए लाते हैं। घर पर स्त्रियाँ प्रायः एक पट्टे पर शिव-पार्वती व गणेश जी की मिट्टी की मूर्ति बनाकर पूजा करती हैं। होली की पूजा करके विभिन्न पकवानों से भोग लगाया जाता है और परिक्रमा करते हैं। गेहूँ, जौ-चना व गन्ने को आग में भूनते हैं। दूसरे दिन होली रंगों से खेली जाती है, फाग गाये जाते हैं और शाम को नहा-धोकर लोग एक-दूसरे के घर होली मिलने जाते हैं।

सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में यह त्यौहार राजा हिरण्यकश्यप, उसकी बहन होलिका तथा पुत्र प्रह्लाद की कहानी से सम्बद्ध है। चैत मास कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को होली खेलने का विधान है, पर बुंदेलखण्ड में यह दोज को खेली जाती है। प्रतिपदा को महारानी लक्ष्मीबाई के पति की मृत्यु के कारण ही होली दोज को खेली जाती है। इस दिन बहन भाई के टीका करती है। बुंदेलखण्ड में होली पूजने का ढंग भी अलग है।

बुंदेलखण्ड में होली मनाने का ढंग कुछ इस प्रकार है। अरंडी के पेड़ की डाली व गेहूँ की पाँच बाल व फूल, माली घर-घर दे जाता है। होलीदहन के बाद प्रतिपदा को गोबर के उपलों में पेड़ गाड़ देते हैं, फिर चारों ओर से अन्य उपले गाड़ दिये जाते हैं। एक सफेद कपड़े में चावल बाँध कर पेड़ की डंडी में बाँध देते हैं। उस दिन आटे की मोटी व छोटी रोटि बनाकर, जिसे वहाँ **मकड़ियाँ** कहते हैं, मलीदा (चूरमा) बनाकर गुड़, घी व शक्कर मिलाते हैं। उसी से राख के पास दीपक रखकर पूजा करते हैं। सात बार परिक्रमा दी जाती है। उन उपलों में से पाँच या सात उठाकर रख लेते हैं, जो अगली होली को जलाते हैं। इसी तरह क्रम चलता रहता है।

विशेष—यों तो उत्तर प्रदेश में और भी बहुत से त्यौहार व उत्सव मनाये जाते हैं, जिनका शास्त्रीय महत्व तो बहुत है पर उनका कला पक्ष बहुत कमजोर है। इस लिए यहाँ चित्रित किये जाने वाले त्यौहारों का ही विवरण दिया गया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उत्तराखण्ड में कुमायूनी क्षेत्र का मुकाबला जहाँ हम बंगाल की अल्पना से कर सकते हैं, वहीं बुंदेलखण्ड के भूमि अलंकरणों का महाराष्ट्र की रंगोली से। ब्रज की साँझी, जो न केवल बालिकाओं द्वारा भित्ति पर बनाई जाती है वरन् मन्दिरों में रंगीन मिट्टी, बुरादा तथा जल के ऊपर सेलखड़ी के रंगों से भी बनाई जाती है, को हम बहुत विश्वास के साथ कला पक्ष के दृष्टिकोण से राजस्थान की साँझी के ऊपर स्थान दे सकते हैं। इसके अलावा बच्चों के अन्य खेलों का कोई भी मुकाबला नहीं। वे अपने में सर्वथा नवीन हैं और भावमय तथा कलापक्ष को अपने में समेटे हैं। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग के कुमायूनी, ब्रज व खेहली भाषा वाले क्षेत्र ही अधिक भूमि व भित्ति अलंकरण में रुचि रखते हैं, जबकि पूर्वी उत्तर प्रदेश के लगभग सभी क्षेत्र।

१. प्रथम दिन बीजन बेटों, दूसरे दिन दो खाना वाला कोट, तीसरे दिन तीन वाला, चौथे दिन चोपड़, पंचमी को पाँच पान, छठी को एक छबरिया, सप्तमी को सतियाँ, अष्टमी को अठकलिया नौवीं को नौका-भ्रमण, दसवीं को दस सुपारी या सिघाड़े, ग्यारस को ग्यारह तारियल, द्वादस को बारह दोने व पत्ते, तेरस को डोली में संख्या देवी, चौदस को लक्ष्मी ब्राह्मण तथा एक काला कौवा और अमावस्या को कोट बनाया जाता है। यह किशोरियों की कलात्मक अभिव्यक्ति के सुन्दर उदाहरण हैं।
२. अमावस्या के दिन बनाये जाने वाले चित्रण को 'कोट' कहते हैं क्योंकि यह कोट के आकार का होता है।
३. डा० महेन्द्र भानावत, 'राजस्थान की संख्या' पृ० ४
४. इसमें प्रथम दिन चांद-सूरज व तारे बनाते हैं। दूसरे दिन कोट के भीतर पुरखन का पत्ता व गौरी-गणेश बनाते हैं व पूजा करते हैं, तीसरे दिन पाँच लड़के व एक पंथा, चौथे दिन चौक, पाँचवें दिन चोपड़, छठे दिन कोट के भीतर शिवाला, सातवें दिन सुपारी का पेड़, आठवें दिन सीता जी की रसोई बनाई जाती है। नौवें दिन भी रसोई ही बनी रहती है। इस दिन खीर-पूरी से भोग लगाया जाता है तथा गूड़-भी से भी धारती होती है। बाद में किसी भी शुभ दिन इसका विसर्जन कर दिया जाता है। अन्य लोगों से बातचीत की, पर इससे अधिक विवरण कुछ नहीं मिला। सभी ने इसे बहन व भाई का सस्नेह उत्सव बताया।
५. टेसू व झाँसी की कथा महाभारत के प्रमुख योद्धा बभ्रुवाहन से जोड़ी जाती है। यहाँ झाँसी उनकी परनी मानी जाती है। प्रतिदिन सायंकाल बच्चे गीत गा-गा कर पैसे मांगते हैं। लड़के हाथ में टेसू व लड़कियाँ हाथ में झाँसी के अन्दर जलते दीप लेकर गलियों में घूमती नजर आती हैं तथा घरों से पैसे एकत्र करके प्रसाद बाँटते हैं। श्री जादवसंतनन्द गुप्ता के अनुसार टेसू पाण्डव सेना का वीर योद्धा था, पर उसे अपने बल व वीरता पर भ्रम था। इसी मदांघता में उसने श्रीकृष्ण का अपमान किया। रुष्ट हो श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया। किन्तु उसके अनुरोध पर युद्ध के मैदान में उसे तीन डंडे के सहारे से इस तरह खड़ा कर दिया गया जिससे वह हो रहे युद्ध को देख सके। उसकी प्रेमिका झाँसी, जो कि नरकासुर की कन्या थी, अपूर्व सुन्दरी थी। बभ्रुवाहन का सिर कट जाने से दोनों का विवाह नहीं हो सका। क्योंकि दोनों प्रेमी थे, इसलिए युद्ध की समाप्ति पर श्रीकृष्ण जी ने दोनों का विवाह करा दिया। तभी से टेसू व झाँसी उनके प्रतीक के रूप में प्रचलित हो गए। कुछ लोग इसे पृथ्वीराज चौहान के प्रतीक के रूप में भी मानते हैं।
६. मेरठ, जो कि खड़ी बोली का प्रमुख केन्द्र है तथा महाभारत व रामायण काल का इतिहास अपने में संजोए हुए है, दशहरे के दिन आटे से रावण का चित्र बनाकर उस पर प्रतीक स्वरूप दस गोबर की उपलियाँ दस सिरों के हिसाब से रखते हैं तथा सुबह विधिवत पूजन करते हैं। कहीं-कहीं पूजन के बाद रावण के घेठ पर ही खेदी बनाकर हवन किया जाता है और फिर शस्त्रों पर कलावा बांधने व आग में तपाने के बाद पूजा के पश्चात् एक खाट ऊपर से डक दी जाती है तथा कहीं पर रावण का चित्र बनाकर पहले खाट उसके ऊपर बिछा देते हैं, इसके बाद एक सफेद चादर ओढ़ा देते हैं फिर उस चादर के ऊपर अस्त्र-शस्त्र को साफ करके व तपाकर कलावा बांधकर रखते हैं। एक थाली में

मिट्टी की दस कुल्हिया खोल-बताये भरकर रखते हैं। रावण, चमकाए हुए शस्त्र और कलम-दवात, हुंसा आदि की पूजा करते हैं। मेरठ का इतिहास बतलाता है कि मेरठ रावण की पत्नी मंदोदरी का मायका था जिसके कारण शायद महापण्डित रावण को दामाद होने के कारण यहाँ पूजने की प्रथा है। रावण की आकृति की सात या पाँच बार सभी परिक्रमा करते हैं।

७. पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गिकोहाबाद जिले के गाँवों में लोग मुखिया के यहाँ एकत्र हो जाते हैं। मुखिया सुबह से रावण की मूर्ति मिट्टी से बनाना आरम्भ करता है तथा शाम तक इसे बनाकर घर के बाहर रख देता है। शाम को उसके सामने चौक पूरा जाता है। हथियारों को साफ करके आग में तपाते हैं, फिर घर का बड़ा-बड़ा विधिवत् पूजन के बाद तलवार से रावण का सिर काट देता है तथा उस स्थान पर एकत्रित भीड़ को, जो उत्सव में सम्मिलित होती है, प्रसाद रूप में खोल-बताये व मिष्ठान बाँटा जाता है। इसी समय घर की स्त्रियाँ साज सिसार के साथ घोड़ी की पूजा करती हैं और घोड़ीबान को कुछ इनाम भी देती हैं। दणहरे को इस रूप में केवल क्षत्रिय लोग ही मनाते हैं तथा अन्य वर्ग को लोग दर्शक होते हैं।

८. बुबेलखण्ड में शुक्ल प्रतिपदा के दिन रात से भिगोये हुए जौ को सुबह राख में सानकर षडों में खाद डालकर हवन करके बो दिये जाते हैं। फिर प्रातः और सायंकाल प्रति दिन होम देकर उसे दीप-ज्योति दिखाई जाती है। डोल-मंजोरे, झाँझ आदि वाद्यों के स्वर में स्वर मिलाकर सामूहिक रूप से भवानी के भजन गाये जाते हैं। नवें दिन रात्रि को विधिवत् होम करके आरती उतारी जाती है और दसवें दिन सायंकाल को उन षडों को स्त्रियाँ सिरों पर रखकर भवानी के गीत गाती हुई सरोवर, सरिता आदि पर विसर्जन करती हैं। इस अवसर पर घर का प्रमुख, एक चौमुखा दीपक बाली में जलाकर, चलता है; उसके बाद कुछ व्यक्ति त्रिशूल लेकर चलते हैं, तत्पश्चात् दो चार व्यक्ति गालों में बान धारण करके चलते हैं। ये सभी झूमते-झूमते चलते हैं। अन्त में स्त्रियाँ सिरों पर ज्वारों को लिए हुए गीनों को गाती हुई चलती हैं। वह दिन शक्ति (आदि शक्ति भगवती) की मान्यता का प्रतीक है। सभी जातियों के लोग इसे सम्मिलित रूप से बहुत ही बड़े त्योहार के रूप में अभी भी मनाते हैं। जब ज्वारे सिराये (विसर्जित) किये जाने लगते हैं, तब देवी के नाम पर होम करके मदिरा पान कर बकरा कुम्हड़ा या नौबू काटकर बलिदान किया जाता है। इसके बाद भक्त जन बड़ी तन्मयता से आरती उतारते हैं। नाचते-नाचते जब कोई व्यक्ति भावानेन में हुंकारे भरने लगता है तब भगवती को प्रसन्न या सिर आयी समझकर दर्शन हेतु अपनी मनोकामना प्रकट करने लगता है। इसी समय अन्य व्यक्ति भगवती के दर्शन उसमें करने लगते हैं और सभी इस प्रयास में रहते हैं कि अपनी भूलों को याद करके प्रायश्चित्त का उपाय लें। जिस पर भवानी आती है वह ब्रह्मभोज, सत्पनारायण की कथा, कन्याओं का भोजन आदि विभिन्न प्रकार के अच्छे कार्य प्रायश्चित्त रूप में करने को कहता है। अन्त में प्रार्थी को बतमान पोड़ा से मुक्ति दिलाने के लिए भभूत (विभूति) देता हुआ गलोट खाकर गिर पड़ता है। इसको भवानी 'बांग' ले गई कहते हैं।

९. बासी गोरे—पहले की बनाई हुई गोरे जो लगातार आठ दिन तक गोरा पर चढ़ाई गई थीं।

१०. इसमें नौ मास के गर्भ का भाव समाहित है।

११. साँझ को ग्राम के लड़के-लड़कियाँ रस्सी के टुकड़ों में सूखे घास के पूले बाँधकर पूर-

१२ :: उत्तर प्रदेश की लोककला

निश्चित स्थल पर जाकर घास के घूसे जलाकर घूमते हैं जिसे 'होलड़े' कहते हैं। इसकी घास की डेरी को 'डिबसा' कहते हैं। अमावस्या के दिन सायंकाल 'पराली घास' के दो स्त्री-पुरुष बाँस की बल्ली में लटका देते हैं तथा उन्हें बाग व डिगवा को (अर्थात् मनुष्य को खाने वाले दानव) डिबस के बीच में रख देते हैं। दूसरे दिन भीवल वृक्ष की हरी टहनियों में सूखी टहनी की लकड़ी से, जिसको यहाँ विपाठा कहते हैं, दूसरे प्रकार के 'होलड़े' बनाए जाते हैं। गाँव का जनसमूह इन 'होलड़े' में आग लगाकर गाते-नाचते जाते हैं और 'डिबस' में आग लगा देते हैं। तत्पश्चात् बागची (बाजा बजाने वाले), बाजा बजाते हैं और सारी रात्रि नृत्य व गीत में मदमस्त होकर बिताते हैं। देखिए, 'बन्द जाति' पत्रिका, जनवरी १९७८।

1. The first part of the paper discusses the importance of the study of the history of the United States. It is argued that a knowledge of the past is essential for a full understanding of the present and for the development of a sound policy for the future.

2. The second part of the paper deals with the question of the rights of the individual. It is shown that the rights of the individual are not absolute, but are subject to the needs of the community. The author argues that the state has a duty to protect the rights of the individual, but also to restrict them when necessary for the good of the community.

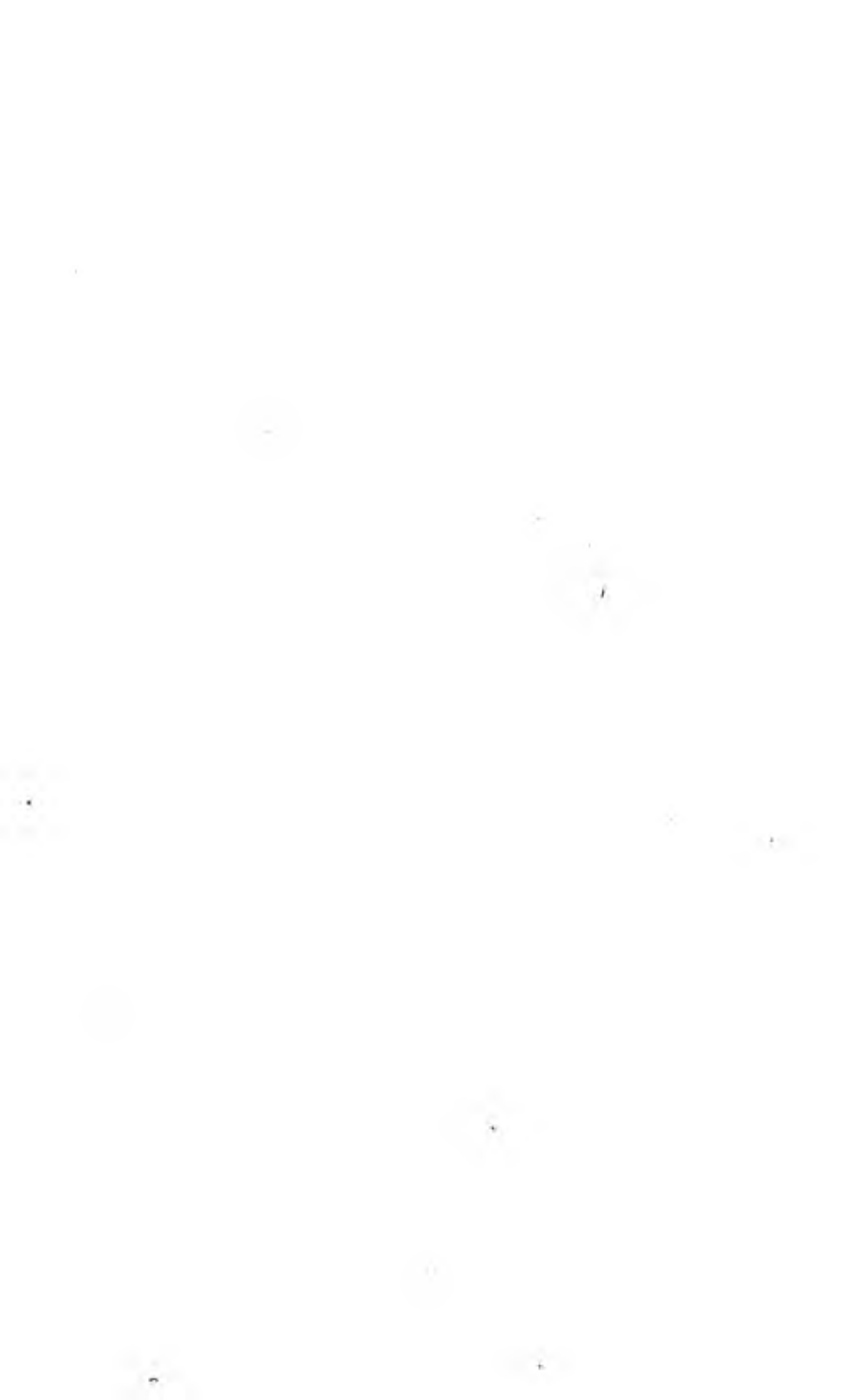
3. The third part of the paper discusses the question of the rights of the state. It is shown that the rights of the state are also not absolute, but are subject to the needs of the individual. The author argues that the state has a duty to protect the rights of the individual, but also to restrict them when necessary for the good of the community.

4. The fourth part of the paper discusses the question of the rights of the community. It is shown that the rights of the community are also not absolute, but are subject to the needs of the individual and the state. The author argues that the community has a duty to protect the rights of the individual and the state, but also to restrict them when necessary for the good of the community.

तृतीय अध्याय

विभिन्न संस्कारों सम्बन्धी
भूमि व भित्ति अलंकरण





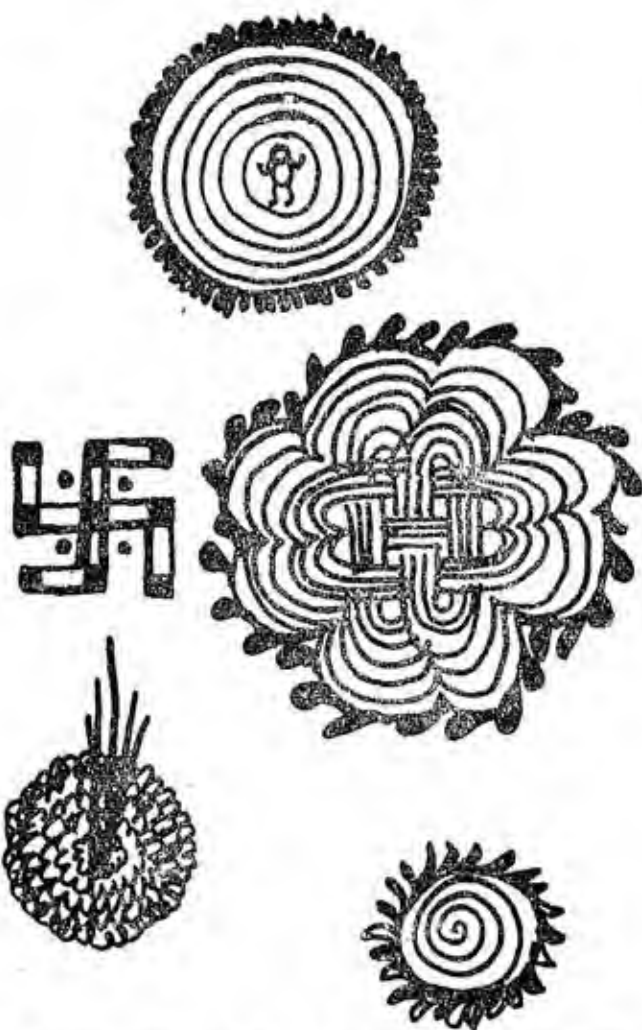
जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त होने वाले सांस्कृतिक लोकाचारों के उपलक्ष में बनाई जाने वाली लोक कलाकृतियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं। शिशु-जन्म से लोककला आरम्भ होती है। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत सन्तानोत्पत्ति एक पुण्य कार्य है जो प्रत्येक दम्पति के लिए, उसके लौकिक और पारलौकिक उद्धार के लिए आवश्यक है। ऐसी मान्यता है कि निम्नस्तान व्यक्ति का कभी उद्धार नहीं होता। वह संसार के बंधनों से बंधा रहता है। इसलिए बंध्या स्त्री एवं निर्बन्धी पुरुष की अवहेलना की गई है।

सन्तान में भी कन्या की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि वही पिण्डदान करता है। अतः उसका जन्म परिवार में हर्षोल्लास का कारण होता है। इस प्रकार पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य में तरह-तरह के भूमि, देहरी व भित्ति अलंकरण बनाये जाते हैं जिनको मान्य (सास, जिठानी, ननद, देवर आदि) ही बनाते हैं और नेगचार (भेंट, गिफ्ट) के अधिकारी होते हैं। इस समय गाये जाने वाले गीतों में स्पष्ट मालूम पड़ता है कि सास, जिठानी, ननद, देवर ही सबसे अधिक मान्य होते हैं।

यों तो अधिकतर भित्ति या भूमि पर अलंकरणों का बनाना जन्म व छठी के दिन से ही शुरू होता है परन्तु सर्वेक्षण के समय पता चला कि कानपुर के गुप्ता परिवारों में शिशु-जन्म से पहले ही सौर-गृह में भित्ति पर काजल से एक मानवाकृति बना देते हैं। कहीं-कहीं कान्यकुब्ज परिवारों में गेरू से दीवार पर चौक पूर कर जच्चा के हाथ से घी के छद्म धागे लगवाते हैं (अगर घी चूने लगता या बह जाता है तो लड़की अन्यथा जच्चा को पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है)। जन्म के समय लगभग सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में एक कलश में घरेलू औषधियों को गर्म जल में डालकर रखा जाता है जिसे लोक में चरुआ कहा जाता है। इस घड़े के ऊपर गोबर की उभरी हुई आड़ी-तिरछी, खड़ी कलात्मक रेखाएँ खींच दी जाती हैं। कहीं-कहीं उसमें जी भी लगा दिये जाते हैं। कहीं-कहीं उस पर हल्दी में हाथ ढुकाकर पूरे हाथ की छाप लगा दी जाती है, जिसे थापा कहते हैं। प्राचीन गुफाओं में भी थापों का अंकन प्राप्त हुआ है। सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में चरुआ रखने की प्रथा कुछ फेर-बदल के साथ विद्यमान है।

जन्मोत्सव के बाद दूसरा उत्सव छठी और दष्टीन का होता है। जच्चा को छठी पूजन के लिए पीले वस्त्र पहनाकर सौर-गृह से बाहर निकाला जाता है। ननद अथवा मान्य इस समय सौर-गृह के बाहर की भित्ति पर गोबर से स्वास्तिक व छबरिया बनाते हैं, जिसमें सवा रुपया भी लगाया जाता है। कहीं इन पर पाँच-पाँच सीकें लगाई जाती है तो कहीं-कहीं जी लगाये जाते हैं। कहीं-कहीं चूने की पुती दीवार पर हल्दी से भित्ति चित्रण किया जाता है (चित्र : ५८)।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के भोजपुरी क्षेत्र में छठी की छटा दर्शनीय होती है। इसमें स्त्रियाँ चावल के पीठे से गोबर से लिपी दीवार पर साठ लकीरें ऊपर से नीचे तक



चित्र ५८ : छठी पूजन । जन्म के छठे दिन भित्ति पर गोबर से बनाया जाने वाला अलंकरण । चित्र में स्वास्तिक के अलावा दिखने वाले चित्रों को छवरिया कहते हैं ।

बनाती हैं, इसके बाद उन लकीरों के बीच में साठ-साठ लकीरें खींचकर बरफी के आकार की जाली बनाती हैं तत्पश्चात् नीचे शिव की सात आकृतियाँ बनाई जाती हैं जो लोककला के उत्कृष्ट नमूने हैं (चित्र : ५९) । यहाँ पर छठी के दिन जौ के आटे से विभिन्न प्रकार के चौक बनाने की भी प्रथा है । पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भी चौक पूरने की प्रथा कहीं-कहीं पाई जाती है ।

अवधी क्षेत्र के एक परिवार से बिल्कुल नवीन कृति मिली। यहाँ पर दीवार को गेरू से लीपकर, चावल-हल्दी एक साथ पीसकर दो उँगली से चित्र को बनाते हैं। यह चित्र एक घर की आकृति होती है जिसके भीतर जच्चा सिंदूर से व बच्चा काजल से बनाया जाता है। जच्चा बच्चे सहित छठी के दिन नवीन पीले वस्त्र धारण कर इसकी पूजा करती है। ननद काजल लगाती है और उसे नेग दिया जाता है। सतिया (स्वास्तिक) भी धरने की प्रथा है।

उत्तर प्रदेश के कुमायूनी क्षेत्र में, बच्चे के जन्म से लेकर विवाह-संस्कार तक, गेरू से जमीन लीपकर सुंदर चौक चावल के पीठे द्वारा बनाने की परम्परा है जिनमें नवजात शिशु का प्रथम बार सूर्यदर्शन, अक्षर ज्ञान तथा उपनयन संस्कार के समय की चौकी का सौन्दर्य देखने योग्य होता है (चित्र : ६०)।

जीवन का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण संस्कार विवाह है। इस अवसर पर कन्या व वर पक्ष के घरों में खूब सजावटें होती हैं जोकि उत्तर प्रदेश में विभिन्न नामों से जानी जाती हैं। कुमायूनी में इसे 'ज्योति', पश्चिमी उत्तर प्रदेश में 'देवी-पितर' व 'बीजाबेल', रुहेलखण्ड में 'आकचाक', अवध में 'मांये', ब्रज में 'अमला', बायबंद व 'माये', अवधी व भोजपुरी में 'कोहवर' तथा बुंदेलखण्ड में 'देवी-देवता' कहते हैं (चित्र : ६१, ६२ व ६३)। नाम कुछ भी हों, पर यह वह कमरा होता है जहाँ विवाह के समय विभिन्न संस्कार किये जाते हैं। ज्योति, मांये, अमला व कोहवर अपने कलापक्ष द्वारा आपका मन मोह लेंगे। ज्योति, मांये, अमला, बायबंद, आकचाक तथा देवी-पितर कुल देवता के कमरे में बनाये जाते हैं, जो विवाह की रस्म का कमरा होता है। परन्तु 'कोहवर' इनसे संबंधा अलग है। 'कोहवर' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई, इस पर डा० विद्या बिन्दु सिंह ने अपने विचार 'रंगायन' में दिये हैं। 'कोहवर कन्नीजी, पूर्वी अवधी तथा भोजपुरी क्षेत्रों की विशेषता है। कोहवर से ही विवाह की रस्में प्रारम्भ होती हैं और यहीं समाप्त हो जाती हैं। यहीं देवस्थापना होती है, यहीं पर मातृका बेदी का आरम्भ होता है। इसी में आँधी-पानी तथा अन्य उत्पातों को विधिवत् आमंत्रित करके मिट्टी के पात्र में पीले वस्त्र से बन्द करके रख दिया जाता है और विवाह होने तक उनसे बाहर न निकलने की प्रार्थना की जाती है।

कोहवर को ऐसे स्थान पर पण्डित से शुभ साइत (शुभ समय) निकलवाकर बनाया जाता है, जहाँ सब लोग आते-जाते न हों और टोना-टोटका का कोई डर न रहे। कोहवर को प्रायः घर के पूर्वी भाग में पूर्वी दीवार पर बनाने का प्रचलन है। यह लड़की के यहाँ विविध वैवाहिक संस्कारों तथा लड़के के घर सुहागरात का भी कमरा होता है। महीनों पहले से लीप-पोत कर लड़के का घर सजाना आरम्भ हो जाता है। कहीं-कहीं तो पूरा कमरा ही चित्रित कर दिया जाता है। इसमें सभी देवी-देवता, पशु-पक्षी, सुहाग का सामान, केले, आम, सुपारी, अनार, कटहल आदि वृक्षों के फल सहित पुरइन (कमल) की बेल, पत्ते, विभिन्न प्रकार



चित्र ५६ : बंसिया जिले का कोहबर । चित्र में संख्या १ वाला अंश बौस का एक पेड़, संख्या २ वाला अंश पुरश्न (कमल), और संख्या ३ वाला अंश सोलह मातुकाएँ हैं । केवल मातुकाएँ गोबर से बनाई जाती हैं । शेष सारा चित्रण सफेद भित्ति पर विविध रंगों से बनाया जाता है ।

के सुंदर लुभावने पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र, तारे आदि बने होते हैं। भोजपुरी क्षेत्र में चित्रित कोहबर में पुरइन (चूड़ी के समान वृत्त बनाकर विभिन्न रंगों से भरते हैं) बहुत आवश्यक है (चित्र : ६४)। सोलह मातृकाओं को गोबर से बनाकर बीच में लगा देते हैं। कहीं-कहीं ज्यामितिक आकारों पर आधारित कोहबर को फूल-पत्तियों से भी सजाया जाता है (चित्र : ६५)। अन्दर ठीक बीचों-बीच स्थान पर गोबर से सोलह मातृकाएँ लगाई जाती हैं जिसकी पूजा दूल्हा व दुल्हन करते हैं और उस कोहबर पर अपना-अपना नाम लिख देते हैं। कहीं-कहीं कोहबर को बनाने वाली उसके आसपास रामायण की यह चौपाई भी लिख देती हैं : 'जब लग गंग जमुन जल धारा, अमर होई अहिवात तुम्हारा, सुखी रहे अहिवात तुम्हारा।' (जब तक गंगा यमुना में जल है, तब तक तुम्हारा सुहाग रहे, तुम्हारा पति सुखी रहे।)

यहाँ पर विवाह के समय गाये जाने वाले गीतों से मालूम होता है कि शायद कभी वरवधू का प्रथम मिलन कन्या के घर में ही होता था। इस प्रथा को मैंने उत्तर प्रदेश में तो नहीं परन्तु एक राजपूत परिवार में अजमेर में देखा था। कन्या पक्ष के कोहबर घर में जूता चुराने, जलते हुए दीपकों की बत्तियों को आपस में मिलाने, एक-दूसरे का झूठा पान खिलाने, जुआ खिलाने, मोर को सिर पर से उतारने व दरवाजे पर रोकने आदि की रस्में साली-सलहजों की मीठी मनुहार के साथ समाप्त होती हैं। लड़के के यहाँ इसी कोहबर घर में वधू का कँगन खोला जाता है। विवाह के समय विभिन्न अवसरों के गीतों से यह कमरा गूँजता रहता है। इस तरह विवाह के आरम्भ से लेकर अन्त तक यह सजा-सँवरा कमरा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

कोहबर के चित्र की कल्पना विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न है। कहीं कोहबर के चित्र के भीतर तीन मातृकाएँ, कहीं बारह, तो कहीं सोलह बनाई जाती हैं। इसी तरह कोहबर किसी जाति में गोबर व गेरू व हल्दी से, तो किसी में केवल गेरू, तो किसी में विभिन्न रंगों से बनाये जाते हैं। कन्नौजिया ब्राह्मणों के यहाँ की स्त्रियाँ इसके चित्रण में अधिक निपुण दिखाई पड़ीं। बाजे-गाजे के साथ जाना, दूल्हा व दुल्हन का पालकी में बैठे हुए आना तथा विभिन्न देवतागण का आशीर्वाद देने के हाव-भाव ये स्त्रियाँ कोहबर में बहुत ही सुंदरता के साथ चित्रित करती हैं (चित्र : ६६ रंगीन, ६७ व ६८)।

भोजपुरी व बुंदेलखण्डी घरों में भीतर के साथ-साथ बाहर भी पर्याप्त चित्रण किया जाता है। प्रत्येक घर के मुख्य द्वार के ऊपर विघ्ननिवारक गणेश जी रिद्धि-सिद्धि तथा मूषक के साथ पहरा देते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। मुख्यद्वार के दोनों ओर मंगलकलश लिए सुंदरियाँ, राम नाम या तलवार लिए रक्षक, घोड़े, हाथी या ऊँट पर सवार लोग, बाजा बजाते हुए लोग तथा स्त्रियों के झुंड, विभिन्न पक्षी-तोता, मोर, पशु आदि चित्रित मिलेंगे। कहीं-कहीं जातिगत व्यवसायों के अनुसार भी बाहर चित्रण मिलेगा। फूल-पत्तियों से भरे गमले व सुंदर-सुंदर रंग-बिरंगे

फूलों व पत्तियों से चित्रित बार्डर व लताएँ भी देखने का सर्वत्र मिलती हैं। फूल-पत्तियों पर आधारित बेलों से उत्तर प्रदेश के अन्य क्षेत्र भी विवाह के समय यदा-कदा अपने घरों को सजा ही लेते हैं परन्तु विशेषता यह है कि भोजपुरी व बुंदेली क्षेत्रों में इसका आधिक्य है (चित्र : ६६, ७०, ७१, ७२ व ७३)।

इस प्रकार घर के भीतर तथा बाहर की भित्तियों पर चित्रण के साथ-साथ विवाह के कुछ रीति-रिवाजों पर भूमि-अलंकरण भी किया जाता है जिसमें द्वारचार, जयमाला के समय के स्थान, वेदी का स्थान, लकड़ी की चौकी (जिस पर वर-वधू, शादी के समय बैठते हैं), कुमार्पुनी क्षेत्रों में शादी का चौक (जिसके ऊपर खड़े अथवा बैठकर कुछ रस्में पूरी की जाती हैं), लड़की के विदाई के समय स्वास्तिक को देहरी पर बनाना, वधू के आगमन पर मुख्य द्वार से देवता के कमरे तक के स्थान का चित्रण अथवा वधु-मान्य द्वारा मुख्य द्वार के बाहर दरवाजे के दोनों ओर की भित्तियों पर गेरू अथवा ऐंपन द्वारा चित्रण करना सम्मिलित है। यहाँ पर उदाहरणस्वरूप कुछ चित्र उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों के दिये जा रहे हैं (चित्र : ७४, ७५, ७६ व ७७)।

इन अवसरों पर बनाये जाने वाले चित्र कुमार्पुनी क्षेत्रों में गेरू से लीपकर चावल के पीठे से तथा अन्य भागों में चावल के पीठे, ऐंपन या गेरू से बनाये जाते हैं। इस अवसर पर भित्ति अथवा देहरी का चित्रण रोली (हल्दी व चूना मिलाकर) गेरू या हल्दी से किया जाता है।

विवाह के अवसर पर वेदी को खूब सजाया जाता है जिसमें चित्रित घड़ों की भी स्थापना होती है (चित्र : ७८)। केले के तनों से वेदी का निर्माण किया जाता है तथा उसके चारों ओर से फूलों, फलों, मिट्टी, लकड़ी व कपड़ों के बने खिलौनों से विभिन्न प्रकार से सजाया जाता है। वेदी की भूमि को भी अनेक प्रकार की दातों, आटा, हल्दी, जौ तथा विभिन्न प्रकार की रंग-बिरंगी मिट्टी से नवग्रह, सर्वतोभद्र व तंत्र पर आधारित चौकों से सजा दिया जाता है। फूल-पत्तियों पर आधारित बेल-बूटे भी आप भूमि पर पायेंगे परन्तु वेदिका भूमि को सजाने का कार्य प्रायः पण्डित ही करते हैं जो विवाह-संस्कार कराते हैं।

जीवन का अन्तिम संस्कार मृत्यु है जिस पर भी हिन्दू लोग (जहाँ पर मृतक लेटा होता है) ओ३म्, स्वास्तिक, चौक अथवा राम-नाम सत्य है लिख देते हैं। मृतक के सिरहाने दीपक जलाकर रखने की भी प्रथा है।

भूमि व भित्ति चित्रण में स्थान विभाजन

भित्ति चित्रण अधिकतर घरों के अंदर पूर्वी दीवार पर बनाने की प्रथा है। चित्र में सबसे अधिक व बीच का स्थान तपोहार सम्बन्धी मुख्य आकृति को मिलता है। यह आकृति चाहे कोहवर की दुल्हन-दुल्हा अथवा केवल दुल्हन, या फिर मातृकाओं के रूप में करवा चौथ में वर के रूप में, अहोई अष्टमी में स्याऊ माता

हर छठ में छड़ी माता, दीपावली में गणेश-लक्ष्मी, नागपंचमी में नाग और सरमन में श्रवण कुमार के रूप में ही सदैव बड़ी बनाई जाती हैं ताकि देखते ही फीरन उस त्यौहार को समझा जा सके। यही स्थान-विभाजन का सिद्धान्त भूमि-अलंकरण में भी क्रियात्मक होता है।

स्थान के साथ जहाँ चित्र रंगीन बनते हैं, भित्ति अलंकरण में वहाँ रंगों का चुनाव भी इसी के आधार पर किया जाता है। मुख्य आकृति अधिक चटकीले व अन्य चित्रित वस्तुओं अथवा आकृतियों से अलग रंग-योजना के साथ बनाई जाती है (चित्र : ७६ रंगीन)।

रंग-योजना

उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग के कुमायूनी क्षेत्र में अधिकतर चित्रण गेरू से लीपकर चावल के ऐपन, पीठे से किया जाता है। ज्योति (विवाह के समय बनाये जाने वाले चित्र) तथा रसोई घर के चित्रण क्रमशः रंगीन (पीला, लाल, भूरा, नीला) अथवा गेरू से सफेद भित्ति पर बनाये जाते हैं। खड़ी बोली वाले क्षेत्र में अर्थात् हरिद्वार के दक्षिण से ब्रजभूमि तक, भूमि अलंकरण भूमि को गोबर से लीपकर अथवा चावल के पीठे (ऐपन) व गेरू से तथा भित्ति-अलंकरण में अहोई व दीपावली को छोड़कर (जो रंगीन बनाये जाते हैं) शेष सभी चावल के पीठे अथवा ऐपन (चावल व हल्दी अथवा मैदा व हल्दी) से गोबर से लीपने के बाद तथा पत्तियों से हरा बनाने के बाद बनाये जाते हैं। कभी-कभी सफेद भित्ति पर गेरू से तथा कभी-कभी विभिन्न रंगों से भी बनाये जाते हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ब्रज क्षेत्र में अहोई व दीपावली अधिकतर रंगों से बनाई जाती हैं। चतुर्वेदी परिवारों की अमला (विवाह के समय की चित्रकारी) में सभी रंग बहुत सुंदरता के साथ प्रयोग किये जाते हैं। काले रंग को यह लोग अशुभ नहीं मानते। पश्चिमी क्षेत्र के अन्तर्गत रहेली क्षेत्रों में भी उपरोक्त तीन त्योहार ही रंगों से बनाये जाते हैं। कभी-कभी करवा चौथ भी रंगीन दिखाई पड़ेगी। शेष सभी भित्ति व भूमि अलंकरण चावल के पीठे, गेरू या ऐपन से बनाये जाते हैं। सभी जगह नागों का चित्रण काले रंग द्वारा होता है जो विभिन्न प्रकार से तैयार किया जाता है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के अवधी, कन्नौजी, भोजपुरी व बुंदेली भाषा-भाषी क्षेत्रों में भूमि अलंकरण चावल के पीठे, ऐपन व गेरू से बनाये जाते हैं। ये चित्रण या तो भूमि को धोकर या फिर गोबर से लीपकर उस पर बनाये जाते हैं। भित्ति अलंकरण अवश्य अधिकाधिक रंगीन बनाये जाते हैं। घर के बाहर व भीतर सर्वत्र रंग ही रंग बिखरे हुए पावेंगे। अहांई व करवाचौथ का व्रत अपने पूर्ण महत्व के साथ पश्चिमी, अवधी प्रदेश तक ही चलता है पर कहीं-कहीं आप पूर्वी उत्तर प्रदेश में भी देख सकते हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश में अधिकतर चित्र रंगों से बनाते हैं। कुछ चित्र चावल के पीठे व ऐपन और सिंदूर से भी बनाये जाते हैं। विवाह के समय के

कोहबर के चित्र घरों के भीतर गेरू अथवा रंगों से बनाये जाते हैं तथा घर के बाहर के चित्र गणेश जी, रिद्धि-सिद्धि तथा वरातीगण आदि केवल रंगों से ही बनाये जाते हैं, जो अत्यधिक रुचिकर एवं दर्शनीय हैं। बहुरंगी भूमि-अलंकरण अपनी अनोखी कला में बुंदेलखण्ड की धरती पर अधिक दृष्टिगत होते हैं, जोकि वहाँ की किशोरियों की कलात्मक प्रवृत्ति को दर्शाते हैं। यहाँ स्त्रियों द्वारा बनाये जाने वाले भूमि-अलंकरण होली के चौक को छोड़कर (जो रंगीन गुलाल के होते हैं) चावल के पीठे, गेरू अथवा ऐपन से बनाये गए मिलेंगे।

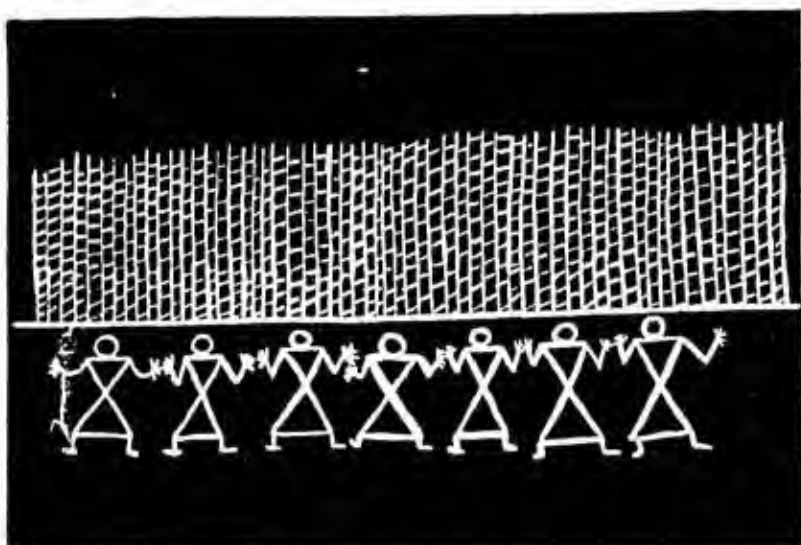
अमला व कोहबर की रंग-योजना अपने में अनुपम है। सभी रंगों का प्रयोग काले सहित लोग करते हैं। यह रंग-योजना चतुर्वेदी तथा कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के स्त्री-समुदाय की निपुणता की परिचायक है।

भित्ति व भूमि अलंकरण के रूप में चित्रित वस्तुएँ

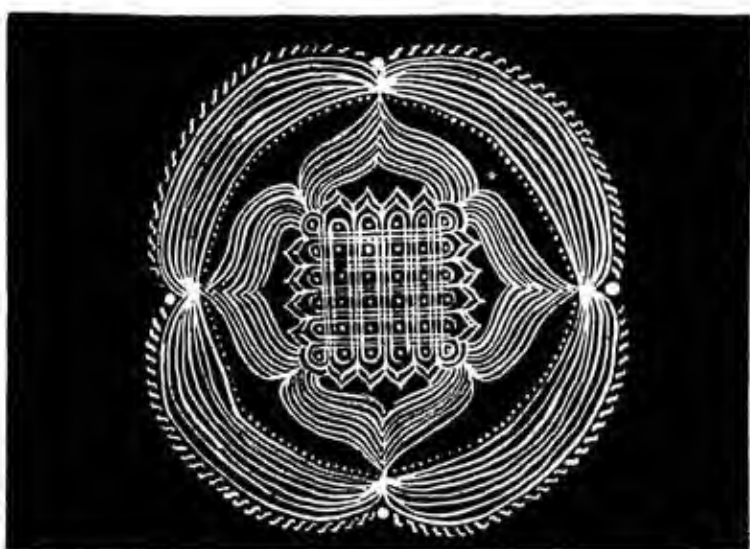
ब्रह्मा, शिव, विष्णु, सरस्वती, दुर्गा व लक्ष्मी, गणेश, राम, श्रीकृष्ण, बलराम, राधा-सीता-दुर्गा के अनेक रूप, सोलह तथा सप्त मातृकाएँ, गंगा-यमुना, स्वास्तिक, स्याऊ, मोर, तोता, सूर्य, चन्द्र, तारे, हाथी, घोड़ा, ऊँट, साँप, बिच्छू, कातर (कानखजूरा), मौली-मालिन, धोबी, कुम्हार, वारिन, नाऊ, मेहतरानी, पंखा, सीढ़ी, कखे (टोटी वाले घड़े लघु आकार के), शृंगार का सामान, फल, फूल आदि सभी का चित्रण, जोकि उत्सव-विशेष से सम्बद्ध होता है, किया जाता है। सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में उपरोक्त सभी वस्तुओं का चित्रण स्थानीय कला विशेषताओं के साथ होता है। मोर पश्चिम तथा तोता पूर्व का अत्यंत लोकप्रिय पक्षी है। तुलसी का विरवा (पौधा) तथा बट-वृक्ष पश्चिम का और सुपारी, वाँस, केले के वृक्ष तथा पुरइल (कमल) की बेल का चित्रण पूर्व के लोकप्रिय विषय हैं। शिव, दुर्गा, गणेश, लक्ष्मी व विष्णु सभी के प्रिय हैं। राम व कृष्ण का पूजन क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ अधिक या कम है। इसके अतिरिक्त देवरानी, जिठानी, बच्चे, भाई-बहन तथा दैनिक प्रयोग की आवश्यक वस्तुएँ (शाड़ू, पीड़ा, सूप) व गृहस्थ धर्म को चलाने में अपना अमूल्य सहयोग देने वाले आवश्यक अंग, नाऊ, वारिन, धोविन, कहार मल्लाह, मेहतरानी आदि सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में स्थानीय विशेषताओं के साथ चित्रित किये जाते हैं।

चित्रण-विधि तथा प्रयुक्त रंग

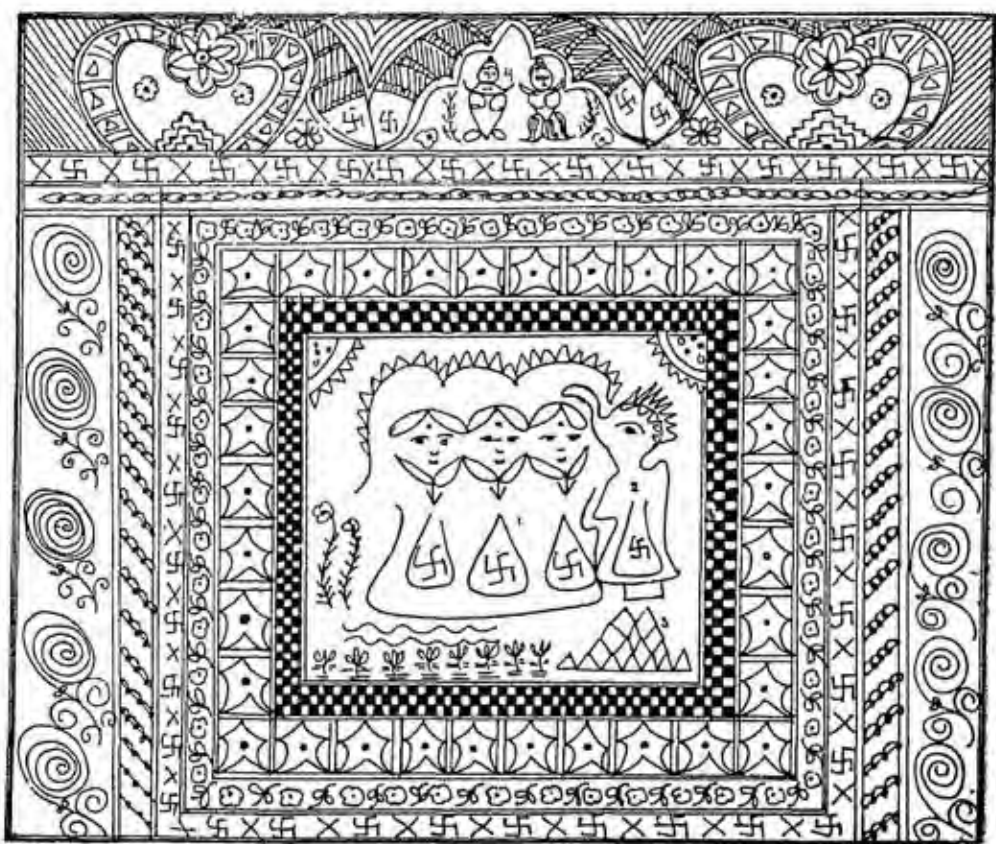
कुमार्युनी क्षेत्र में भूमि अलंकरण गेरू से लीपकर चावल के पीठे से बनाये जाते हैं और भित्ति अलंकरण सफेद भित्ति पर गेरू अथवा काले, लाल, पीले, नीले व सफेद रंग से बनाये जाते हैं। काले रंग को चावल जलाकर दूध में घिसकर बनाते हैं; सफेद, चावल के पीठे से; लाल, गेरू से; पीला, पेवड़ी या हल्दी से; नीला, नील से व हरा रंग पत्तियों को कूट-छानकर बनाते हैं अथवा पेवड़ी और नील को आपस



चित्र ५६ : छठी पूजन । भोजपुरी क्षेत्र का भित्ति चित्रण । इसे स्त्रियाँ गोबर से लिपी दीवार पर बनाती हैं । सात आकृतियाँ शिव का प्रतीक हैं ।

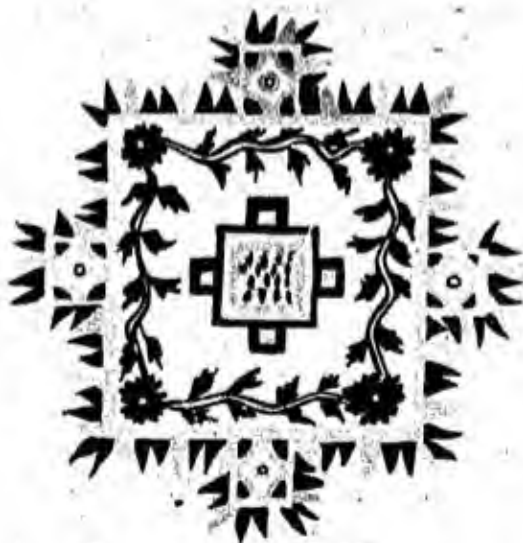


चित्र ६० : शिशु-संस्कार से सम्बन्धित एक चोकर । यह कुमाऊँ क्षेत्र का भूमि चित्रण है ।



चित्र ६१ : ज्योति । कुमाऊँ क्षेत्र का विवाह के समय का रंगीन मिलि चित्रण । चित्र में संख्या १ तीन मातृकाएँ, संख्या २ गणेश, संख्या ३ पोडश मातृकाएँ और संख्या ४ राधा-कृष्ण का प्रतीक हैं ।

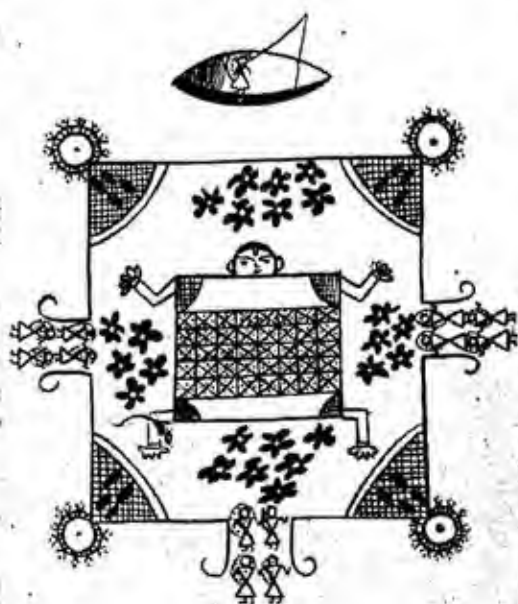
चित्र ६२ : मयि।
 चतुर्वेदी ब्राह्मणों द्वारा
 भादी के अवसर पर
 बनाया जाने वाला
 भित्ति चित्रण। इसे
 चूने से पुरती दीवार
 पर हल्दी या गेरू से
 बनाया जाता है।



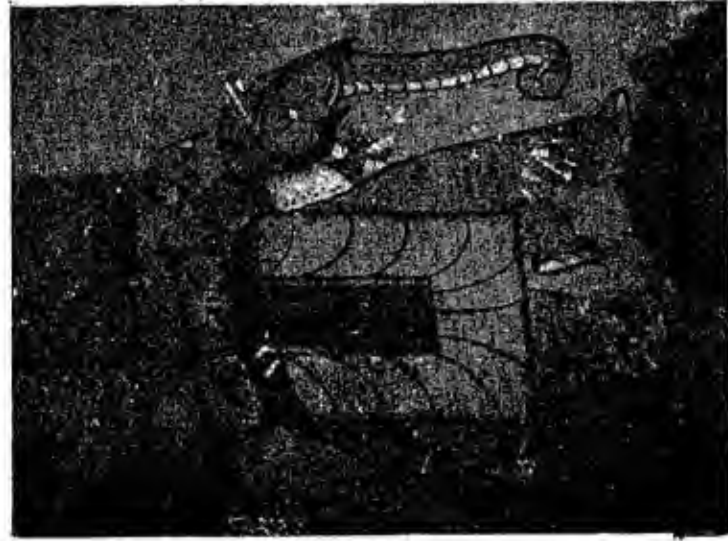
चित्र ६५ : कोहबर। भोजपुरी क्षेत्र का विवाह के अवसर पर भित्ति चित्रण। इसे रंगों से
 बनाया जाता है। मध्य भाग में सोलह मातृकाएँ गोबर से बनती हैं।



चित्र ६६ : बनारस के एक घर के दरवाजे के ऊपर बना हुआ विवाह सम्बन्धी मूर्ति चित्रण॥



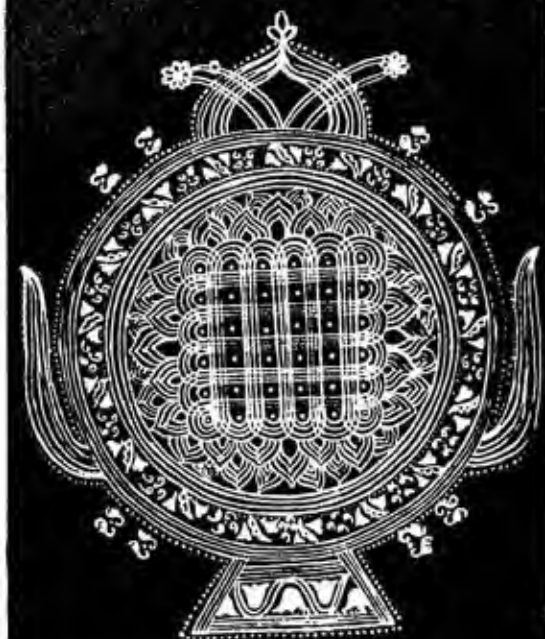
चित्र ६७ : इलाहाबाद के कायस्थ परिवार का कोहबर। इसे गेरु से बनाते हैं। चारों कोनों पर चार-चार मातृकाएँ हैं।



चित्र ७० : विवाह के अवसर का रंगीन भित्ति चित्रण (बनारस)



चित्र ७१ : विवाह के अवसर का रंगीन भित्ति चित्रण ।



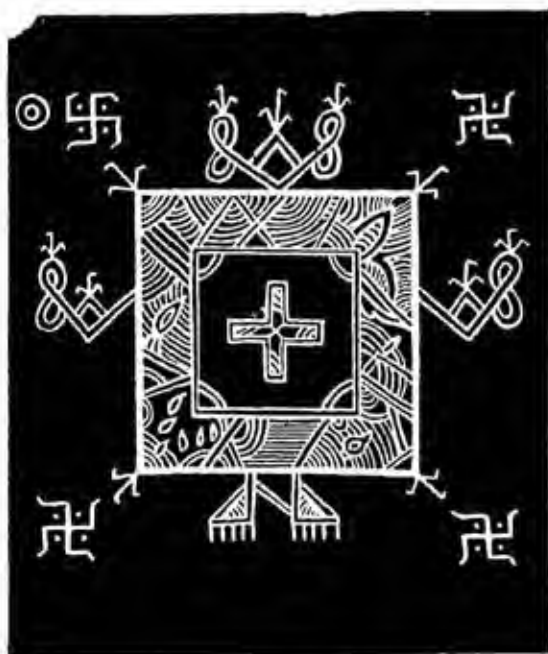
चित्र ७४ : विवाह का चौक । कुमाऊँ क्षेत्र का भूमि चित्रण । इसे चावल के पीठे से बधु के घर में बनाने की प्रथा है ।



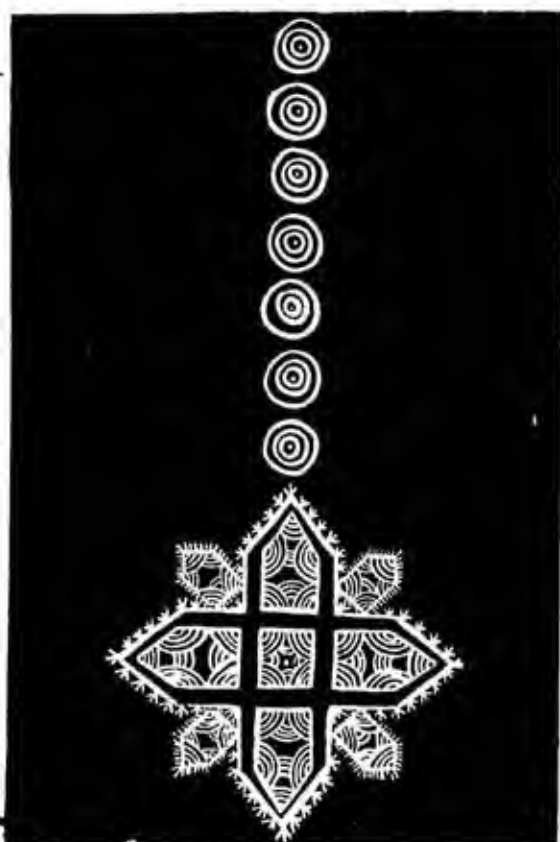
चित्र ७५ : विवाह का चौक । कुमाऊँ क्षेत्र का बधु के घर का भूमि चित्रण ।



चित्र ७८ : शादी के अवसर पर बहनों की सज्जा । यह प्रथा सभी जातियों में प्रचलित है ।



चित्र ७६ : शादी का
बीक। भार्यव जाति का
भूमि चित्रण। इसे वधु
के घर में बनाने की प्रथा
है।



चित्र ७७ : शादी का
बीक। श्वेताम्बर अनियों
में वर के घर का भूमि
चित्रण।

में मिलाकर। मथुरा में चतुर्वेदी लोग गेहूँ का जलाकर, फिर पीसकर दूध के साथ मिलाकर बनाते हैं। गेरू का यह लोग प्रयोग कम करते हैं। इसके स्थान पर सफेद चूने से भित्ति को पोतकर हल्दी के घोल से चित्रण करते हैं जो चूने के संपर्क में आते ही गेरू जैसे रंग में बदल जाता है। होली के चीक बनाने में विभिन्न रंगों के गुलाल का प्रयोग करते हैं।

खड़ी बोली व रूहेली भाषा-भाषी क्षेत्र में काला रंग कोयले को दूध में घिसकर तैयार किया जाता है जोकि नारंगपंचमी व कृष्ण जन्माष्टमी के चित्रण में अधिकतर प्रयोग में लाया जाता है। पूर्वी क्षेत्रों में काले रंग को नारियल की जटा जलाकर, फिर पीसकर, दूध में घोलकर बनाते हैं।

भित्ति-चित्रण में सफेद रंग पश्चिमी क्षेत्रों में चावल के पीठे व खड़िया मिट्टी तथा पूर्वी क्षेत्रों में चूने व चावल के पीठे से तैयार किया जाता है। इसी तरह पूर्वी क्षेत्रों में भूमि-चित्रण में गेहूँ के आटे के स्थान पर जौ का आटा प्रयोग में लाते हैं।

सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में पीला रंग, पलाश के फूल, हल्दी के घोल अथवा पेवड़ी (एक प्रकार की पीली मिट्टी) से तैयार किया जाता है। लाल रंग के लिए महावर का गुलाबी रंग, सिंदूर, गेरू, नीले रंग के लिए नील, भूरे रंग के लिए कल्था तथा हरे रंग के लिए मेंहदी की पत्तियाँ अथवा भूली-पालक की पत्तियों का प्रयोग में लाते हैं।

रंग बनाने की विधि

सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में रंग बनाने की विधि एक समान है। यदि उन्हें सफेद रंग खड़िया या चूने से तैयार करना है तो उसे कुछ घंटों पहले थोड़े पानी में डाल देते हैं जिससे वह घुल जाये। जब वे घुल जाते हैं तब उसे महीन कपड़े में छान लेते हैं और शीशे अथवा मिट्टी के सकोरे में रख लेते हैं। फिर आवश्यकतानुसार पानी डालकर रंग के घोल को चित्रण हेतु तैयार कर लेते हैं।

हरे रंग के लिए भूली-पालक की पत्तियों को सिल पर पीस कर छान लेते हैं तथा उसमें बहुत थोड़ी-सी खड़िया मिट्टी अथवा चूना मिला देते हैं जिससे घोल गाढ़ा हो जाता है। कभी-कभी छने हुए रंग में थोड़ा-सा दूध मिलाकर चित्रण करते हैं।

पीले रंग के लिए हल्दी को कूटकर पानी में उबाल लेते हैं, फिर छाज पर रख देते हैं। इसी तरह पीले रंग के लिए पलाश के फूलों को भी उबालकर रंग तैयार करते हैं। चित्रण करते समय थोड़ा-सा दूध चमक लाने के लिए अवश्य मिला लेते हैं।

नीला रंग नील की पत्तियों को उबालकर अथवा नील का पाउडर खरीदकर, उबालकर, छानकर तैयार करते हैं। चूने या खड़िया मिट्टी को मिलाकर हल्के व गहरे रंग का नीला रंग तैयार कर लिया जाता है।

भूरा रंग कल्थे को उबालकर तैयार किया जाता है। लाल रंग को गेरू, मिट्टी,

सिंदूर, हिंगल से तैयार किया जाता है। रंग बनाने की विधि गेरू को छोड़कर सबकी एक समान है। गेरू को केवल थोड़े से पानी में भिगोकर प्रयोग में लाया जा सकता है।

प्रायः सभी लोक कलाकार रंगों में चमक व स्थायित्व लाने के लिए, दूध अथवा गोंद की कुछ मात्रा रंग में मिला देते हैं। रंग बनाने के अन्य द्रव्य लाक्षा, लोध, सुवर्ण, रजत, ताम्र, अन्नक, राजवर्त, रांगा, हरिताल आदि हैं। इनसे भी विभिन्न रंग तैयार किये जाते हैं परन्तु अब इनसे रंग बनाने का प्रचलन बहुत ही कम है।

समस्त उत्तर प्रदेश में जब भी कोई त्यौहार आरम्भ होता है, भित्ति पर तब त्यौहार सम्बन्धी चित्र की बाह्य रेखाएँ सर्वप्रथम खींच ली जाती हैं। एक मोटे धागे को चावल के पीठे अथवा गेरू में डुबोते के बाद खाका खींचते हैं। यही धागा उनके लिए पैमाने का काम देता है। खाका खींचने के बाद चित्र की मुख्य चीज का सबसे बड़े आकार में अंकन होता है। इसके बाद अन्य सम्बन्धित वस्तुओं का अंकन होता है। जिन चित्रों में सूर्य तथा चन्द्रमा बनाये जाते हैं उनमें पहले सूर्य व चन्द्र ही बनाये जाते हैं, इसके बाद मुख्य विषय, फिर अन्य वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

चित्रण करने के लिए भूमि पर अँगूठे व उसके बाद की दो अँगुलियों का प्रयोग किया जाता है। रूई का छोटा-सा फाहा या फिर कोई छोटा-सा कपड़े का टुकड़ा लेते हैं तथा उसको पीठे, ऐपन, गेरू के घोल में डुबोते हैं और उसके बाद अँगूठे व अँगुलियों के बीच दबाकर प्रयोग में लाते हैं। भित्ति-चित्रण के लिए किसी भी सीक या बाँस की पोरी में रूई बाँधकर कुँची की तरह बनाकर भी प्रयोग में लाते हैं।

हमारे कुछ पर्वों में मिट्टी या गोबर की गौर बनाई जाती है। गोबर से गोवर्द्धन व भाई दूज के चीक भी बनाये जाते हैं तथा होली की बरगुलिया भी। साँझी व संजिया देवी को गोबर व मिट्टी से ही बनाते हैं। पिडिया, सिमरा-सिमरी तथा नीराते में भी स्थानीय मिट्टी का प्रयोग होता है।

विशेष—आज के आधुनिक युग में रंगों को लोगों ने प्राचीन ढंग से बनाना छोड़ दिया है। अधिकतर चित्र खड़िया मिट्टी, गेरू तथा विभिन्न रंगों के पोस्टर कलर से बनाये जाने लगे हैं। रंग-विरंगी मिट्टी व भूमि के रंग तथा गुलाल बाजारों में सरलता से मिल जाते हैं। रूई के स्थान पर ब्रुश प्रयोग में लाये जाने लगे हैं। अधिकांश जनता ने चित्रण को कागज पर बनाना आरम्भ कर दिया है अथवा बाजार से चित्र मँगाकर पूजा करना उचित समझने लगे हैं। इसलिए भित्ति चित्रण की यह परम्परा धीरे-धीरे धूमिल होती जा रही है।

कुछ तथ्य

सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश के विभिन्न भूमि व भित्ति-अलंकरणों का अध्ययन करने से कुछ तथ्य सामने आते हैं, जो निम्नलिखित हैं :

१) पुरुष व स्त्री की आकृति का चित्रण उत्तराखण्ड से लेकर बुंदेलखण्ड तक के क्षेत्र में अपने-अपने ढंग से किया जाता है (चित्र : ८० क व ख) ।

२) चन्द्रमा व सूर्य की विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ लोकचित्रों में देखने को मिलती हैं। चतुर्वेदी (कुलीन) परिवारों के यहाँ चित्रित सूर्य और चन्द्रमा में सीरियन कला का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कहीं चन्द्रमा की आकृति गोलाकार, कहीं अर्द्धचन्द्राकार तथा कहीं एक लाइन से चित्रित की जाती है। सूर्य को सदैव ही गोलाकार रूप में प्रस्तुत किया जाता है (चित्र : ८१) ।

३) स्वास्तिक के दोनों रूपों का चित्रण शुभ माना गया है। स्वास्तिक के वामावर्त अर्थात् दायें से बायें रूप का चित्रण आप चतुर्वेदी (कुलीन) तथा भार्गव जाति में विशेष रूप से पायेंगे। जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय यह जातियाँ बाहर से आई हैं। अन्य सभी जातियों में स्वास्तिक का दक्षिणावर्त वाला रूप ही प्रचलित है।

स्वास्तिक पर आधारित चीकों में भी आप मनोहारी विविधता पायेंगे (चित्र : ८२) ।

४) पशु-पक्षी चित्रण ही लोक कलाकारों को अधिक प्रिय हैं। इनके चित्रण में भी विविधता है (चित्र : ८३) ।

५) अहोई अष्टमी (आठें) के उपलक्ष्य में स्याहू का चित्रण भी लोक कलाकारों ने विभिन्न रूपों में किया। नागपंचमी पर बनाये जाने वाले नागों के चित्रण भी विविधता लिए हुए हैं (चित्र : ८४) ।

६) देवउठान एकादशी तथा लक्ष्मीपूजा (दीपावली) के समय चित्रित किये जाने वाले चरणों को भी लोक कलाकारों ने कहीं खड़ाऊँ के रूप में, कहीं विभिन्न भाकारों के चरणों के रूप में चित्रित किया है। इनको पत्निया, चरण, गोड़िया व खड़ाऊँ कहते हैं (चित्र ८५) ।

७) रक्षाबन्धन के समय चित्रित होने वाले सोन/सोना/सरमन भी विभिन्न रूपों—नाव, थवणकुमार, पिड़िया, चौक, अटेरन, पीड़ा, स्वास्तिक व राखी आदि—में देखने को मिलते हैं (चित्र : ८६) ।

८) दीपावली, अहोई अष्टमी तथा साँझी के समय चित्रित की जाने वाली चौपड़ अपने विविध रूपों में इन लोकचित्रों में मिलती हैं (चित्र : ८७) ।

९) साँझी, संजिया अथवा विवाह के समय के भित्ति-चित्रण में चित्रित पंखों की विविधता देखते ही बनती है। देवउठान के समय बच्चों के खिलौनों का चित्रण भी दर्शनीय है (चित्र : ८८) ।

१०) कमल पर आधारित चौक—जो पंचदल से लेकर सहस्रदल के रूप में होते हैं—उत्तर प्रदेश में चार, पाँच, छह, आठ, बारह, सोलह, चौबीस आदि दलों में अधिक चित्रित किये जाते हैं। उनके विभिन्न रूप चित्र संख्या ८९ को देखिए ।

११) भूमि पर चौक अथवा भित्ति पर कथा चित्रित करते समय विभिन्न प्रकार के आयत, वर्ग, त्रिभुज व वृत्त आदि बनाये जाते हैं तथा उनको विभिन्न प्रकार के आड़ी, पड़ी, तिरछी, लहरदार व घुमावदार रेखाओं, विभिन्न आकार के बिन्दुओं, त्रिभुजों, शंख आदि के आकारों, फूलों, पत्तियों आदि से बार्डर अथवा बेल के रूप में सजाया जाता है, अथवा चौक के खाली स्थानों को भरा जाता है। चौक को बनाने के बाद विभिन्न प्रकार के कंगूरे बनाकर सजाया जाता है। चौक की ही तरह भित्ति-चित्रण को विभिन्न प्रकार के कंगूरों से सजाया जाता है, जो प्रायः चारों कोनों — हाथ व पैर के जोड़, ओढ़नी व चौकी के चित्रण करने में प्रयोग में लाये जाते हैं। (देखिए चित्र संख्या ६०, ६१, ६२, ६३, ६४ व ६५)।

१२) भूमि और भित्ति पर बनाये जाने वाले चौक, जो केवल बिंदु व रेखाओं पर आधारित होते हैं, कुमायूँनी क्षेत्र में 'बारबूंद' तथा बुंदेलखण्ड में 'रंगोली' कहलाते हैं। ये चित्र अपने बनाने के ढंग में महाराष्ट्र की रंगोली व दक्षिण के कोलम से साम्यता रखते हैं (चित्र : ६६)।

१३) इसके अतिरिक्त गंगा-यमुना, सुपारी, खजूर का पेड़, धनुष-वान आदि का भी चित्रण लोक कलाकारों ने विभिन्न रूपों में किया है (चित्र : ६७)।

पाव-टिप्पणियाँ

१. एक जच्चा अपने पति को समझाते हुए कहती है—

- (अ) सबको बुलाना मेरे साजना—आज नन्दलाला हुए।
 आवे जो सास तो करवा धराना,
 साकिट जो माँगे दे डालना—आज नन्दलाला हुए।
 आवे जो जिठानी तो पिपली पिसाना,
 कंगन जो माँगे दे डालना—आज नन्दलाला हुए।
 आवे जो ननदी तो सतिया धराना,
 टीका जो माँगे दे डालना—आज नन्दलाला हुए।
 आवे जो देवर तो बंसी बजवाना,
 घड़ी जो माँगे दे डालना—आज नन्दलाला हुए।
 आवे जो सखियाँ तो मंगल मनाना,
 मोती की लड़ियाँ लुटाना—आज नन्दलाला हुए।

दूसरी जच्चा अपने पति से कहती है—

- (ब) बलम हम क्यूँ का बुलावे न जइबा,
 सासू जो आवे तो करवा धरिबे,
 वे नेगवार मंगवे हम देवे न करवा,
 रिसाई जती जइ बार मनाने ना करवा—

पहले गीत की तरह सभी के नाम उपरोक्त कड़ी के साथ-साथ जोड़ दिए जाते हैं।

दोनों ही गीतों के भाव में अन्तर है परन्तु दोनों में ही सात-जिठानी, ननद, देवर ही पुन-जन्म पर रस्मों की निबाहने वाले हैं और मान्य हैं।

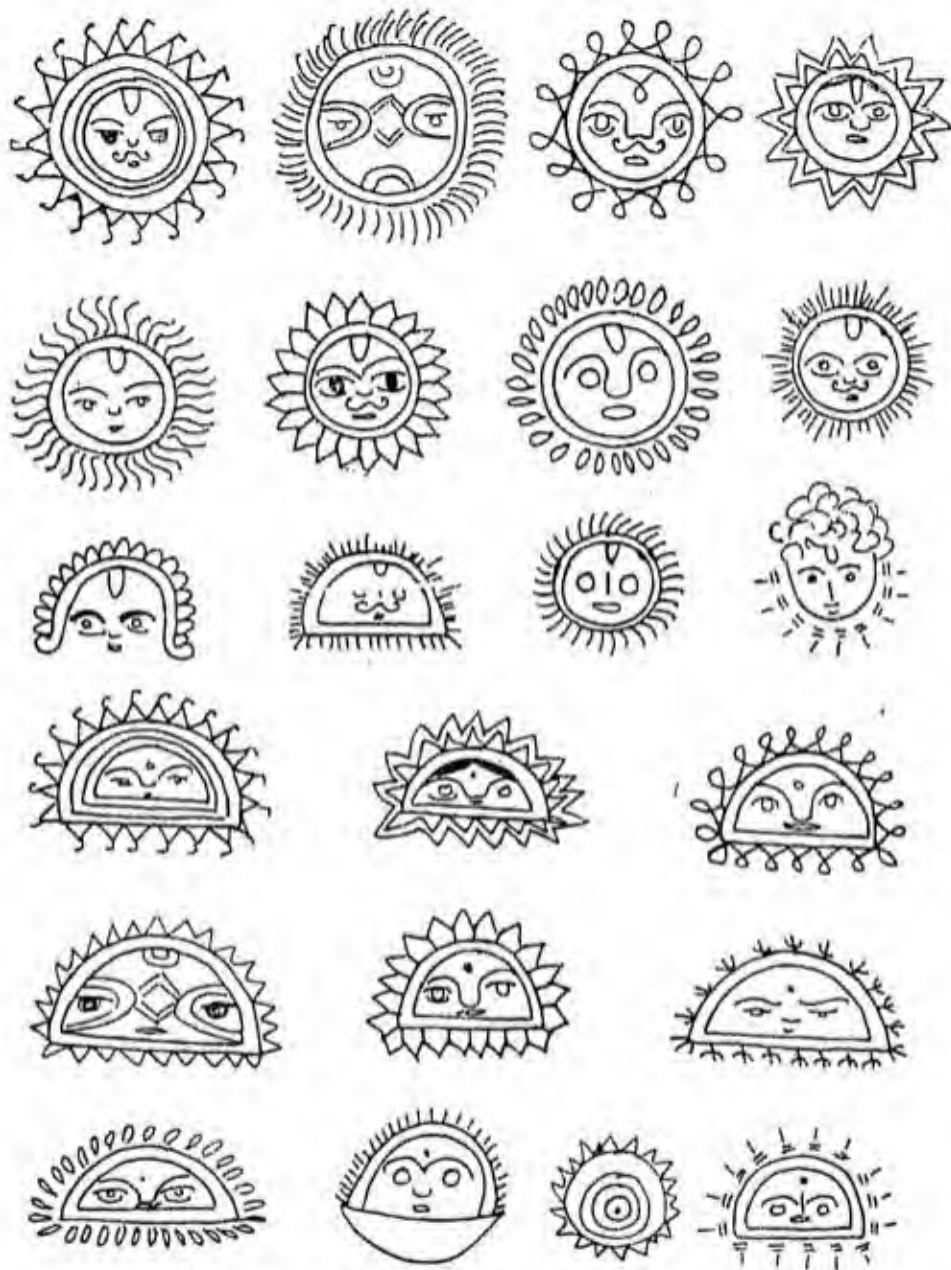
२. सम्भवतः वर के गोपभवन के रूप में ही यह शब्द सर्वप्रथम प्रयुक्त किया गया गया है, इसलिए 'कोह' शब्द क्रोध के रूप में बदल गया लगता है। कोहबर के घर में ही वर की साली-ससहज हँसी-मजाक व छेड़छानी करती हैं। स्वाभाविक ही है कुछ मजाक न समझने वाले 'वर' रूठ जाते होंगे अथवा मनचाहा नेग पाने की चाह में उसके भीतर बैठे रहते होंगे।



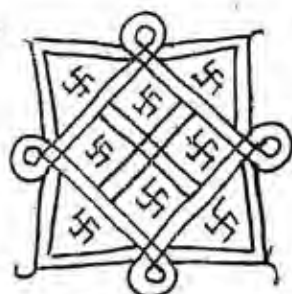
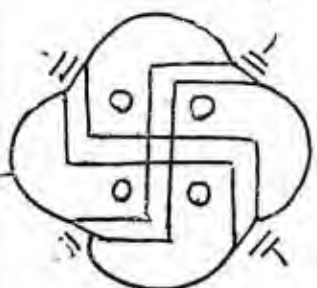
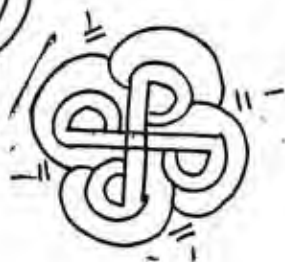
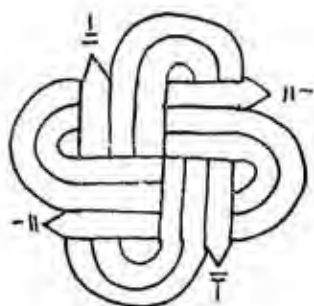
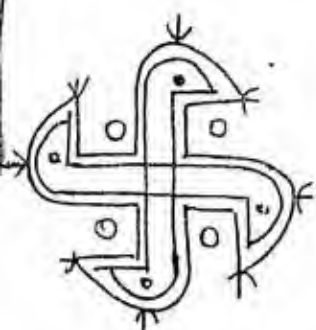
चित्र ८०-क : पुरुष व स्त्री आकृति का अंकन । चित्र में उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों के मिति चित्रणों में से पुरुष व स्त्री आकृतियों के कुछ नमूने । स्त्री अंकन में उसकी ओढ़नी या घाघरा अवश्य बनाया जाता है ।



चित्र ८०-ख : पुरुष व स्त्री आकृति के कुछ और लोकप्रिय नमूने



चित्र ८१ : निम्न चित्रणों में सूर्य व चन्द्र का अंकन । पहली तीन पंक्तियों में सूर्य तथा बाद की तीन पंक्तियों में चन्द्र का चित्रण दिया गया है । ये अंकन उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के हैं ।



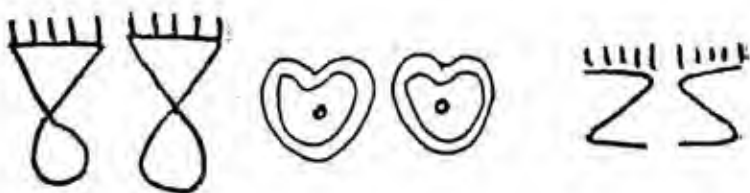
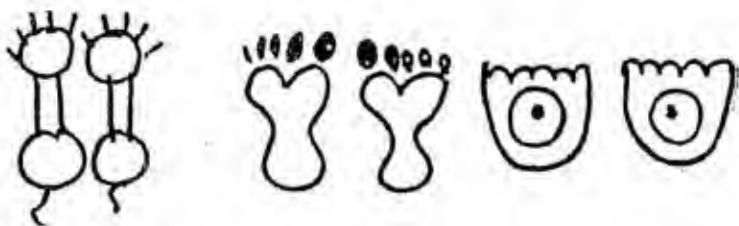
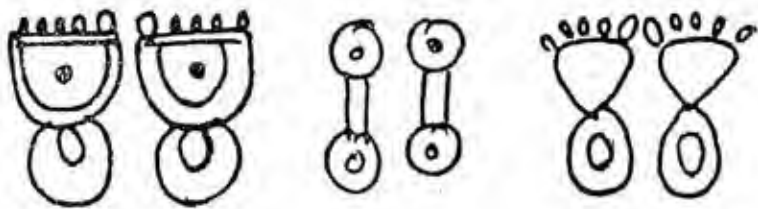
चित्र ८२ : स्वास्तिक पर आधारी कुछ चौक । ये चौक शुभावसरो पर बनाये जाते हैं । पहली पंक्ति का बायीं ओर से पहला चौक कुलीन चतुर्वेदी ब्राह्मणों के यहाँ का है । शेष चौक सभी जातियों में प्रलित हैं ।



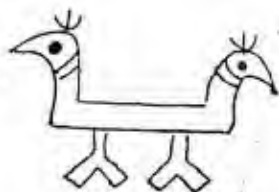
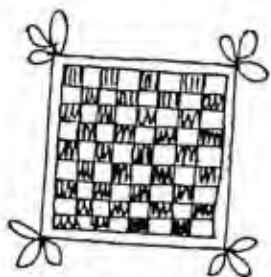
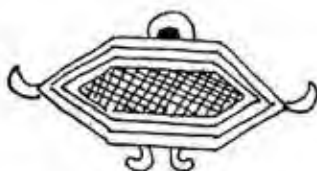
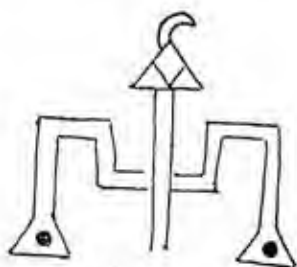
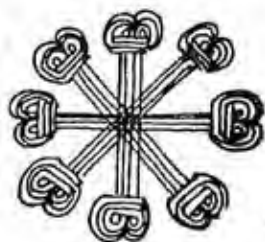
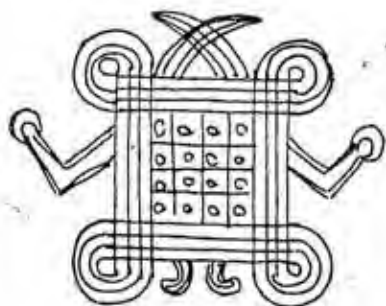
चित्र ८३ : भित्ति चित्रण में वन-पक्षियों का अंकन । पहली तीन पंक्तियों में मोर के विविध रूप चित्रित हैं । चौथी पंक्ति में बायें से हैं : (क्रमशः) ऊँट, हाथी, बतख, चिड़िया और पाँचवी पंक्ति में हैं : मोर, हाथी और चिड़िया ।



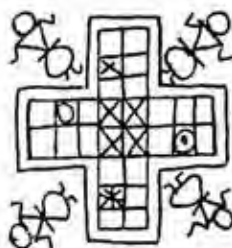
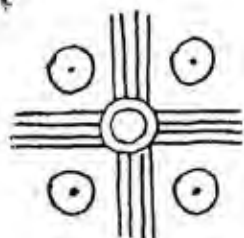
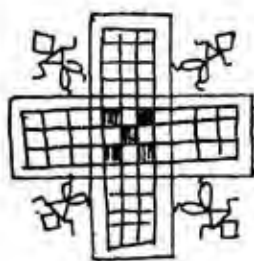
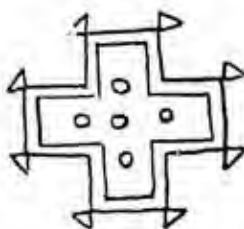
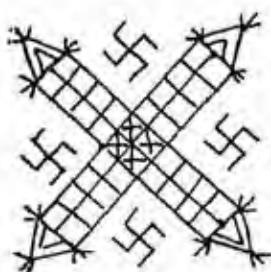
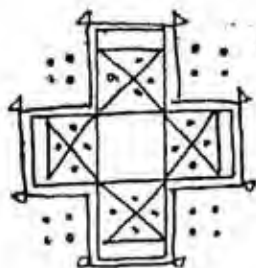
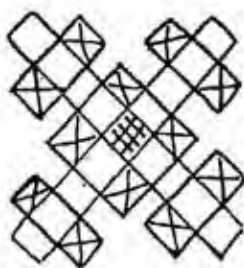
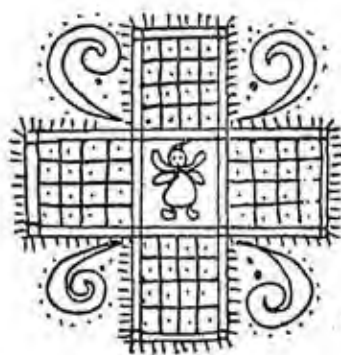
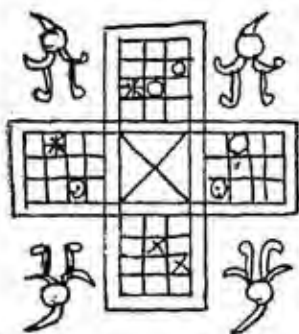
चित्र ८४ : नाग और स्नाहू चित्रण । पहली तीन पंक्तियों में नाग-चित्रण तथा बाद की तीन पंक्तियों में अहोई अष्टमी के समय का स्नाहू चित्रण ।



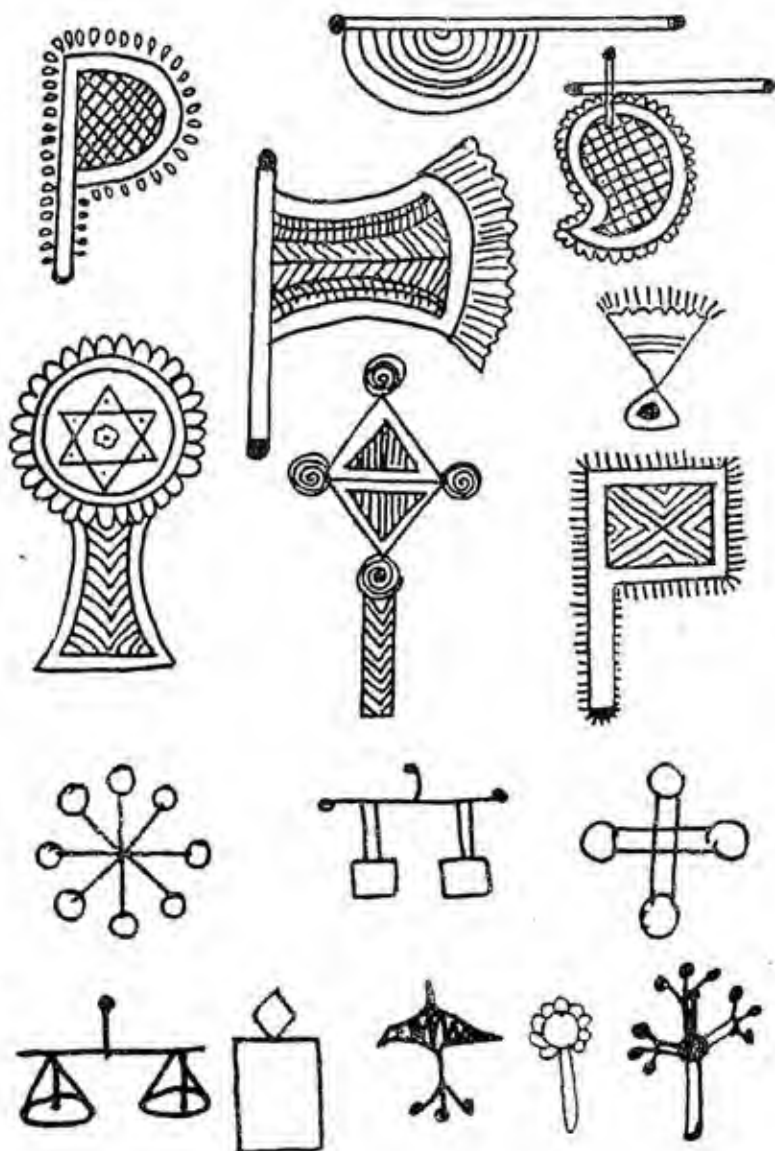
चित्र ८५ : देवउठान एकादशी तथा लक्ष्मी-पूजा के समय चित्रित किये जाने वाले चरण, गोह्रिया व खड़ाऊँ का अंकन। इनके विभिन्न रूप दर्शनीय हैं।



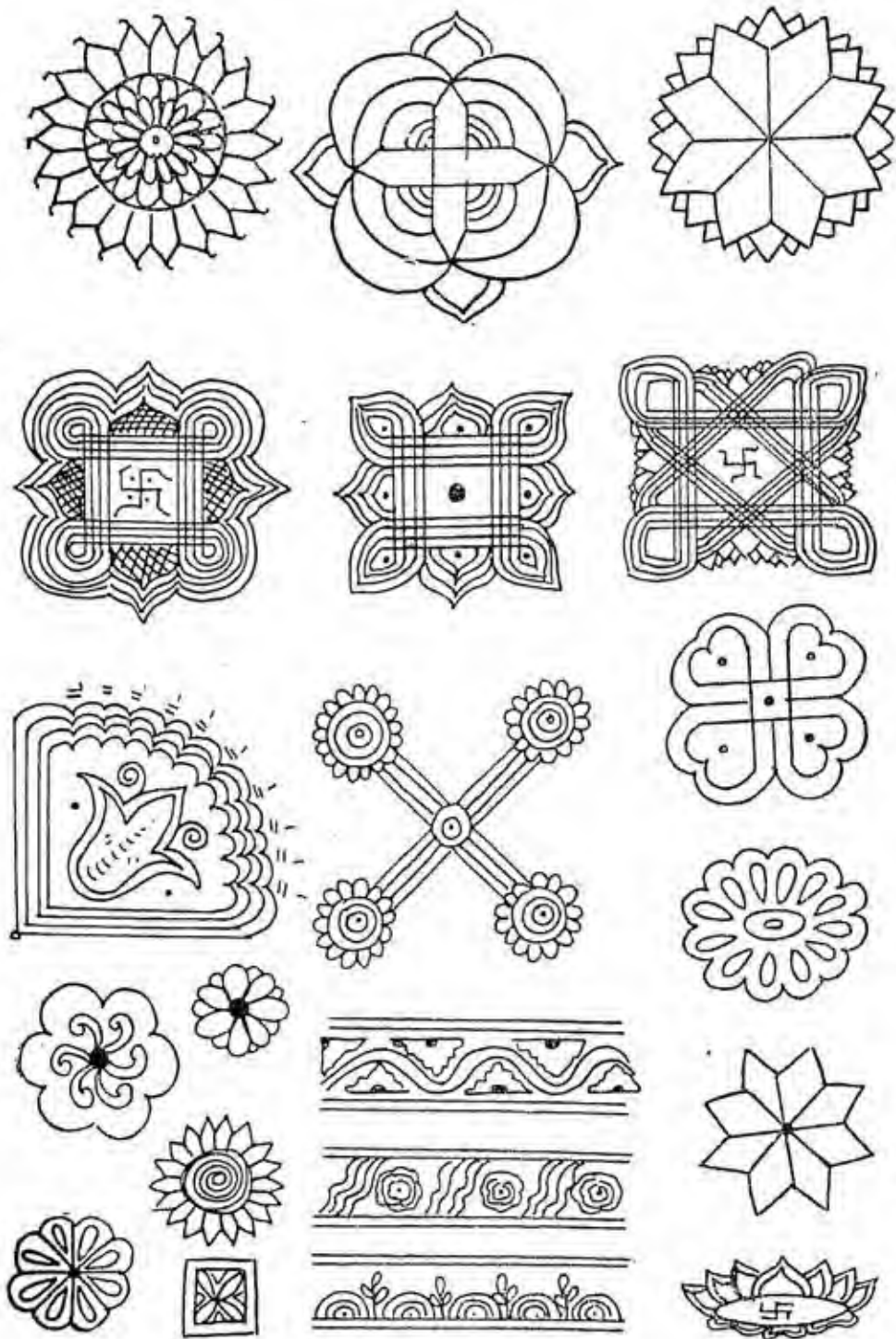
चित्र ८६ : रक्षाबंधन के समय चित्रित सोना/सोना/सरपन



चित्र ८७ : उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों की लोककला में चौपड़ के विविध अंकन। इन अंकनों में चौपड़ की सज्जा विशेष महत्व रखती है।

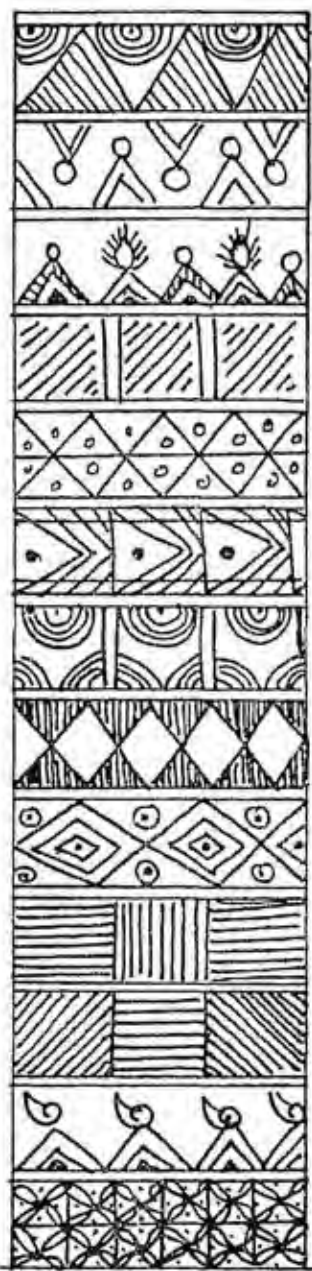
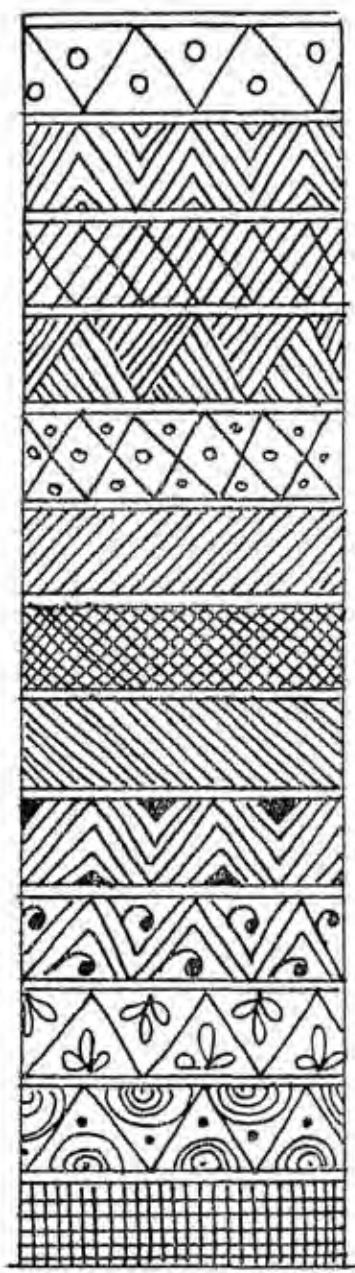


चित्र ८८ : मिट्टि चित्रण में तरह-तरह के पंखे । इनमें आकारों तथा सज्जा पर विशेष बल रहता है । अंतिम दो पंक्तियों में बच्चों को खिलौने दिये गए हैं और इनका चित्रण देवउठान एकादशी के समय किया जाता है ।

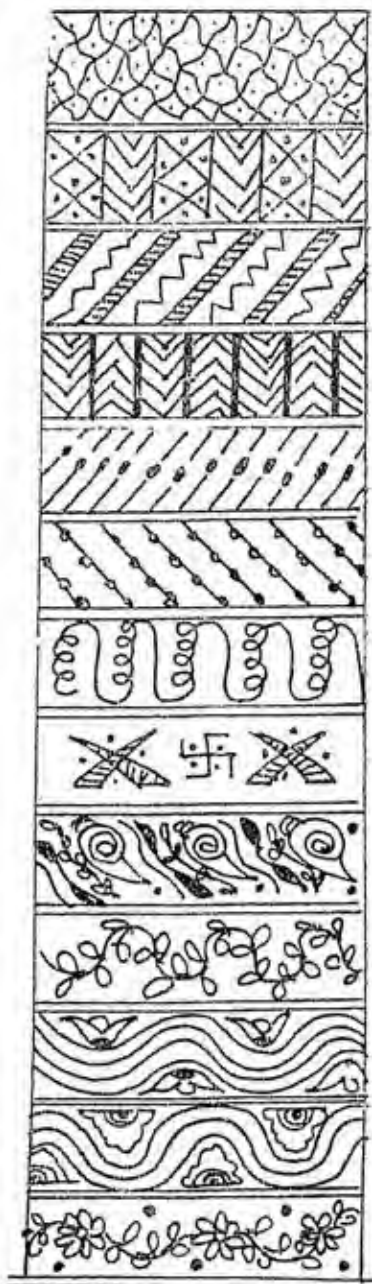
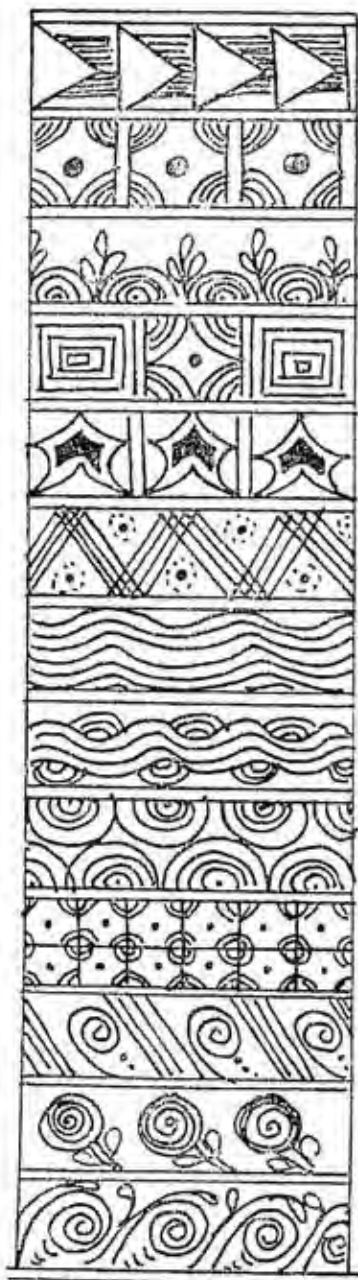


चित्र ८६ : कमल पर आधारित चोकर । कमल के दलों की संख्या में भिन्नता रहती है ।

इनका चित्रण शुभ अवसरों पर किया जाता है ।

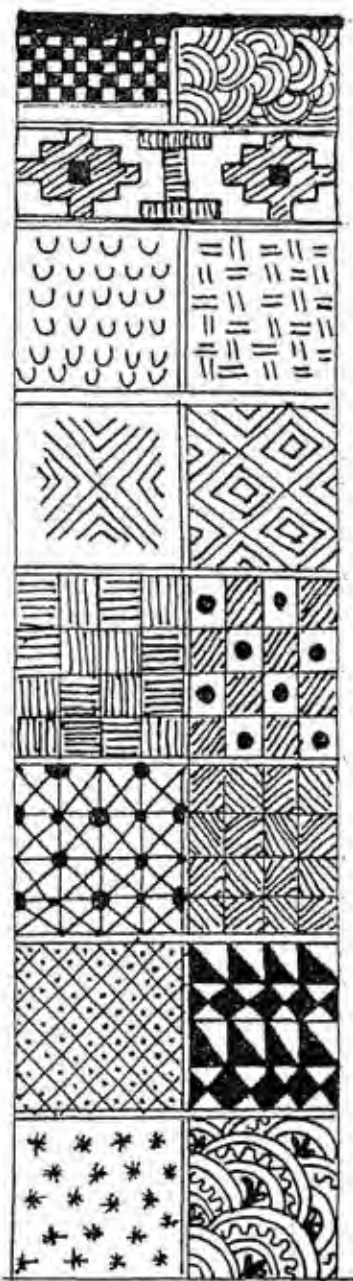
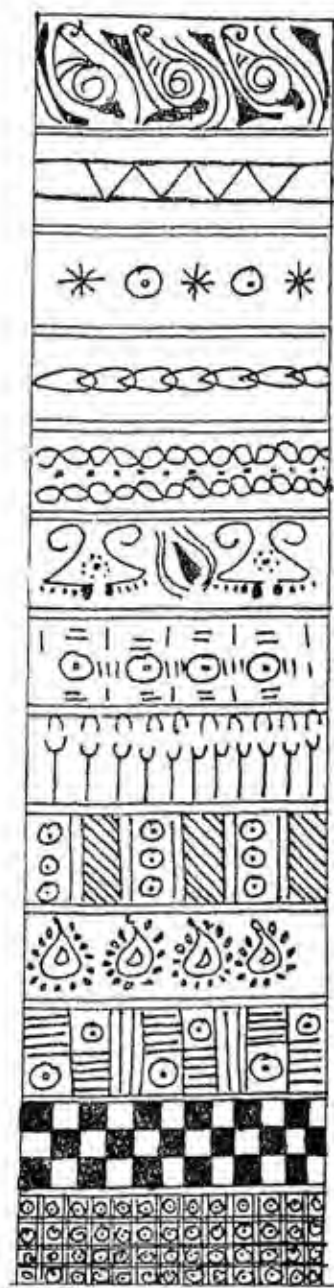


चित्र ६० : भूमि अथवा भित्ति पर बनाये जाने वाले चित्रणों के बार्डर। ये बार्डर मुख्य चित्र के चारों ओर बनाये जाते हैं। इन्हें आड़ी-तिरछी रेखाओं अथवा ज्यामितिक अभिप्रायों की सहायता से बनाया जाता है।

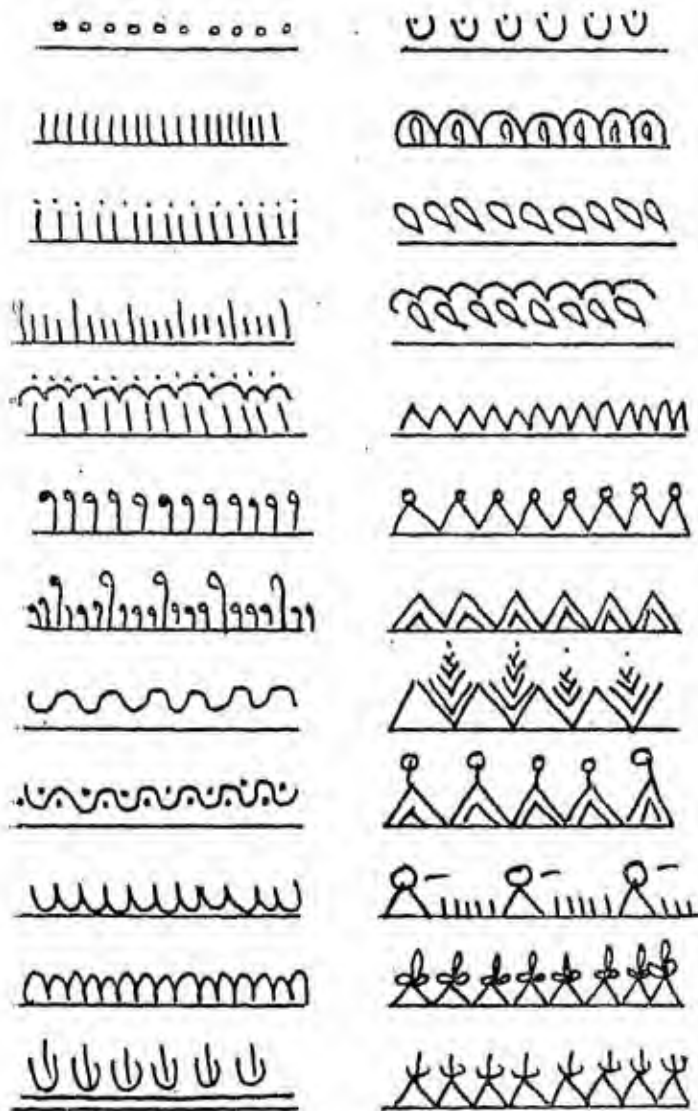


चित्र ६१ : कुछ बार्डर। ज्यामितिक अभिप्रायों के अलावा इनमें फूल-पत्तियों का प्रयोग भी कुशलता से किया जाता है।

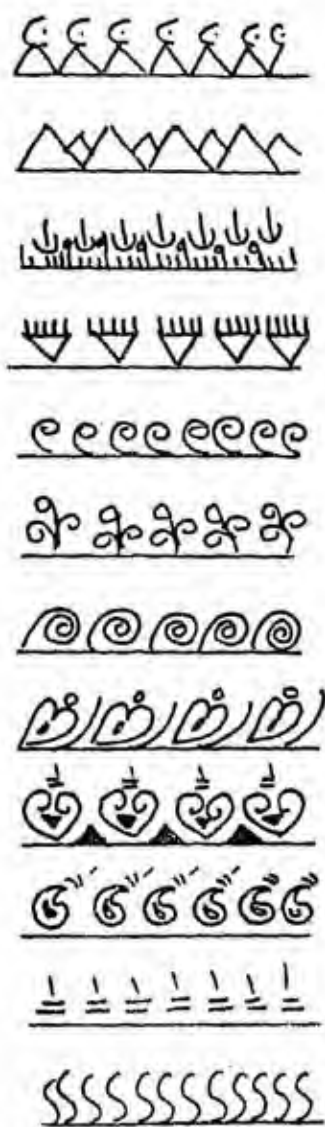
११८ :: उत्तर प्रदेश की लोककला



चित्र ६२ : इन नमूनों से बार्डर तथा डिजाइन के भीतरी हिस्सों को भरा जाता है



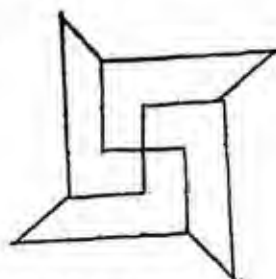
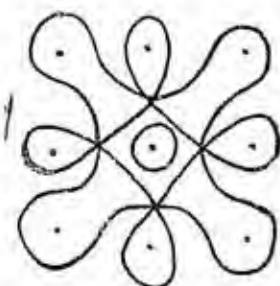
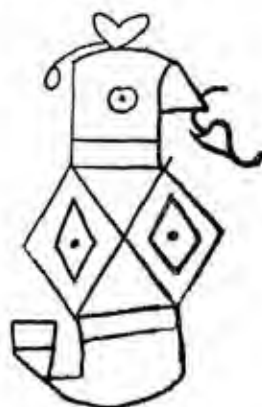
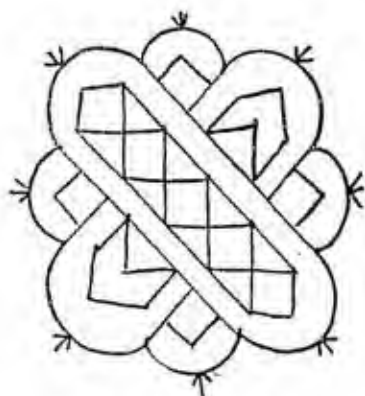
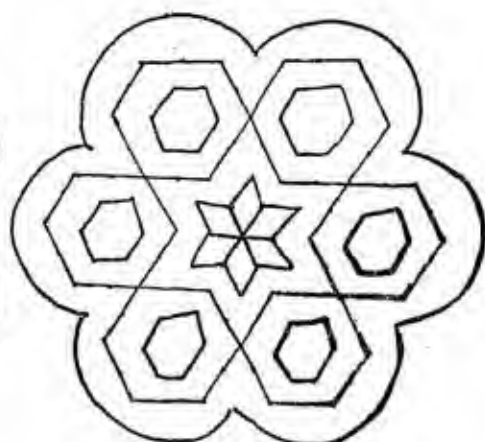
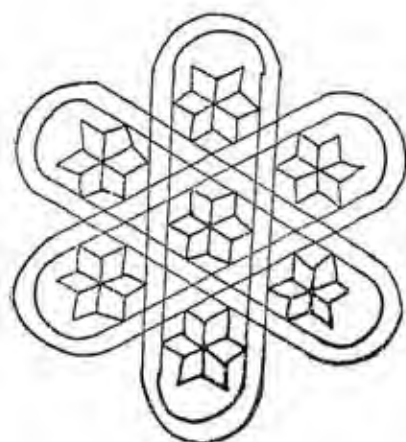
चित्र ६३ : भूमि और भित्ति-चित्रण में सजावट के लिए ऐसे कंगूरों का प्रयोग होता है।



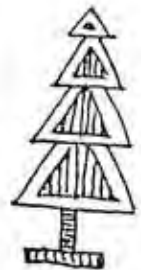
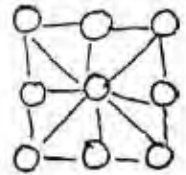
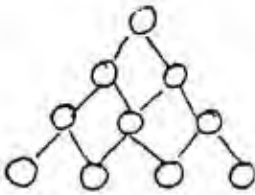
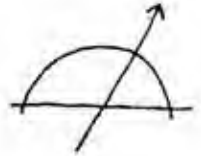
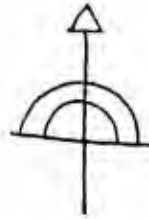
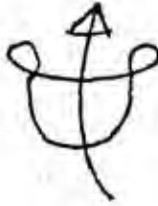
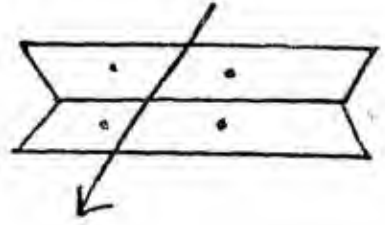
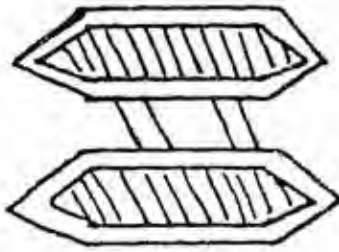
चित्र १४ : कंगूरे और सटकन । लोककला में सटकन का प्रयोग चित्र के कोनों को सजाने के लिए किया जाता है ।



चित्र ६५ : सटकनों के कुछ अन्य प्रकार



चित्र २६ : बिन्दु व रेखाओं पर आधारित चोक । बिन्दु के ये नमूने कुमाऊँ
कीर बुन्देलखंड क्षेत्रों में बनते हैं।



चित्र ६७ : भूमि तथा भित्ति चित्रण के कुछ उत्पाद। पहली पंक्ति में गंगा तथा यमुना, दूसरी पंक्ति में धनुष-बाण, तीसरी पंक्ति में सुपारी और अंतिम पंक्ति में खजूर के पेड़ का चित्रण किय गया है।

चतुर्थ अध्याय

लोककला का क्षेत्रीय समाज पर प्रभाव





स्वभाव से मानव एक सामाजिक प्राणी है। समाज से बिछुड़कर उसके लिए जीवित रहना कठिन हो जाता है। इसी लिए मुख्यतः सामाजिकता के सुख का अनुभव दिलाने और साथ ही संसार के प्रपंच से फंसे हुए जीवों को थोड़ी देर के लिए शारीरिक और मानसिक विराम देने के लिए प्राचीन काल से ही प्रत्येक देश के मानव समाज में नियत मुहूर्त और दिन पर उत्सव मनाने का आयोजन किया गया है। तात्पर्य यह है कि सामूहिक रूप से बहुत से नर-नारी एकत्र होकर एक-दूसरे को आनन्द प्रदान कर हृदयों को उदार व उन्नत बनाने का प्रयत्न करें।

प्राचीन काल से ही भारत में एक नहीं, अनेक जातियाँ उत्तर-पश्चिम की ओर से आती रहीं और अपने साथ अपनी संस्कृति, तीज-त्यौहार, उत्सवों एवं संस्कारों को भी लाईं। आर्य जातियाँ विजयी वर्ग के रूप में सदैव ही अल्पसंख्यक रूप में रहीं तथा यकायक आर्येतर जाति की प्राचीन किन्तु सशक्त संस्कृति एवं सभ्यता को विलुक्त जड़ से उखाड़ नहीं पाईं। फलतः इस देश में बहुत दिनों तक एकाधिक समानान्तर संस्कृतियाँ चालू रहीं। कालान्तर में जैसे-जैसे पारस्परिक संसर्ग और सम्पर्क गाढ़ा होता गया, वैसे-वैसे एक सामान्य जातीय संस्कृति का आविर्भाव हुआ जो न तो विशुद्ध आर्य थी और न निरी आर्येतर। इसी पुण्य सम्मेलन का महत्वपूर्ण प्रतीक हिन्दू धर्म था, जिसे हम 'सनातन धर्म' मानते हैं और जिसकी आधारशिला श्रुति, पुराण और स्मृति ग्रंथ आदि हैं।

सनातन धर्म, जो कि वैदिक धर्म जैसा किसी विशेष समुदाय का संरक्षित धर्म नहीं है, एक जातीय धर्म कहा जा सकता है तथा इसके द्वार सभी श्रद्धालुजन के लिए खुले हैं। कालान्तर में मुख्यतः महायान बौद्ध मत से टक्कर लेने तथा सनातन धर्म को लोकप्रिय और आकर्षक बनाने के लिए बहुत से प्राचीन मेले और उत्सव, जो मुख्यतः कृषि कार्य व ऋतु परिवर्तन से सम्बन्धित थे, इसी में सम्मिलित कर लिए गये। इनमें होली, दीवाली, नागपंचमी तथा वसंत पंचमी के उत्सव मुख्य हैं हालाँकि इनको मनाने के ढंग में कुछ परिवर्तन आया। आज के परिवर्तनशील युग में इन उत्सवों का सम्बन्ध विष्णु, कृष्ण, शिव, गणेश व राम तथा इनकी पराशक्तियों लक्ष्मी, राधा, गौरा, रिद्धि-सिद्धि आदि के साथ हो गया। ये त्यौहार व उत्सव काफी दिनों तक कुछ फेरबदल के साथ चलते रहे। इसके बाद के वर्षों में, जो करीब एक हजार वर्षों तक भारत में कालरात्रि के समान रहा, मुसलमानों व ईसाइयों के राज्य का सबसे अधिक प्रभाव भारत के उत्तरी प्रान्तों (पंजाब, सिन्धु, हरियाणा, राजस्थान व उत्तर प्रदेश) में रहा। लगभग एक हजार वर्षों की गुलामी ने भारतीय संस्कृति को तहस-नहस कर दिया। इसका प्रभाव यहाँ की लोक संस्कृति व कला पर भी पड़ा।

लोककला का एक पैर सदैव धर्म पर आरुढ़ रहा है। इसलिए इस कला पर गुलामी के समय का बहुत ही हानिकारक प्रभाव पड़ा। समय-समय पर लोगों पर अजिया कर लगाया गया, पीड़ितों पर अत्याचार बढ़ा, धर्म परिवर्तन के मामले में

जोर-जबरदस्ती भी हुई, जिसके परिणामस्वरूप हिन्दुओं के बहुत से त्यौहार, जो बड़े हर्षोल्लास से स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर नृत्य-गान के साथ मनाया करते थे, कम हो गये। जब जीवन की सुरक्षा ही नहीं, तब उत्सव कैसे मनायें? अशिक्षा में वृद्धि हुई, संस्कृत भाषा के स्थान पर उर्दू व अरबी भाषा का बोलवाला हुआ। अंग्रेजी का भी प्रचार बढ़ता गया। स्त्रियों का स्थान समाज में दिनोदिन गिरता गया। पदप्रथा, बालविवाह, बहुविवाह, अनमेल विवाह तथा स्तीप्रथा आदि का बोल-वाला हो गया। इस कुसमय में भी त्रिस्त्या कुछ त्यौहार अपने पति एवं पुत्र की मंगलकामना के लिए और कुछ घर-परिवार के कल्याण के लिए मनाती रहीं परन्तु अब धीरे-धीरे उसमें कुछ रूढ़िवादिता आ गई थी। वह उसे वैसे ही करती थीं जैसाकि पण्डित लोग बता देते थे। इन त्यौहारों, उत्सवों के पीछे छिपा जो वैज्ञानिक तथ्य था, उसको वे भूल गई थीं और लकीर की फकीर की भाँति वे उसे मनाती रहीं तथा किसी न किसी प्रकार के भित्ति व भूमि अलंकरण के रूप में उन लोक उत्सवों को चित्रित भी करती रहीं। परन्तु ऐसा कब तक चलता? आखिर वह समय भी आया जब आँग्ल भाषा के प्रचार के साथ-साथ पढ़े-लिखे लोगों ने इन उत्सवों व व्रतों को मनाना छोड़ दिया। उपरोक्त सभी परिस्थितियों का प्रभाव भारत के उत्तरी-पश्चिमी भागों में सबसे अधिक रहा।

उत्तर प्रदेश भी भारत के उत्तर में स्थित है, क्षेत्रफल की अधिकता के कारण उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम में लगभग १,१३,४०९ वर्गमील का क्षेत्रफल घेरे हुए है। इसके साथ ही साथ इस प्रदेश में जहाँ एक ओर बर्फ से ढके पहाड़ व घाटियाँ हैं, वहाँ दूसरी ओर सूखी पहाड़ियाँ भी तथा मध्य का मैदानी भाग भी। यह प्रान्त विभिन्न जलवायु को अपने में समेटे हुए है। इसमें सुखाग्रस्त क्षेत्र भी हैं तो वादग्रस्त क्षेत्र भी। तराई का क्षेत्र भी है और रेगिस्तानी क्षेत्र भी। भौगोलिक रूप में यह विभिन्न जलवायु, फसलों, फलों, फूलों, पशु-पक्षियों, कीड़े-मकौड़ों, पहाड़ी नदियों, झरनों व मिट्टी तथा सांस्कृतिक रूप में विभिन्न धर्मों, जातियों व समुदायों से भरा पूरा प्रदेश है।

इतिहास पतलाता है कि इसी क्षेत्र को हूणों, शकों, तातार, मंगोलों, मुगलों तथा अंग्रेजों ने समय-समय पर पददलित किया है। वर्षों तक इन्होंने अपना राज्य स्थापित किया और जाने से पहले वहाँ पर अपनी कुछ जातिगत विशेषता भी किसी न किसी रूप में छोड़ गये। पिछले एक हजार वर्षों की गुलामी का प्रभाव यहाँ की लोककला पर भली भाँति देखा जा सकता है। यहाँ पर हम उत्तर के क्षेत्रों में बसने वाले लोगों की लोककला से आगे बढ़ेंगे।

लखनऊ तक का क्षेत्र पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत तथा शेष भाग को पूर्वी उत्तर प्रदेश के नाम से विवेचित किया गया है जिसमें भुक्सा, थारू, जौनसार-बाबर जातियाँ, कुमार्युनी व गढ़वाली तथा हरिद्वार से दक्षिण का खड़ी बोली, ब्रज तथा रूहेली, भोजपुरी अवधी भाषाभाषी क्षेत्र है।

उत्तर प्रदेश का उत्तरी क्षेत्र ब्रिटिश काल से पहले आवागमन के साधनों से प्रायः शून्य ही था। यहाँ पर रहने वाले, मुसलमान काल में, महाराष्ट्र, गुजरात व राजस्थान से आकर बस गये थे। साथ में वहाँ के पुराने रहने वाले भी थे। परिस्थिति-बश सभी में आपस में समझौता हो गया और लोग बिना किसी की संस्कृति को मिटाये रहने लगे। इस क्षेत्र में आज भी ब्राह्मण, क्षत्रिय जातियों का बाहुल्य है और विकसित (पढ़े-लिखे होने के बाद भी) होने के बावजूद अपनी पुरातन संस्कृति को सीने से लगाये हुए हैं।

शिव आदिकाल से ही जन-जन के देवता रहे हैं और भारतीय धर्मदर्शन यह भी बतलाता है कि शिव की जन्मभूमि व कर्मभूमि सदैव हिमालय रही है। इसी लिए शिव अपने अनेक रूपों के साथ यहाँ पूज्य हैं। शिव की पत्नी गौरा सम्पूर्ण भारत में सबसे अधिक वन्दनीय देवी का स्थान पाती हैं। भारतीय स्त्री अपने को गौरा के समान ही सुहागिन तथा शिव के समान पति पाने की लालसा अपनी युवावस्था से ही करने लगती है। इस क्षेत्र में यही कल्याणकारी हिमालय की पुत्री गौरा और पर्वतराज शिव दोनों ही पूज्य हैं। यहाँ पर बसने वाली विभिन्न जातियों के कुल देवता भैरव, गौरा, शिव तथा इन्हीं दोनों के अनेक रूप हैं। कृष्ण भी यहाँ बहुत लोकप्रिय हैं; जौनसार-बाबर में रहने वाले बहुत से लोग अपने को पाण्डवों का वंशज कहते हैं।

यहाँ के विकसित और अविकसित समाज पर लोककला का प्रभाव लगभग एक-सा है। यह कला अपनी धार्मिक पृष्ठभूमि के साथ प्रत्येक के हृदय में समायी हुई है। जहाँ एक ओर भुक्सा, थारू व जौनसार-बाबर के रहने वाले लोग मिट्टी व लकड़ी के काम में अपनी तुलना नहीं रखते, उसी प्रकार कुमायूँनी क्षेत्र ऐपन में तथा गढ़वाली क्षेत्र तंत्रों के आधार पर बनाये जाने वाले चौकों में अद्वितीय है।

गढ़वाली समाज में भित्ति व भूमि अलंकरण के रूप में नवरात्रि के दिनों में तंत्र पर आधारित चौक ही मिलेंगे, जबकि कुमायूँनी क्षेत्रों में हरेक मंगलकार्य में संलग्न एक भूमि या भित्ति अलंकरण अवश्य मिलेगा। उत्सव और त्यौहार दोनों ही क्षेत्रों में मनाये जाते हैं, पर गढ़वाली इसे अलंकृत नहीं करते।

आज के युग में जबकि बहुत बड़ी संख्या में पहाड़ी समाज पहाड़ों की टंडी छाँव से निकलकर बाहर बस गया है, अपनी संस्कृति को अभी भी अंचल में छिपाये हुए है। हम यों भी कह सकते हैं कि जहाँ पहाड़ी समाज गया, अपनी लोककला से लोगों को प्रभावित किया और मैदानी भागों के लोगों ने कला का कुछ अंश उनसे सीखा।

इसके ठीक विपरीत प्रभाव हरिद्वार से उतरते ही आपको देखने को मिलेगा। लोककला का वह मनोमुग्धकारी रूप, जो कि कुमायूँनी क्षेत्रों में देखा था, यहाँ पर देखने को तरस जायेंगे। यह क्षेत्र क्षत्रियों की एक विशेष जाति जाटों से भरा पड़ा है जो वीरता में अद्वितीय हैं। साथ ही साथ इस क्षेत्र में जाट व राजपूत

मुसलमानों की भी अधिकता है। ब्राह्मण-वैश्य भी बहुत हैं। इस क्षेत्र के विकसित एवं अविकसित समाज पर लोककला का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। अंग्रेजी सभ्यता का प्रभाव भी इसी क्षेत्र में सबसे अधिक है। यहाँ भी ८०-८५ प्रतिशत जनसंख्या गाँवों और कस्बों में निवास करती है, जिसके पास अधिक समय ही नहीं है इन उत्सवों को समझ-बूझ कर खूब धूमधाम से मनाने का।

इस क्षेत्र का निवासी परिश्रमी बहुत है और धर्मभीरु कम। अधिकांशतः कृषक हैं। घर के कुछ लोग सेना में, पति विदेश व पत्नियाँ गाँवों में। हर समय एक दुविधा। इसलिए उत्सव भी कम, त्यौहार भी कम। और अगर है भी तो लकीर के फकीर की भाँति। जैसा पण्डित ने कहा, दान-पुण्य कर दिया, गंगा-स्नान कर लिया। उसको समय ही कहाँ जो चित्रों से भित्ति या भूमि को अलंकृत करे। हाँ, वैश्य और ब्राह्मण जातियाँ अवश्य कुछ सक्रिय दिखाई पड़ें।

इसलिए यह लोककला, जोकि हमेशा की-भाँति धर्म के साथ चलती है, वहाँ अपना प्रभाव नहीं दिखा पाई; केवल निर्जीव होकर रह गई और अब आधुनिक युग में धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और हरिजन निकृष्ट—इन भावों ने जाति के बंधनों को और भी दृढ़ता से बाँध दिया है। बिना देखे-पूछे यहाँ का अविकसित समाज उत्सवों व त्यौहारों को मनाता आ रहा है, पर आज की आधुनिक सभ्यता की छाप उन तक जल्दी पहुँच गई है। मैदानी भाग होने के कारण आवागमन के साधन सुलभ हैं और इस अविकसित समाज ने यहाँ के विकसित समाज को, जो शहरों और कस्बों में था, खूब पास से देखा और यह पाया कि जो त्यौहार गाँव में पण्डितों के प्रभाव में आकर वे लोग मंगल-कामना के लिए मनाते आ रहे थे, उनके बिना भी उनके गृहरी भाई सुखी हैं। उनके मन में भी प्रश्न उठे कि हम ही क्यों करें और यह विचार आते ही बगैर सोचे-समझे उन्होंने त्यौहारों को छोड़ना आरम्भ कर दिया।

इसके विपरीत यहाँ के विकसित समाज में दूसरी हलचल हो रही थी। ब्रिटिश काल में अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार व आर्यसमाज के प्रचार से जो रीति-रिवाज ढकोसला मानकर छोड़ दिये गये थे उनकी ओर यहाँ के लोगों के मन में कुछ आकर्षण बढ़ा। परन्तु इस क्षेत्र के विकसित समाज में लोकलाओं सम्बन्धी धार्मिक त्यौहार कम ही मनाये जाते हैं और जो हैं भी, उनका भी सामान्यीकरण हो गया है। करवा चौथ, अहोई अष्टमी व देवउठान के अनुष्ठान सम्बन्धी व्रतों में कुछ भूमि एवं भित्ति अलंकरण देखने को मिलते हैं परन्तु उनमें अधिक निखार नहीं रहा। कुमारियों के साँझी के त्यौहार में भी वह ललक नहीं जो आज से चालीस-पचास वर्ष पूर्व थी। कहने को दीवाली व होली भी मनाई जाती हैं और संक्रान्ति व नवरात्रि भी। क्योंकि इस क्षेत्र में लोककला का धार्मिक पक्ष दुर्बल है, इसलिए उसका कला पक्ष भी निर्बल रह गया है। हर्ष का विषय यह है कि यहाँ के शिक्षित समाज में एक परिवर्तन आता जा रहा है। शिक्षा का प्रसार हुआ है और लोगों में

विभिन्न भाषाओं में पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ने की रुचि भी बढ़ी है। रेडियो और टेली-विजन देखने के मौके भी मिले हैं। शिक्षा ने उनकी बुद्धि का विकास किया है और वे सोचने लगे हैं कि अमुक त्यौहार भला क्यों मनाया जाता है? क्यों पारचात्य देशों का विद्वान हिन्दू धर्म और संस्कृति पर पोथा लिखना चाहता है? आखिर क्या है हमारे त्यौहारों, उत्सवों व संस्कारों में जिन्होंने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है? वे इसके विषय में जानने को व्यग्र हैं और पत्र-पत्रिकाओं-रेडियो-टेली-विजन में प्रकाशित-प्रसारित सामग्री से, जो इन त्यौहारों आदि के वैज्ञानिक पक्ष को प्रस्तुत करती है, प्रभावित हो रहे हैं। हो सकता है वह दिन भी आ जाए, जब वे फिर से लोककला को उसके धार्मिक व वैज्ञानिक पक्ष की जानकारी के साथ अपना लें जिनको कभी डकोसला मात्र समझकर मार्ग से हटा दिया था।

अब आता है ब्रज व रहेली भाषा-भाषी क्षेत्र जिनमें फिर हम लोककला का प्रभाव अधिक देखते हैं। यहाँ के विकसित व अविकसित दोनों ही समाज राम व कृष्ण के चरित्र में रंगे हुए हैं। शारदीय और वासंतीय नवरात्रि दोनों ही अपने रंग में यहाँ विराजमान हैं। ब्रज का प्रत्येक पुरुष व स्त्री अपने कृष्ण के साथ इतना रमा हुआ है कि वहाँ पर रहने वाला मुसलमान भी चुपके-चुपके कृष्ण को आदर देता है। भूमि ही ऐसी है। फिर अविकसित व विकसित की दीवार कैसे खड़ी की जाए? लोककला के यहाँ दो रूप हैं—एक कर्मकाण्ड पर आधारित जो मंदिरों तक सीमित है और दूसरा लौकिक, जो जनजीवन में व्याप्त है। मथुरा की पावन धरा पर न जाने कितने लोग प्रति वर्ष भारत के कोने-कोने से आते हैं भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मभूमि के दर्शन करने, गोवर्द्धन की परिक्रमा करने, यमुना में स्नान करने व दीपदान करने—यह सब इस क्षेत्र की लोक-संस्कृति का ही प्रभाव है।

रहेली क्षेत्रों में राम, कृष्ण से अधिक पूज्य हैं क्योंकि अब राम की जन्मभूमि अवध की ओर हम बढ़ रहे हैं। यहाँ पर नागपंचमी के दिन का गुड़ियों का त्यौहार महालक्ष्मी का पूजन, कुआँरी लड़कियों का न्यौरते का त्यौहार, रामलीला व दुर्गा पूजा—सभी कुछ बंदनीय एवं दर्शनीय हैं।

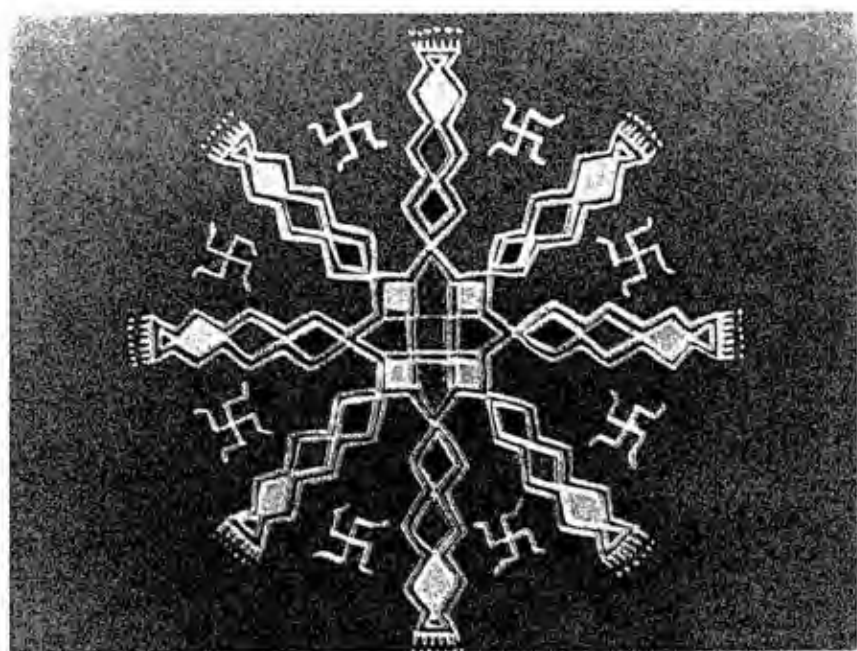
इन दोनों क्षेत्रों की जनता में धर्मभीरुता अधिक है, जातियों की कट्टरता अधिक है, कष्ट सहने की क्षमता व समुदाय में रहने की भावना भी अधिक है। एक-दूसरे के काम आने की इच्छा, दान-पुण्य करने की भावना तथा 'भगवान् जो करता है अच्छा ही करता है' इसमें अडिग विश्वास सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। परिणाम से हम स्वतः ही अवगत हो सकते हैं। यहाँ के मानव-समूह में रहन-सहन का स्तर गिरा हुआ है। अन्याय सहन करने की शक्ति के कारण जीवन की विषमताएँ बढ़ गई हैं और अकर्मण्यता भी आ गई है। इन सबके बावजूद इस लोककला ने जीवन में सरसता व आनन्द भर दिया है। ब्रज क्षेत्र में त्यौहार सम्बन्धी भूमि व भित्ति अलंकरणों, विभिन्न प्रकार के मिट्टी या गोबर से बनाये गये अलंकरणों, मंदिरों में घटा व झँकी, पानी के ऊपर बनाई गई विभिन्न प्रकार की रंग-बिरंगी साँझी के

नमूनों में सुंदर कला देखने को मिलती है। नाग पंचमी का त्यौहार गुड़ियों के खेल के रूप में व महालक्ष्मी का पूजन रूहेली क्षेत्रों की जान है। न्यौराते के समय के चित्र, गौरी की मूर्ति, दीपावली की हटरियों व गोवर्द्धन का गोबर से ग्राम सदृश बनाना, देवउठान के चौक, होली के समय की पंद्रह दिन पहले से ही बनाई जाने वाली दुगिया आदि रूहेली लोक सांस्कृतिक पक्ष की लुभावनी कला को दर्शाती है। लोककला के धार्मिक और कला पक्ष ने लोगों को जीने के लिए प्रेरणा दी है और जीवन को सरस व मधुर बनाया है।

अब हम पूर्वी उत्तर प्रदेश की ओर चलें जिसमें अवधी, कन्नौजी, भोजपुरी, मैथिली व बुंदेली बोली वाले प्रदेश सम्मिलित हैं। यह क्षेत्र वैष्णव व शैव मत को मानने वालों का है। आर्य समाज व आधुनिक सभ्यता का प्रभाव इन क्षेत्रों में कम पड़ा है; हिन्दी, संस्कृत व अवधी के विद्वानों से यह क्षेत्र भरा पड़ा है जिसका प्रमुख कारण बनारस का हिन्दू विश्वविद्यालय तथा काशी की ऐतिहासिक प्राचीन धार्मिक पृष्ठभूमि है।

इन क्षेत्रों की विकसित और अविकसित जनता पर लोककला का प्रभाव एक-सा है। हिन्दुत्व अधिक है, साधारण जनता शिव और राम के चरित्र में समाई हुई है। प्रत्येक उत्सव सम्मिलित रूप में मनाया जाता है। रामलीला, द्वारों का मेला, कजरी व फाग के गान, काली का उत्सव, बच्चों की पिड़िया, नारे सुआ, मामु-लिया, संक्षिया देवी, सिमरा-सिमरी व न्यौराते के खेल, सभी वर्णों के लोग सहयोग व उल्लास के साथ मनाते हैं। त्यौहार व उत्सव अभी भी सुसंगठित होकर मनाये जाते हैं और विभिन्न जातियाँ अनेक प्रकार से इन उत्सवों व त्यौहारों को मनाने में सहयोग प्रदान करती हैं।

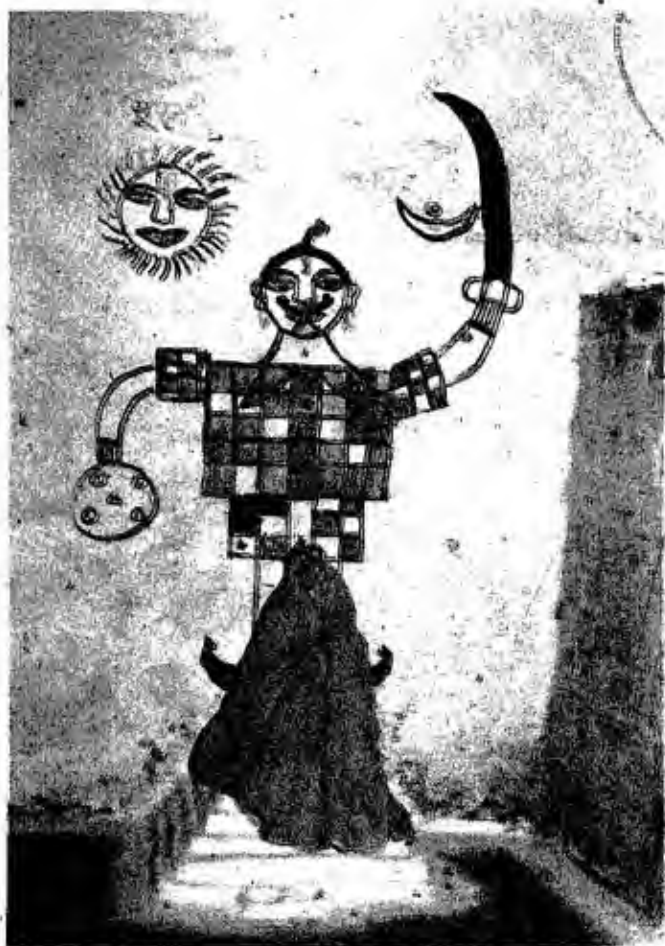
लोककला के धार्मिक पक्ष ने इस धरती को बहुत प्रभावित किया है। गाँवों की जनता में रुढ़िवादिता आ गई है, सब कुछ भाग्य पर छोड़कर जीने की राह उन्होंने अपनाई है। रामायण के राम व सीता के चरित्र को अपनाने की कोशिश तो की है पर, फिर भी, आपको सीता जैसी वधू मिल जायेगी, राम जैसा वर नहीं। शूद्रों की हमेशा ही हिकारत की दृष्टि से देखना भी आप पायेंगे। तुलसी ने तो शूद्र और स्त्री आदि को ताड़न का अधिकारी बताया था, पर उसके भीतर छिपे गहन अर्थ को वे नहीं समझ पाये हैं। उनका विश्वास है कि जब पाप का घड़ा भर जायेगा तो भगवान रूप में कोई न कोई आकर उन्हें दुखों से छुटकारा दिलायेगा। स्वयं कर्म करने पर आस्था कम तथा भाग्य पर अधिक आस्था मिलेगी, फलस्वरूप यह क्षेत्र कर्मवादी कम और भाग्यवादी अधिक बन गया है। लोककला के धार्मिक व सामाजिक कहानी पक्ष का प्रभाव यहाँ के जीवन पर बहुत पड़ा है। लोगों के दिलों में अपनों से बड़ों के लिए आदर-सत्कार है। स्त्रियों को अत्यधिक मान-सम्मान प्राप्त है। द्वेष का वह भाव नहीं जो कि पाश्चात्य रंग की डूबी जनता में मिलेगा। जो कुछ भी उपलब्ध है उसी में संतोष है, शान्ति है, अधिक की आवश्यकता ही



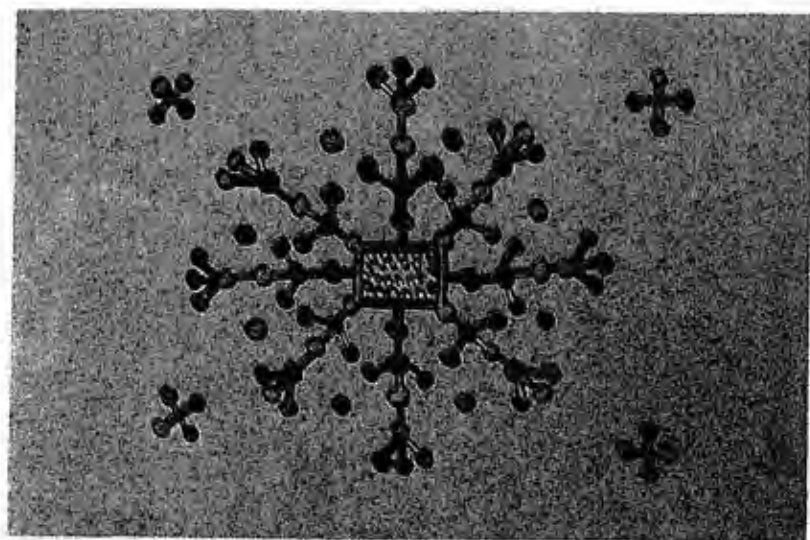
चित्र ३३ : गारे मुलटा का चौक। यह एक धूमि अलंकरण है। इसे चौक, आंगन, चबूतरे अथवा
देवी पूजा के स्थान पर बनाया जाता है।



चित्र ३७ : अहोई अष्टमी । पूर्वी उत्तर प्रदेश में कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के यहाँ प्रचलित भूमि विभण । पूजा के उपादानों के अतिरिक्त स्त्री-पुरुष को हुक्का पीते हुए दिखाया जाता है ।



चित्र ३२-क: नारे सुउटा। उत्सव के आरम्भ में ही जड़कियाँ सुउटा राक्षस का चित्र भित्ति पर बना देती हैं और उसके सामने देवी की स्थापना कर देती हैं। इसके सामने शारदीय नवरात्रि के दिनों में देवी की स्तुति की जाती है।



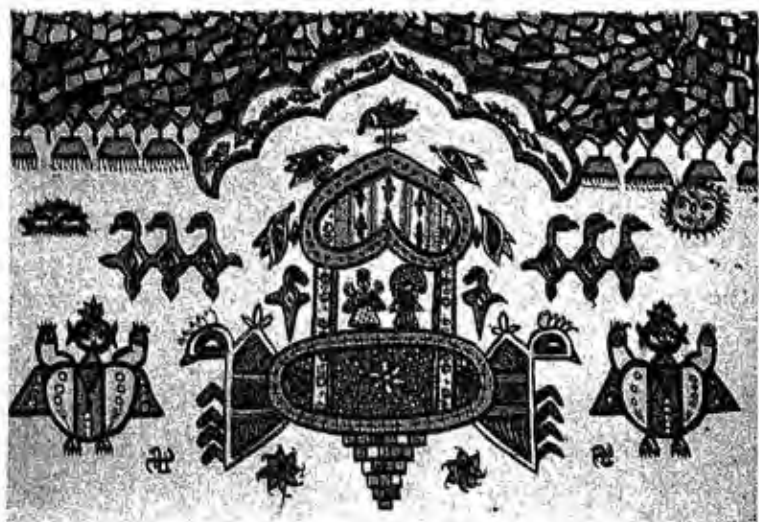
चित्र ५७ : होली का चूक। पंचमी से होली तक गेहूँ, जौ का आटा, मंदा व गुलाब से बनाया जाने वाला चूक। इसी चूक पर होली खेलने की भी प्रथा है।



चित्र ७८ : कोहबर। काश्यपुज्य ब्राह्मणों का यह भित्तिचित्रण वधू की कल्पना के रूप में चित्रित किया जाता है। कानपुर तथा आवागस के क्षेत्रों में प्रचलित अंगन।



चित्र ७२-७३ : दुन्देलखण्ड का एक भित्ति चित्रण। उसे घर की बाहरी दीवार पर बनाने की प्रथा है।



चित्र ६३: अमला। विवाह के अवसर का लोकप्रिय भित्ति चित्रण। षट्सुवेदी ब्राह्मणों के यहाँ विशेष रूप से इस अलंकरण का प्रचलन है।



चित्र ६७ : कोहबर । असाहवाय में कामगुज्य आसुनों के यहाँ प्रचलित भित्ति चित्रण । यहाँ चित्रित स्त्री-पुरुष, वर-वधु के प्रतीक हैं, जो विवाह के बाद एक शरीर हो जाते हैं ।]

क्या ? धन की प्राप्ति के लिए अधिक भागदौड़ नहीं। उत्तर प्रदेश का यह क्षेत्र आर्थिक रूप से इसी लिए पिछड़ा है। दो समय रोटी का मिलना किसी के जीवन-स्तर को ऊपर नहीं उठा सकता। केवल व्रत या अनुष्ठान ही तो किसी अन्यायी को सजा नहीं दे सकते। उसके लिए तो कर्म चाहिए, अन्याय का डटकर मुकाबला करने का साहस भी चाहिए, न कि अन्याय को सहने की ही शक्ति चाहिए।

जातिवाद को भी बढ़ावा मिला है। जनसंख्या भी बहुत बढ़ी है क्योंकि यह भगवान की ही देन समझी जाती है। बाल-विवाह, अनमेल विवाह, सती-प्रथा, विधवा का घोर अपमान—सभी कुछ तो इस समाज में पग-पग पर देखेंगे। जो जैसा करता है वैसा ही फल पाता है, अमीर व गरीब भगवान की तरफ से ही बन-कर आते हैं यह उसके पूर्व-जन्मों का फल है—परिणामस्वरूप यहाँ का जमींदार, साहूकार व पण्डित लोग साधारण जनता पर अत्याचार करते रहते हैं और जन-साधारण घर छोड़ कर विवशता में दूर देश चला जाता है।

यहाँ के लोगों को लोककला के धार्मिक पक्ष ने बाँधा है तथा इन्होंने इस कला को खूब सँवारा है। यहाँ की कला भित्तिचित्रों, भूमि अलंकरणों तथा मिट्टी के पात्रों और मूर्तियों के रूप में, साथ ही साथ मकानों की बाह्य दीवारों पर चित्रकारी के रूप में सर्वत्र देखने को मिलती है। इनका मनोमुग्धकारी रूप इनके मन को शान्ति देता है तथा सरस बनाता है। उन्हें अपनी मिट्टी से प्यार है। वह मरने को तैयार हो सकते हैं, पर छोड़ने को जल्दी तैयार नहीं। यह कला उनके आन्तरिक भावों को सशक्त बनाती है।

विकसित समाज में भी यह कला मधुरता बनाए हुए है। लोककला के वैज्ञानिक पक्ष को, जिनके आधार पर विभिन्न उत्सवों का प्रादुर्भाव हुआ था, विद्वान लोग जनता-जनार्दन के सम्मुख लाने का प्रयास कर रहे हैं ताकि शिक्षित जनता उनको समझे और अधिक हर्षोल्लास के साथ उत्सवों और संस्कारों को मनाये। वह इनसे सम्बन्धित भित्ति या भूमि अलंकरणों को भी चित्रित करे क्योंकि यह कला न केवल बनाने वाले को वरन समाज को भी सुख देती है और उसी के लिए समर्पित है।

स्वतंत्रता के पश्चात विद्वान हिन्दी भाषा में बहुत-सी पत्र-पत्रिकाओं में इन त्योहारों के वैज्ञानिक पक्ष को प्रकाशित कर रहे हैं जिनके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं। इस वैज्ञानिक पक्ष को समाज के सम्मुख लाने का मुख्य कारण भारतीय जनता में अपने वैदिक धर्म के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना है ताकि वह भौतिक सुखों की चाह में अपने को बर्बाद न कर ले। वह मानसिक शान्ति इनके माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास करे। सर्वप्रथम हम यहाँ करवा चौथ, अहोई अष्टमी, नाग-पंचमी, जोकि स्त्रियों के सर्वाधिक लोकप्रिय त्योहार हैं, के वैज्ञानिक महत्त्व को ले रहे हैं।

वर्षाकाल में नदी, तालाब, कुएँ आदि सब का जल दूषित हो जाता है। पुराने

समय में वर्षा का जल मिट्टी के ढ़ों में भरकर रख दिया जाता था। वर्षा समाप्त होने के पश्चात् जब जल स्वच्छ होने लगता है, तब आने वाले त्यौहारों—करवा चौथ और अहोई अष्टमी—पर एक-दूसरे के घरों में यह भेंटस्वरूप भेज दिया जाता था। इसलिए इसको जल शुद्ध करने का पर्व कहा जा सकता है। जल के पुराने बर्तन बदल कर नये बर्तन रखे जाते थे। अहोई अष्टमी व करवा चौथ से ही घरों की पुताई-सफाई करके कहीं रंग-विरंगे रंगों, तो कहीं गोबर से लीप-पोतकर चावल के पीठे या ऐंपन से भित्ति को अलंकृत कर दिया जाता था। अन्य को नये बर्तनों में रख दिया जाता था। नयी फसल भी खेतों में आ जाती थी। इसलिए इन त्यौहारों पर करवे में पानी तथा चिवड़े, बताशे-चावल और मिठाई आदि भिन्न-भिन्न की प्रथा थी तथा किसी भी पूज्य को दे देने का विधान था। उपरोक्त सामान पास-पड़ोस में भी दिखाने की प्रथा थी। इस प्रथा का तात्पर्य तब केवल यही था कि प्रत्येक कृषक दूसरे के खेत अथवा खलिहान में भरे अनाज को देख सके।

इसी प्रकार नागपंचमी, भैया पंचमी आदि पर नागपूजा का विधान है। वर्षा काल में नागों के बिलों में पानी भर जाता है। शान्त स्वभाव का यह प्राणी, जो कि प्रकाश से शर्माता है, अचानक पृथ्वी के ऊपर आ जाता है और घरों व अन्य स्थानों पर अपना आश्रय खोजता है। हिन्दू धर्म की प्रवृत्ति है प्रकृति की पूजा। अतः इसी परम्परा के अनुसार इस दिन नाग की पूजा की जाती है। घरती के नीचे, बिलों में रहने के कारण, प्राचीन लोगों ने पैदावार के साथ उनका नाता जोड़ दिया था। इसका एक मुख्य कारण यह था कि उपज को सबसे अधिक नुकसान पहुँचाने वाले मूषक को नाग अपना भोजन बना लेते थे।

साँप अंधेरे स्थानों के रहने का आदी है और मानव भी अपना धन ऐसे ही स्थानों पर रखने का आदी है जिसके कारण सर्पों को गुप्त धन का पहरेदार भी माना गया। इसके पश्चात् उसकी नदी के समान टेढ़ी-मेढ़ी बलखाती चाल होने तथा भीगी व दलदली भूमि में रहने के कारण पानी के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध माना गया है। नाग को देवता माना जाने लगा और स्त्रियाँ मानने लगीं कि जब यह भूमि की उपज बढ़ा सकता है तो बाँझपन भी दूर कर सकता है। वैष्णव, शैव धर्म के प्रभाव के कारण नाग देवता को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया। विष्णु का शयन-स्थल तथा शिव के गले का हार यही विषधर नाग ही है। इस तरह यह उत्सव आरम्भ से लोकोत्सव के रूप में प्रचलित हुआ और धर्म का बाना पहन कर हिन्दू धर्म में सम्मिलित हो गया। फलस्वरूप आज भी स्त्रियाँ बहुत ही विश्वास के साथ इसे मनाती हैं। नागों का चित्रण भित्तियों पर कर के सेवई, लावा, बताशे, खीर, हलुआ आदि से भोग लगाकर रोली-अक्षत व फूल से पूजा करती हैं। नागों का पूजन न केवल उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में बरन् सम्पूर्ण भारत में किसी न किसी रूप में किया जाता है।

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में शारदीय नवरात्रि के समय ज्वार बोने की प्रथा है।

प्रत्येक घर में गेहूँ या जी मिट्टी के सकोरों में या फिर कुलदेवता के कमरे में भूमि पर मिट्टी डालकर बोने की प्रथा है। दसवीं के दिन इन्हें उखाड़कर या तो वहनों भाइयों के कानों पर लगा देती हैं या फिर दुर्गा देवी के जागरण या दशहरे के सामान के साथ एक-दूसरे के घर भेंटस्वरूप भेज देती हैं। लौकिक रूप में यह आने वाली फसल (रबी) की द्योतक है। दस दिनों में यदि ज्वारे काफी बड़े हो गये हों तो फसल लम्बी अन्यथा खराब समझी जाती है। इसको अगर 'नरसरी' प्रथा का प्रादुर्भाव कहें तो क्या बुरा क्योंकि कहीं-कहीं इन ज्वारों में से कुछ को खेत में लगा देने की प्रथा है।

अब चार प्रमुख त्यौहारों को—रक्षा बधन, दशहरा, दीपावली व होली—भारतवर्ष के चारों वर्णों के चार त्यौहारों के वैज्ञानिक पक्ष को निहारते हैं। ब्राह्मण का कार्य है अपने यजमान को धार्मिक कर्मों से अवगत कराते हुए जीवन-यापन करना और यजमान का कर्तव्य है अपना भला चाहने वाले गरीब ब्राह्मण का पालन-पोषण करना जिसका अधिकार ब्राह्मण यजमान के हाथ में एक लाल धागा बाँधकर प्राप्त करता था। तत्पश्चात् धीरे-धीरे यह भाई-बहन का त्यौहार भी हो गया क्योंकि माता-पिता की मृत्यु के बाद भाई ही परिवार में प्रमुख होता है जो बहन के सुख-दुख का ध्यान रख सकता है।

दशहरा क्षत्रियों का त्यौहार है। रणभूमि में जाने के लिए उसे अस्त्र-शस्त्रों की आवश्यकता होती है, इसलिए इस दिन शस्त्रों की सफाई व धार लगा के पूजा का विधान बन गया। वर्षाकाल के पश्चात् ही यह त्यौहार आता है। वर्षाकाल में हथियारों पर जंग लग जाया करता है। उसे अब साफ नहीं किया गया तो कब किया जाये। युद्ध की सम्भावनाएँ वर्षाकाल के बाद सदैव ही बनी रहती थीं। इसी लिए आज के दिन हथियारों को साफ करके पूजा का विधान चल पड़ा। इनकी पूजा करने का एक और अर्थ यह भी था, अपने अन्नदाता के प्रति नतमस्तक होना। आज यह पर्व भगवान राम की रावण पर विजय व शक्ति पूजा के रूप में उत्तर प्रदेश व अन्य प्रान्तों में प्रचलित है।

दीपावली का त्यौहार वैश्यों का त्यौहार माना जाता है। नयी फसल खलिहानों में होती है और वैश्य इसे खरीदकर अपने गोदामों में लक्ष्मी के रूप में भरते हैं। इसी लिए वे विघ्ननिवारक गणेशजी तथा धन की देवी लक्ष्मी जी का पूजन करते हैं, दीपदान करते हैं।

वैदिक साहित्य में ब्रह्मा का पूर्व रूप प्रजापति तथा शिव का रुद्र में मिलता है। विष्णु वहाँ सूर्य का नाम है, जिसके तीन पग प्रभात, मध्याह्न तथा सन्ध्या हैं जिनसे वह सम्पूर्ण पृथ्वी, आकाश को नाप देता है। ब्रह्मा जीवन देने वाले, विष्णु पालन करने वाले तथा शिव संहारक हैं। हम दैनिक जीवन में भी उसी व्यक्ति को अधिक मान्यता देते हैं जो कि किसी का पालन करता है। मानव शिशु का जन्म प्रायः नौ माह माँ के गर्भ में रहने के पश्चात् होता है, जबकि उसको पालने में १६

से २२ वर्ष तक लग जाते हैं। इसके बाद ही वह कुछ जीविकोपार्जन योग्य हो पाता है, पर उसे मारना एक सैकंड से भी कम का काम है। वृंदक की नाल दबाओ कि जीवन लीला समाप्त, तलवार का वार करो कि बोलती बन्द। फिर कौन बढ़ा व कौन छोटा? मृत्यु से हमें डर लगता है। स्वाभाविक रूप से ही बिना कष्टों के हम मरना चाहते हैं। पाप चाहे कितने करें, दुष्कर्म भी करते हैं और फल भी पाना चाहते हैं। इसलिए पालनकर्ता विष्णुजी की पूजा करते हैं और शिव जी की भी। शिव को क्रोध नहीं दिलाना चाहिए, इसलिए आदिकाल से शिव की पूजा-आराधना होती आ रही है। कल्याणकारी शिव जितने भक्तवत्सल हैं, उतने ही क्रोधी भी।

विष्णु का ही दूसरा नाम सूर्य है।^१ सूर्य की ऊष्मा के बिना जीवन सम्भव नहीं। कृषि भी सूर्य की ऊष्मा पर निर्भर करती है। कृषि का अच्छा या बुरा होना जहाँ एक ओर कृषकों के अथक परिश्रम का फल है, वहाँ दूसरी ओर हवा, धूप व वर्षा की यथेष्ट मात्रा पर भी निर्भर है। इसीलिए विष्णु की पूजा केवल पालनकर्ता विष्णु के रूप में ही नहीं बरन् उनके दशावतार के रूप में भी बहुत होती है। उनके दो अवतार कृष्ण व राम तो भारतीय जनमानस में बहुत लोकप्रिय हुए। उन्हीं राम को रावण पर विजय प्राप्त करने के बाद अवध लौटने पर अयोध्यावासियों ने दीपदान देकर स्वागत किया था। भगवान राम, हनुमान, विष्णु व लक्ष्मी जी सभी की पूजा इस दिन की जाती है।

लक्ष्मी जी की पूजा इस दिन बहुत धूमधाम से की जाती है। लक्ष्मी का अर्थ है धन, इसलिए लक्ष्मी जी को धन प्रदान करने वाली अर्थात् अन्नपूर्णा व जीवन की सम्पन्नता कहते हैं। भारतीय समाज में लक्ष्मी जी की पूजा उस समय होती है जब पावस ऋतु की समाप्ति पर घर और बाहर गन्दा दिखाई देने लगता है, उस समय घर को लीप-पोत कर साफ करने में क्या हानि? पर हमारे बुजुर्ग जब कहते हैं कि दीवाली आ गई है, पुताई करवा लो, तब हम विदक जाते हैं, कहते हैं कि पुताई तो कभी भी हो सकती है। ये कथन अधिकतर विकसित समाज में ही सुनाई पड़ता है पर अविकसित समाज इसे लक्ष्मी जी के आह्वान रूप में लेता है और पुताई-सफाई या तो अपने आप कर लेता है या फिर करवा लेता है।

दीपावली का त्यौहार इस मौसम के विभिन्न प्रकार के कीट-पतंगों के लिए कालरात्रि बनकर आता है। प्रकाश पसंद कीड़े व पतंगे इन दीवों में गिरकर व जलकर मर जाते हैं, खरीफ की फसल जो कटने के बाद खलिहानों तक पहुँच जाती है तथा रबी की फसल जो बोई गई होती है, इन नुकसान पहुँचाने वाले अनगिन कीड़े-मकोड़ों से बच जाती है।

लक्ष्मी जी का वाहन उल्लू है जोकि रात के समय कीड़े-मकोड़े खाकर ही अपना पेट भरता है। लक्ष्मी जी का आसन कमल पर है जो कि कलाओं का प्रतीक है। लक्ष्मी जी को अभिषेक करते हुए हाथी, जोकि अपनी गहनता के लिए प्रसिद्ध

हैं, प्रत्येक वस्तु को नाप-तोलकर परीक्षण करके ही मुख में रखता है, भारी से भारी बाधक वस्तु को दूर फेंक देता है। बड़े-बड़े कानों से हल्की से हल्की आहट भी सुन लेता है। लक्ष्मी के एक हाथ में धान की बालियाँ धन का प्रतीक हैं, दूसरे हाथ का घट पाँच तत्त्वों का प्रतीक है। लक्ष्मी जी कर्म की प्रेरणा हैं क्योंकि बिना कर्म के न तो धरती पर हल चल सकता है और न बीज ही बोये जा सकते हैं तथा न सिंचाई, न फल की प्राप्ति।

लक्ष्मी जी के साथ ही गणेश जी पूज्य हैं, जिनके एक हाथ में परशु है जो विघ्नों को काटता है तथा दूसरे हाथ में पाश है जो बाधाओं को बाँधकर सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है। तीसरे में मोदक है जो गणों को मोद देने का प्रतीक है और चौथा हाथ अभय मुद्रा में उठा हुआ है। वाहन भूषक उस सूक्ष्म काल का प्रतीक है जो समय को क्षण-क्षण कुतरता रहता है। भूषक से विघ्नों का दोध भी होता है क्योंकि उसके समान सकारण ही नहीं, अकारण भी मूल्यवान वस्तुओं को नष्ट करने वाला दूसरा लघु जीव नहीं है। उस पर आरुढ़ होकर ही गणेश जी उसे अनुशासन में रखते हैं।

इस प्रकार लक्ष्मी यदि कर्म की प्रेरणा है तो गणेश हमारे प्रयत्न मार्ग की बाधाएँ दूर करके कर्म को सिद्धि तक पहुँचाते हैं, अतः दोनों देव प्रतीक हमारे जीवन की सम्पूर्णता और सफलता के पर्याय हैं, रिद्धि-सिद्धि के प्रतीक हैं।

देवउठान एकादशी का भी वैज्ञानिक महत्व कम नहीं है। देवउठान एकादशी के सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में विभिन्न प्रकार के भूमि अलंकरणों को गोबर से लीपी गई भूमि पर गेरू-चावल के पीठे, ऐपन तथा विभिन्न रंगों से बनाते हैं। फिर चौक के बीच में तुलसी का खिरवा या कृष्ण अथवा विष्णु या फिर उनके चरण बना दिये जाते हैं। गन्ने का मण्डप उस चौक के चारों ओर छा दिया जाता है और उस समय के आने वाले फल, सिंचाई, गन्ना, शकरकन्दी, गुड़, वैंगन, चावल तथा विभिन्न प्रकार की नयी सब्जियों आदि से भोग लगाया जाता है, तत्पश्चात् प्रसाद रूप में बाँट दिया जाता है। विष्णु को घंटा व थाली बजाकर उठाते हैं और दीपक से आरती उतारते हैं, 'उठो देव, उठो देव, क्वारों की सगाई, ब्याहे का गौना, गौना को लड़का देवो देव, सुख देवो देव।' इस समय तुलसी का विवाह विष्णु अथवा कृष्ण से करने की भी प्रथा है।

उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में विवाह चार माह बन्द रहते हैं, चैमासे तथा खेतों पर बहुत अधिक काम होने के कारण। खरीफ की कटाई व रबी की बुवाई चलती रहती है। वर्षा ऋतु के कारण जगह-जगह गन्दगी भी दिखाई पड़ती है, मौसम भी ऐसा नहीं होता कि अच्छे कपड़े पहन कर कहीं जाया जा सके, आवागमन के साधन अस्त-व्यस्त रहते हैं। इसी कारण प्रथम तो कृषक जैसे ही कुछ मौसम अच्छा होता है घर-बाहर की सफाई में लग जाता है। गाय-भैस की देखभाल करता है, खरीफ की फसल काटकर खलिहानों में डालता है तथा दीपावली के समय तक

कीट-पतंगों से छुटकारा पाने का हर सम्भव प्रयत्न करता है और इसके बाद ही वह शादी-विवाह आदि करने की सोचता है।

देवउठान एकादशी पर बहुत से नये फल व सब्जियाँ आ जाती हैं। अनाज के गोदाम भरे होते हैं, मौसम भी अच्छा हो जाता है। फूलों से क्यारियाँ भर जाती हैं, शरद का आगमन अच्छा लगने लगता है। कीट, पतंगे, मच्छर, मकड़ी आदि भी कम हो जाते हैं। कामदेवता अपना प्रभाव सर्वत्र पशु-पक्षी, फल-फूल, लताओं आदि के साथ स्त्री व पुरुषों में भी डालते हैं। सहवास की कामना बढ़ती है, जिसका सरल-सा उपाय है: स्त्री-पुरुष का मिलन, जो केवल सगाई, विवाह अथवा गौने की रस्मों द्वारा ही सम्भव है। हमारे ऋषि-मुनियों ने कितनी चतुराई के साथ इस त्यौहार का श्रीगणेश किया होगा, यह तो समझ में आता है। कितना सुंदर और वैज्ञानिक पक्ष है उपरोक्त त्यौहारों का जिसको पिछले एक हजार वर्षों से अधिक समय की गुलामी ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

अब देखिए जनजीवन का सबसे अधिक उल्लासमय त्यौहार होली। यह जन-समाज का अत्यन्त लोकप्रिय त्यौहार है जिसे आरम्भ में शूद्रों का त्यौहार कहा गया था पर आज सभी का त्यौहार है। इसका आरम्भ लोकोत्सव के रूप में आरम्भ हुआ था। यह त्यौहार वसन्त आगमन के कुछ दिनों बाद आता है, जाड़ा दूर जाता तथा गर्मी पास आती नज़र आती है, मौसम में हल्की-सी ठंडक। इस समय खेतों में गेहूँ, चना, जौ व सरसों की बालियाँ पकने को तैयार खड़ी दिखाई पड़ती हैं। इससे पहले कि वह पककर कटने के लिए तैयार हों हमारे कृषक अग्नि में इसका होम डालते हैं। इसको हम दूसरी तरह से भी कह सकते हैं कि शीतकाल की जड़ता त्याग कर प्रकृति देवी जब नये रूप-रंग और साज-सिंघार से शोभित हो प्रतिवर्ष आविर्भूत होती है, तब चिरकाल से भारत के निवासी अगवानी करते आये हैं। 'फाल्गुन की पूर्णिमा इसका चरम बिन्दु माना गया है। वैदिक काल में इसी दिन से नववर्ष का शुभारम्भ माना जाता है तथा कर्मकाण्डी लोग इसी दिन से प्रथम चातुर्मास्य से सम्बन्धित वैश्व देव यज्ञ का श्रीगणेश करते थे। लगभग तीसरी शताब्दी में रचित वात्स्यायन के कामसूत्र में इस उत्सव का नाम 'होलाका' दिया गया है। इसी प्रकार के कथन हम कालिदास द्वारा रचित ग्रन्थों, श्री हर्षदेव की 'रत्नावली नाटिका' के प्रथमांक में तथा 'नारदपुराण' में पाते हैं। बाद में इसी होली के उत्सव को होलिका-दहन, हिरण्याकम्पय व भक्त प्रह्लाद से सम्बद्ध कर दिया गया। इस प्रकार विष्णु के नृसिंह अवतार से जुड़ते ही इस त्यौहार ने धर्म का बाना पहन लिया और आज लोग इस त्यौहार के लौकिक पक्ष राग-रंग, नृत्य-गायन, हंसी-मजाक व रंगों से होली खेलना आदि से लेकर होलिका-दहन से सम्बन्धित धार्मिक पक्ष के साथ खूब धूमधाम और उल्लास से मनाते हैं। 'होली' के रूप में स्थान-स्थान पर यज्ञ करके वातावरण को शुद्ध बनाते हैं और नये अनाज को अग्नि को चढ़ाने के बाद अपने निजी प्रयोग में लाते हैं। यह त्यौहार हास-परिहास

तथा आपसी भेदभाव को भूल कर प्यार व स्नेह का त्यौहार है, जिसको सभी वर्णों के लोग मिलकर मनाते हैं। वास्तव में यह त्यौहार भी सत्य की असत्य पर विजय की बात बतलाता है।

लोककला से सम्बन्धित प्रत्येक लोककथा अपने में ज्ञान का खजाना छिपाये हुए है। सभी का एक ही निचोड़ है कि सत्य की सदैव असत्य पर विजय होती है, परोपकारी व्यक्ति को सदैव सम्मान प्राप्त होता है, ईर्ष्या व जलन और धन-लोलुपता परिवार की शान्ति नष्ट कर देती है। सफाई आदि करने से विभिन्न प्रकार के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। सामाजिक जीवन में स्त्री का स्थान 'माँ' होने के कारण ऊँचा है, वह अपने परिवार के कल्याण के लिए व्रत और अनुष्ठान करती है। परिवार के कल्याण में ही उसका हित है। भाई को बहन की रक्षा का भार सहर्ष स्वीकार करना चाहिए और सम्बन्धों की मधुरता बनाये रखने के लिए भाभी को नन्द, देवरानी को जिठानी तथा बहुओं को सास की पूजा करने के बाद नेमचार आदि देने चाहिए। यों तो समाज में बहुधा यह देखने में आता है कि बहु के मन में लालच व स्वार्थ भर जाता है और वह अपनी वृद्धा सास व ससुर की विल्कुल भी देखभाल नहीं करती है।

इन पर्वों के समय के लोकाचार, जोकि इनसे जुड़ी कथाओं में तथा पूजन-विधि में निहित होते हैं, अपनी सास, जिठानी, देवरानी, नन्द व भाभी भाई को मान-सम्मान देना व प्रेम से रहना अनायास ही सिखला देते हैं।

विभिन्न त्यौहारों व उत्सवों में दैनिक जीवन से अलग कुछ खाना बनाने व खाने का विधान है। व्रत रखने का भी विधान है, जिसका एक फल तो यह होता है कि एक दिन फलाहार रहकर अन्न को बचा लिया जाता है, जोकि हमारे समाज के लिए ही काम आता है। इसका ज्वलंत उदाहरण कुछ वर्षों पूर्व स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा अन्न की कमी की ओर संकेत करते हुए एक सप्ताह में एक समय न खाने की अपील थी और अधिकांशतः लोगों ने जिन्हें अपने देश से प्रेम था, स्वेच्छा से एक दिन फलाहार करना स्वीकार कर लिया था। फलाहार रहने का दूसरा लाभ अपने स्वास्थ्य को भी सुधारना है। आधुनिक युग में अधिकांश डॉक्टर सप्ताह में एक बार फलाहार के लिए परामर्श देते हैं। इस तरह हम कह सकते हैं कि खाद्य समस्या का कितना सुंदर समाधान हमारे पूर्वजों ने निकाल लिया था जो विभिन्न उत्सवों और त्यौहारों पर फलाहार के नाम पर था। फलाहार न केवल हमारी खाद्य-समस्या का सुंदर समाधान है वरन् हमें विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों के खाने को प्रोत्साहन भी देता है।

प्रायः प्रत्येक त्यौहार पर व्रतों के साथ कुछ विशेष प्रकार के मिष्ठान व खाद्य पदार्थों के ही खाने का विधान है। फलाहार के रूप में कूटू तथा सिंघाड़े के आटे का प्रचलन प्रायः सभी जगह है। इसके अलावा हरछट पर तिल्ली का चावल व महुआ का साग, संक्रान्ति पर खिचड़ी व पापड़, गणेश चतुर्थी (संकट चौथ) पर

तिलकूट, दीपावली पर खील-बताशे और खाँड के खिलौने, नागपंचमी पर सेमई व खीर, नवरात्रि के दिनों में उबले हुए चने व सूजी का हलवा, महालक्ष्मी पर बेसन के विभिन्न नमकीन व मीठे पकवान, करवा चौथ पर चावल के चिवड़े व बताशे, देवउठान पर विभिन्न प्रकार के फल-शकरकन्दी, सिंघाड़े व गन्ना तथा होली पर तरह-तरह का बेसन, खोये व गेहूँ के आटे से बने पकवान व दही बड़े आदि तथा निर्जला एकादशी पर बिना कुछ खाये-पिये रहने का विधान प्रचलित है। इसी प्रकार अन्य त्यौहारों के साथ भी विभिन्न प्रकार के मिष्ठानों आदि के बनाने का प्रयोजन विभिन्न खाद्य पदार्थों का प्रयोग तथा खाद्य समस्या का निदान भी प्रस्तुत करता है, जिसको भारतीय जनता युगों-युगों से पूजा के विधान की आड़ में मानती चली आ रही है।

गोबर, जिसके प्रयोग का प्रचलन प्रायः सभी प्रकार के भित्ति अलंकरणों व भूमि अलंकरणों के बनाने में होता है, सूर्य की रेडियोधर्मी किरणों के दुष्प्रभावों से हमें बचाता है। गाय के गोबर का युगों से हमारे वैद्य एक गुणकारी औषधि के रूप में प्रयोग करते आये हैं। तुलसी, जिसको चरणामृत के रूप में प्रायः सभी त्यौहारों में पूजा के समय लेते हैं, आयुर्वेदिक औषधि के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसी तरह से आम, आंवला, केला, बटवृक्ष, नीम, पीपल के वृक्षों का किसी न किसी रूप में आयुर्वेदिक औषधियों में प्रयोग किया जाता है। विभिन्न पशु-गाय, घोड़ा, हाथी, स्याऊ, पक्षी, तोता, मोर, नीलकंठ, कौवा, फूल—कमल व अन्य विभिन्न प्रकार के आलंकारिक फूल, फल—मुपारी, आम, केला, नीबू, नारियल, मखाने, सिंघाड़े, कूटू, चिरौजी, खरबूजे के बीज आदि, अनाज—गेहूँ, जौ, चना व चावल आदि की भी लोक मानव पूजा करता है अथवा पूजा के समय उपयोग में लाता है। उपरोक्त सभी के अपने-अपने गुण हैं। इसी प्रकार सूर्य प्रकाश और ऊष्मा को देने वाला, चन्द्र शीतलता व विश्राम प्रदान करने वाला, नाग फसल को विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तुओं से बचाने वाला, अग्नि शुद्धि और ऊष्मा के लिए, जल जीवन देने के लिए, समीर जीवित रखने के लिए और पृथ्वी जीवन को बनाये रखने के कारण ही लोकमानव की शताब्दियों से प्रिय और मान्य रहे हैं।

इस प्रकार लोककला सदियों से अपने धार्मिक व लौकिक पक्ष के माध्यम से विकसित व अविकसित समाज को परोक्ष व अपरोक्ष रूप से प्रभावित कर रही है। ज्यों-ज्यों हम इनके धार्मिक व लौकिक पक्ष के वैज्ञानिक तथ्य से परिचित होते जायेंगे, वैसे ही वैसे इस प्रदेश का समाज अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति आकृष्ट होता जायेगा और विकसित समाज इनके वैज्ञानिक तथ्य को न केवल स्वयं समझेगा बरन अपने अविकसित समाज को भी समझा सनेगा। लोककला में बनाये जाने वाले प्रतीकों को समझेगा और उन कलाकृतियों को केवल फैशन की आड़ लेकर नहीं बनायेगा बल्कि उनके अर्थों को समझकर भित्ति व भूमि को अलं-

कृत करेगा, कयाओं से शिक्षा ग्रहण करेगा और अपने परिवार, समुदाय, जाति व देश को आगे बढ़ायेगा, उसके कल्याण की कामना करेगा व हिन्दू संस्कृति में फिर वही सरसता व मधुरता भर देगा जो कभी हिन्दू धर्म में व्याप्त थी व जिसकी सुगंध से देशों दिशाएँ सुवासित थीं ।

पाद-टिप्पणियाँ

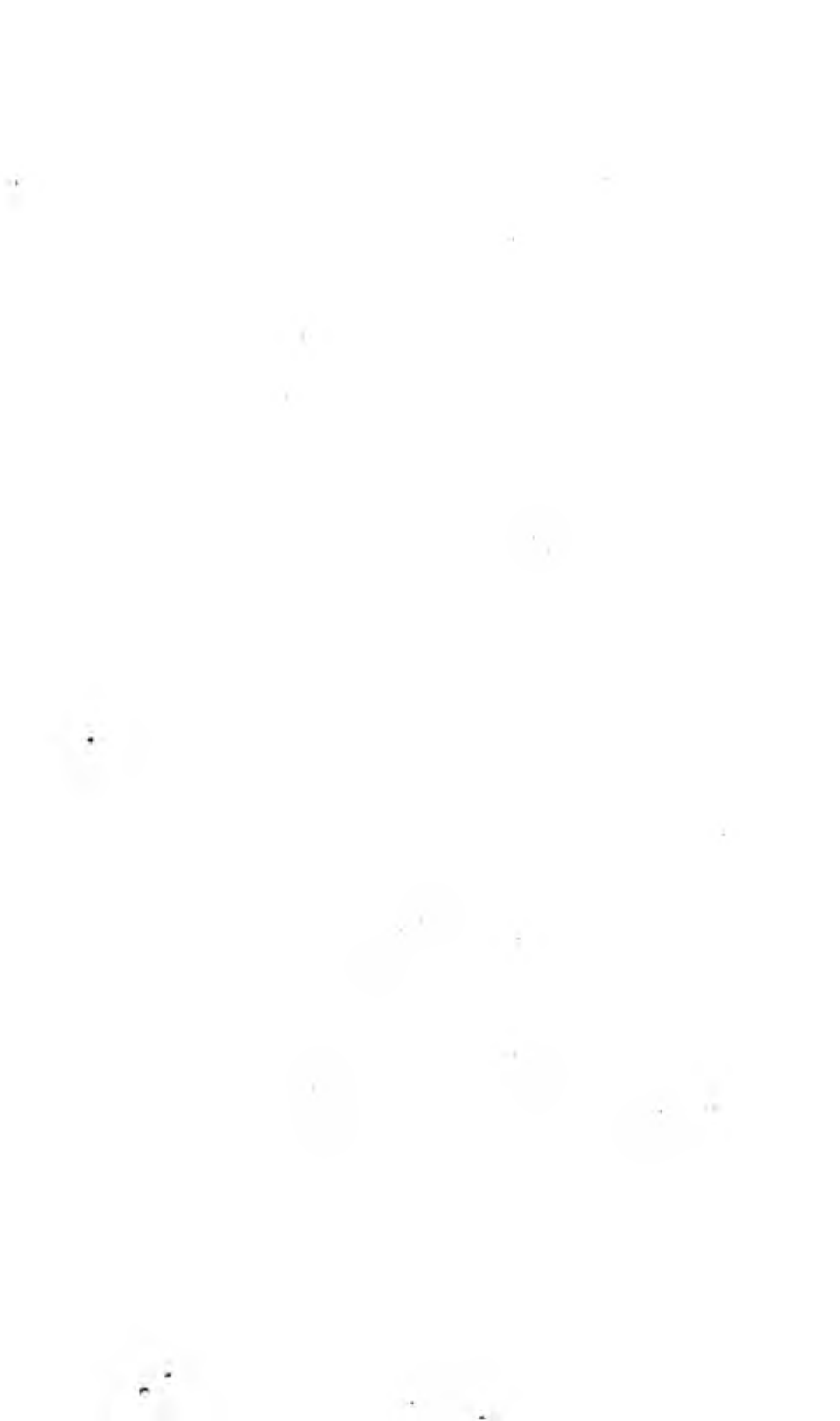
१. डॉ० इन्दुमती मिश्र, 'प्रतिमा विशान', पृ० २६३
२. देखिए 'हीलाका' आर्किस्लाजिकल सर्वे रिपोर्ट : १६०३-४, पृ० १२४-१२५
३. कालिदास, 'रघुवंश' ६।४६, 'शाकुंतलम्', पृ० १८६, १६१
४. मन्मथ राय, 'हमारे कुछ प्राचीन लोकोत्सव', पृ० ६१-६२
५. तिन्नी : एक प्रकार का चावल जो उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्रों में अपने आप ही उगता और पकता है तथा फलाहार के काम में आता है ।



पंचम अध्याय

लोककला में
भावात्मक एकता के तत्त्व

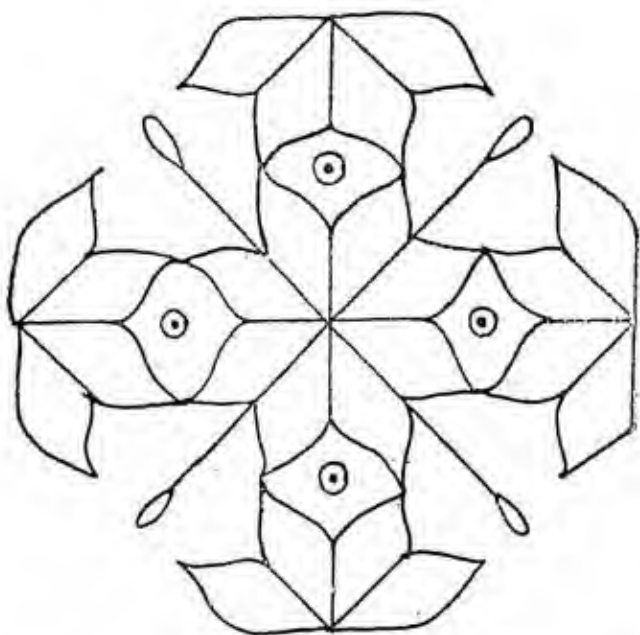




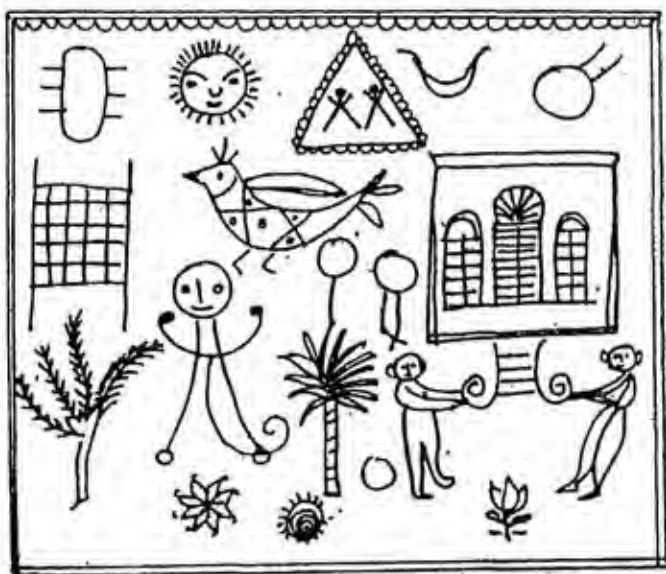
सांस्कृतिक चेतना के इस युग में यदि विभिन्न वर्णों की लोककला का अध्ययन किया जाये तो उनकी ओर हमारा आकर्षण बढ़ता ही जायेगा और यह भी देखने को मिलेगा कि बाहरी भिन्नता के रहते हुए भी उनका मूल उद्देश्य एक ही है। प्रायः सभी लोकपरक कलाएँ एक ही भावना से प्रेरित होती हैं। लोककलाएँ सामाजिक आनन्द, सामाजिक प्रतिभा एवं मानव के रागात्मक पक्षों की एक सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं।

विविध ऋतुओं पर आधारित सभी भारतीय त्यौहारों को ही देख लीजिए। वे चाहे सम्पूर्ण भारत के हों या फिर किसी एक क्षेत्र के अथवा जाति विशेष के, एक ही धारा में प्रवाहित होते हैं। साँझी के त्यौहार को किस तरह उत्तर प्रदेश की क्वारी कन्याएँ बड़े हर्षोल्लास के साथ मिल-जुलकर मनाती हैं, उसी प्रकार राजस्थान, हरियाणा और पंजाब की कुँआरी कन्याएँ भी। सभी जगह कन्याएँ साँझी को दुर्गा या गौरा देवी के रूप में मानती हैं। उसी की आराधना करती, प्रभात व संध्या समय गीत गाती व आरती उतारती हैं तथा उससे वर व घर पाने की कामना करती हैं। राजस्थान व उत्तर प्रदेश के स्थानों में क्वारी लड़कियाँ गोबर व मिट्टी से प्रतिदिन साँझी देवी से सम्बन्धित नई चित्रकारी करती हैं और अमावस्या को कोट की सजावट, कौड़ो व सीप, शीशे के टुकड़े, पन्नी, रंग-बिरंगे कागजों से लेकर मिट्टी के बने गहनों को रुपहले या सुनहरे रंग से रंग देती हैं। साँझी का उत्सव जहाँ एक ओर क्वारी कन्याओं की कलात्मक प्रवृत्ति को उभारने का उत्सव है, वहीं दूसरी ओर अच्छा घर व वर पाने की मनोकामना भी। कहीं-कहीं उत्तर प्रदेश में यह उत्सव संजिया देवी के नाम से केवल नौ दिन ही नवरात्रि के दिनों में मनाया जाता है और कहीं केवल अमावस्या को कोट ही साँझी देवी के रूप में बनाया और सजाया जाता है। इस उत्सव का महत्व पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, मध्यप्रदेश में साँझी के रूप में तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में (इलाहाबाद आदि) संजिया देवी के रूप में अधिक है। इस अवसर पर बनाये जाने वाले अभिकल्पों और कथाओं में भी समानता है।

इसी से मिलता-जुलता एक अन्य उत्सव न्यौरते उत्तर प्रदेश के रहेली, कन्तौजी व अवधी क्षेत्र की विशेषता है, जिसको वहाँ न्यौरता या नीरारते कहते हैं। इसे क्वार की नवरात्रि में नौ दिन तक मनाया जाता है और अन्तिम दिन शिव व गौरा का विवाह रचाकर उत्सव की समाप्ति की जाती है। इस व्रत के द्वारा क्वारी लड़कियाँ शिव के समान वर तथा गौरा के समान अमर सुहाग की कामना करती हैं। इन्हीं क्षेत्रों का एक अन्य त्यौहार चंदा तरैया है, जिसको सिमरा-सिमरी के नाम से भी लोग जानते हैं। यह क्वार की अमावस से शुरू होता है और नवरात्रि के आखिरी दिन पण्डित बुलवाकर विधिवत सिमरा-सिमरी का ब्याह करा के समाप्त हो जाता है। इस समय गुड़ियों-गुड़्यों को सजाने में लड़कियों के हाथों की निपुणता देखते ही बनती है। कन्याएँ खेल-खेल में ही विवाह के संस्कारों, गाये जाने वाले



चित्र ६८-क : ऊपर के भाग में नारे सुनटा का चोक (भूमि अलंकरण) और नीचे के भाग में साँझी का भित्ति चित्रण है।



चित्र ६८-ख : ऊपर के भाग में सुजति नामक भित्ति चित्रण (पश्चिम बंगाल) और नीचे के भाग में भोलड़ा (महाराष्ट्र) का चित्रण दिया गया है।

गीतों, दान-दहेज में दिए जाने वाले सामान आदि का ज्ञान भी प्राप्त कर लेती हैं।

बुंदेलखण्ड के क्षेत्र में क्वारी लड़कियों का त्यौहार नारे सुअटा व मामुलिया हैं जिसका कलात्मक पक्ष विभिन्न प्रकार के भूमि अलंकरणों के रूप में मन मोह लेता है। नारे सुअटा भी नवरात्रि के समय का ही त्यौहार है। इसमें गौर की स्थापना पंचमी से होती है तथा दशमी को यह खेल समाप्त कर दिया जाता है। दशमी की संध्या से यह खेल दूसरे नाम से, जिसको ढिरिया कहते हैं, प्रारम्भ होकर पूर्णमासी को समाप्त हो जाता है। मामुलिया भाई-बहन के प्रेम से सम्बन्धित एक अन्य त्यौहार है, जो लोकप्रियता में साँझी से कम नहीं। भोजपुरी क्षेत्रों में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अगहन शुक्ल प्रतिपदा तक करीब एक मास तक पिड़ियों का त्यौहार मनाया जाता है। इसमें भी लड़कियाँ गोबर या फिर मिट्टी से छोटे गोल पिण्डों से मनुष्याकृति बनाती हैं। व्रत की समाप्ति पर कथा सुनती हैं और नये चावल व गुड़ से पूजन करने के पश्चात् समाप्त करती हैं। बंगाल की क्वारी कन्याएँ भी, भाई के कल्याण, सुखमय भविष्य एवं धन की प्राप्ति के लिए सुजति नाम के त्यौहार को मनाती हैं। महाराष्ट्र में कुमारियाँ शारदीय नवरात्रि में भुला-बाई तथा भोड़ला आश्विन मास में सोलह दिन खेलती हैं। भोड़ला में लकड़ी के पाट पर हस्ति (हाथी) को चित्रांकित करके उसके चारों ओर नाचती-गाती व पूजा करती हैं। नारे सुअटा, मामुलिया, सुजति, साँझी, भोड़ला, आदि के अवसर पर बनाये जाने वाले कुछ चित्र दिये जा रहे हैं (चित्र : ६८ व ६९)।

उपरोक्त वर्णित सभी क्वारी लड़कियों के त्यौहारों के अध्ययन से कुछ तथ्य सामने आते हैं :

(१) बचपन से ही क्वारी कन्याएँ अपने लिए शिव के समान वर तथा गौरा के समान अमर सुहाग की कामना करती हैं तथा भाई की मंगलकामना के लिए सदैव इच्छुक रहती हैं।

(२) प्रत्येक त्यौहार के माध्यम से विभिन्न प्रकार की लोककथाएँ सुनती हैं तथा विभिन्न संस्कारों से अवगत होती हैं। पितृकुल का सम्मान तथा वैवाहिक जीवन में सुख-दुख तथा कर्तव्य व अधिकार से अवगत होती हैं। धर्म के प्रति श्रद्धा संजोती है, पूजा-अर्चना व आराधना की विधि सीखती हैं तथा साथ ही साथ संयम से रहना सीखती हैं क्योंकि सभी त्यौहारों में प्रातःकाल ही नहाने के बाद पुण्यबेला में कलात्मक अभिकल्पों के बनाने का तथा पूजा-अर्चना के बाद ही खाने का विधान है।

(३) इन त्यौहारों के माध्यम से वे गान और नृत्य-विद्या सीखती हैं। प्रायः सभी त्यौहार सम्बन्धी आराधना व सांध्य गीत, श्रृंगार व करुण रस से ओतप्रोत सरल व हृदयग्राही होते हैं, जिनको पूजा के समय अथवा चित्रकारी करते समय गाने का विधान है।

(४) उपरोक्त सभी त्यौहार/उत्सव क्वारी कन्याओं के ही हैं, जिनकी समाप्ति

विवाह के बाद प्रथम वर्ष में उद्यापन करके अथवा यों ही हो जाती है। केवल चन्दा तरैया/सिमरा सिमरी ही जब तक चाहें, तब तक विवाहित कन्या भी कर सकती है।

इस प्रकार विवाह की आयु के समीप ज्यों-ज्यों कन्याओं की उम्र आती जाती है, वे जानती जाती हैं कि अच्छे घर व घर में ही उसका सुख, सौभाग्य, सुहाग, समृद्धि व कल्याण निहित है। वे यह भी समझने लगती हैं कि मैं केवल मैं ही नहीं वरन् पूरे परिवार की एक सदस्या हूँ जिसमें माता-पिता, भाई-बहन, भावज, चाचा-चाची, ताऊ-ताई, दादा-दादी, मामा-मामी व नाना-नानी, देवर-देवरानी, जिठानी, ननद और सास-ससुर आदि भी सम्मिलित हैं तथा सभी के सुख व मंगल की कामना में ही पति व अपने परिवार की सुख-शान्ति निहित है। इस तरह क्वारी लड़कियों के द्वारा मनाये जाने वाले व्रत-अनुष्ठान चाहे वे उत्तर प्रदेश के हों अथवा राजस्थान, हरियाणा, बिहार, मध्यप्रदेश व बंगाल के, सभी एक ही भावना से ओतप्रोत है और हमारे लोकजीवन में भावात्मक एकता को बनाये हुए हैं।

इसी प्रकार करवा चौथ, अहोई व हर छठ आदि के व्रतों को ले लीजिए। ये तीनों ही त्यौहार पति की आयु बढ़ाने (अमर सुहाग) या पुत्र की मंगलकामना के लिए मनाये जाते हैं। इनसे जुड़ी कहानियों में कुछ पृथक्ता हो सकती है, पर भावों में नहीं। इसी प्रकार इन त्यौहारों से सम्बन्धित चित्रण में विषय की दृष्टि से कुछ अन्तर हो सकता है परन्तु चित्रण-सामग्री में अधिक नहीं। गोबर, चावल का पीठा, ऐपन तथा गेरू को सभी स्त्रियाँ शुभ मानती हैं। गोबर के कीटाणुनाशक गुण को सभी ने एक स्वर में स्वीकारा है। करवा चौथ व अहोई राजस्थान^१ व हिमाचल प्रदेश^२ में भी चित्रित की जाती है, तथा पुत्र प्राप्ति व पति की मंगलकामना हेतु ही मनाई जाती है (चित्र : १०० व १०१)।

दोनों ही तवरानि शारदीय व वासन्तीय को सभी ने पूज्य माना है। दुर्गा का सस्वर पाठ सभी एक ही तरह से करते हैं। तंत्रों के आधार पर निमित्त विभिन्न भूमि अलंकरणों का विधान एक-सा है और उनमें निहित कल्याण भावना से सभी एक समान प्रभावित हैं।

दशहरा पर रामलीला का होना सत्य की असत्य पर विजय को दर्शाता है। कृष्ण-लीला कर्मयोगी श्रीकृष्ण के बाल रूप से लेकर युवावस्था को क्रियाकलापों को बढ़ी सजीवता से प्रस्तुत करती है। जो कृष्ण बालरूप में चन्द्रमा लेने का हठ करता है, वही बड़े होकर रास-रंग में लीन भी होता है तथा समय आने पर एक कुशल कूटनीतिज्ञ और योद्धा की भाँति सैन्य-संचालन भी करता है और यही कृष्ण रणभूमि में गीता के माध्यम से कर्मयोगी का उद्देश्य भी समझा सकने की शक्ति रखता है। रामलीला व कृष्णलीला भारत के प्रत्येक प्रान्त में खेली जाती है और सदियों से भावात्मक एकता को भारत में बनाये हुए है। सम्पूर्ण भारत इन लीलाओं की एक ही तरह की भावना से ओतप्रोत होकर आनन्द प्राप्त करता है।

शिव और गौरा न केवल उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में अपितु सम्पूर्ण भारत में विभिन्न रूपों में पूजे जाते हैं और हमारी संस्कृति को एकता के सूत्र में बाँधते हैं। शिव से सम्बन्धित शिवरात्रि का पर्व जितनी धूमधाम से उत्तर प्रदेश में मनाया जाता है, उतनी ही धूमधाम के साथ भारत के अन्य क्षेत्रों में भी। इसी प्रकार विघ्ननिवारक गणेश जी अपनी रिद्धि-सिद्धि के साथ सभी जगह क्षेत्रीय विभिन्नता और विशेषता के साथ पूजनीय हैं।

ब्रह्मा जन्म देने वाले, विष्णु पालनकर्ता और शिव संहारक हैं। इस मत पर कोई विवाद नहीं। उनकी आदि शक्तियों सरस्वती, लक्ष्मी और गौरा हैं। इसको भी सभी सर्वसम्मत से मानते हैं। विष्णु के दशावतार पर किसी को कोई आपत्ति नहीं। राम और कृष्ण का चरित्र सभी को प्रिय है। राधा व सीता भी उतनी ही पूज्य हैं, जितनी सरस्वती व महालक्ष्मी व दुर्गा। इसी लिए विभिन्न देवी-देवताओं के अस्तित्व को हम बिना वादविवाद के स्वीकार करते हैं और उनसे सम्बन्धित कथा-कहानियों और घटनाओं को भी। भाषा अथवा लोकाचार में भले ही विभिन्नता हो किन्तु भावनात्मक एकता को बनाये हुए हैं। हमारी लोक संस्कृति के बहुत से उत्सव और अनुष्ठान इनसे सम्बन्धित हैं और सभी को मान्य हैं, जो न केवल उत्तर प्रदेश के लोगों को ही बल्कि सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में पिरोये हुए हैं।

रक्षाबन्धन का त्यौहार बहन की भाई द्वारा रक्षा के रूप में, नाग पंचमी का त्यौहार नागों को भाई या रक्षक के रूप में मानना तथा पूजा करना, दीपावली पर श्रीराम की रावण पर विजय प्राप्त करके अयोध्या लौटने के उपलक्ष्य में दीपदान द्वारा स्वागत करना, गोवर्द्धन को गोवर्द्धन पहाड़ की पूजा, भाई दूज पर यमुना-स्नान का माहात्म्य तथा भाई को टीका लगाने की प्रथा सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में बड़ी धूमधाम से अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ प्रचलित है, जो भावात्मक एकता को और भी दृढ़ बनाती है। यह संयुक्त परिवार की परम्परा की भावना को भी दृढ़ बनाती है।

रक्षा बन्धन पर जिस प्रकार पश्चिमी उत्तर प्रदेश के खड़ी व ब्रज बोली वाले प्रदेशों में चित्रण होता है, उसी प्रकार राजस्थान के भी कुछ क्षेत्रों में (चित्र : १०२ व १०३)। नागपंचमी पर भी नागपूजा सम्पूर्ण भारत में अपने-अपने ढंग से होती है परन्तु नागों का चित्रण करने का ढंग एक-सा है (चित्र : १०४)। गोधन के समय गाय आदि के खुरों का चित्रण भी राजस्थान, उत्तर प्रदेश व महाराष्ट्र में एक समान ही है।

दीपावली के समय बनाये जाने वाले चित्र न केवल उत्तर प्रदेश वरन् राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र व बंगाल को संस्कृति के एक ही सूत्र में पिरो देते हैं (चित्र १०५, १०६, १०७ व १०८)। यहाँ पर भी प्रदेशों के कुछ चित्र दिये जा रहे हैं, जिनको देखने से मालूम पड़ता है कि

विभिन्न प्रकार के भूमि अलंकरणों में लक्ष्मी जी के चरणों को विशेष महत्त्व प्राप्त है, इसके पश्चात् कमल, हाथी, स्वास्तिक, चौपड़, दीपों की आकृतियाँ, सूर्य-चंद्रमा, शृंगार की वस्तुएँ, फूल-पत्ती, पूर्ण कुम्भ, विभिन्न प्रकार के तंत्रों पर आधारित अभिकल्प, मछली, उल्लू, सीप-शंख आदि हैं। लक्ष्मी जी की आराधना उत्तर प्रदेश^१ व बिहार^२ में दो बार तथा बंगाल^३ में एक वर्ष में चार बार होती है। हिमाचल प्रदेश^४ तथा राजस्थान^५, मध्य प्रदेश^६, गुजरात^७, महाराष्ट्र^८ और दक्षिण^९ में वर्ष में एक बार ही पूजा होती है।

होली के समान रसमय त्यौहार कोई दूसरा नहीं। उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में फाग खेलने व होली/फाग/रसिया आदि गाने की प्रथा है। भारत का समस्त उत्तरी-पश्चिमी व पूर्वी भाग (दक्षिण को छोड़कर) होली की सतरंगी दुनिया में खो जाता है, यहाँ तक कि उस समय उपस्थित विदेशी नर-नारी व बालवृद्ध भी। लोकगीत व लोकनृत्यों की भरमार सभी को आनन्दविभोर कर देती है। इस समय तो भारत में राज्य करने वाले मुगल बादशाह भी रंग गये थे, उनके राजमहलों में भी होली उसी राग-रंग और मस्ती के साथ खेली जाती थी, जितनी कि राजपूतों के महलों में। धर्म की दीवारों से ऊँची उठकर होली के त्यौहार ने कुछ दिनों के लिए तो सबको एक कर दिया था।

देवउठान एकादशी जिस दिन तुलसी के बिरबे (पौधे) का विवाह कहीं कृष्ण और कहीं विष्णु के साथ कराया जाता है, भगवान विष्णु की शेष-शैया पर चार मास शयन करने के पश्चात् जगाने का उत्सव है। देवउठान से ही उत्तरी भारत के अधिकांश क्षेत्रों में शुभकार्य आरम्भ होते हैं तथा इसी दिन से नये आने वाले फल सिंघाड़ा, गन्ना, शकरकंदी तथा विभिन्न सब्जियाँ आदि खाने की गुरुआत भगवान के भोग लगाने के बाद की जाती है। यह त्यौहार न केवल उत्तर प्रदेश को ही वरन् विभिन्न प्रान्तों को एकता के सूत्र में पिरोये हुए है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश, बिहार व मध्य प्रदेश के कुछ भूमि अलंकरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनको देखने से ज्ञात होता है कि कितनी अधिक साम्यता रखते हैं (चित्र : १०६)।

उपरोक्त वर्णित त्यौहारों में से अधिकांश का सम्बन्ध ऋतु-परिवर्तन से है। कुछ त्यौहारों का सम्बन्ध परिवार की समाज की खुशहाली के साथ भी है। आरम्भ में अधिकांश त्यौहार लोकोत्सव थे, जो शनैः-शनैः धार्मिक बाना पहनते गये और आज अपने वैज्ञानिक महत्व के साथ-साथ धार्मिक भावना से ओतप्रोत होकर विधि-विधान से मनाये जाते हैं। पिछले पृष्ठों में इन त्यौहारों की वैज्ञानिक समीक्षा भी की गयी है।

प्रायः स्त्रियों के प्रत्येक व्रत, अनुष्ठान से सम्बन्धित एक कथा होती है। इन कथाओं का सार एक-सा होता है। फिर चाहे वह उत्तर प्रदेश की हो या राजस्थान, बंगाल, और मध्यप्रदेश आदि की—सत्य की असत्य पर विजय, वैर, ईर्ष्या

व धन की लोलुपता से परिवार की हानि, देवरानी, जिठानी, सास-देवर, भाभी व नन्द के सम्बन्धों को मधुर बनाये रखने की शिक्षा, पारिवारिक कलह से दूर रहने के उपाय, बिना किसी वर्णभेद के सखी बनाने का प्रोत्साहन, गरीबों पर दया, सभी वर्णों के लोगों को आदर देने की शिक्षा आदि, जो न केवल पारिवारिक कलह को दूर रखती है, वरन् एक स्वस्थ और समझदार समाज की रचना भी करती है। दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुओं की पूजा, जीवों पर दया, विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों की पूजा, सदैव नवीन अन्न, फल, सब्जी आदि का अग्नि को भोग लगाने के बाद स्वयं खाने का विधान, जीवन-शक्ति को देने वाले सूर्य-चन्द्र, वायु, अग्नि आदि ग्रहों की पूजा का विधान—हमारी लोककला की ही देन है।

ये कथाएँ जो व्रत-अनुष्ठान आदि से जुड़ी हैं, न केवल व्रत रखने वालों की मंगलकामना लिए हुए हैं वरन् इनमें सम्पूर्ण परिवार, जाति, समुदाय और देश के हित की भावना भी निहित है जिसके कारण भारतीय समाज में भावात्मक एकता दृष्टिगोचर होती है। जिस प्रकार लोककला की धार्मिक, वैज्ञानिक व सामाजिक पृष्ठभूमि समाज में एकता की द्योतक है तथा विभिन्न वर्गों व भाषा-भाषियों में एकता लाने की कुंजी है, उसी प्रकार इसका कला-पक्ष विभिन्न क्षेत्रों में बसने वाले विभिन्न भाषा-भाषी लोगों के लिए कला के विभिन्न प्रतीकों को प्रस्तुत करता है जो अपने गूढ़ अर्थों में एक समान ही अर्थ रखते हैं।

स्त्रियों में स्वभावगत (स्वाभाविक रूप से) अपने-अपने घर को सजाने की प्रवृत्ति होती है। सजी हुई प्रत्येक वस्तु सुन्दर व लुभावनी लगती है तथा उस घर की श्री लक्ष्मी को और नारी की सुघड़ता को दर्शाने वाली होती है। स्त्री व पुरुष सभ्यता के आदिकाल से एक साथ रहने के इच्छुक रहे हैं और उनका साथ रहना समाज के सामने विवाह-संस्कार के रूप में आया है। यही विवाह परिवार, परिवार-समुदाय, समुदाय, जाति व जाति-देश के रूप में हमारे समक्ष है। स्त्री का स्थान 'माँ' होने के कारण अधिक उच्च है। माँ का कर्तव्य है कि अपनी जान देकर भी बच्चे की देखभाल करना और जिस पुरुष के साहचर्य से इस बच्चे रूपी धन को प्राप्त किया है, उसकी मंगलकामना करना अर्थात् परिवार की मंगलकामना करना, उसको सँवारना एवं सजाना। साफ-सुधरा लिपा-पुता घर जब स्त्रियाँ अपनी अंगुलियों की सहायता से सजा देती हैं, तो उसकी छटा से सम्पूर्ण घर-आँगन शोभित हो जाता है और सुंदरता बोल उठती है। इसी लिए कहा जाता है कि ऐसे स्थानों पर जहाँ लीप-पोत कर घर-आँगन अलंकृत किया जाता है, देवता भी रहने को उतावले हो उठते हैं।

भारत की हिन्दू स्त्रियाँ विभिन्न व्रतों, त्यौहारों व अनुष्ठानों से सम्बन्धित कथाओं के अनुसार ही भूमि या भित्ति चित्रण करती हैं, जिनमें चन्द्रमा, सूर्य, नाग, मोर, तोता, हाथी, घोड़ा, स्याऊ, स्वास्तिक, शंख, कमल, कलश और विभिन्न

देवी-देवताओं की आकृतियाँ या फिर उनके प्रतीक सम्मिलित होते हैं। विभिन्न प्रकार के भूमि अलंकरण, जो तंत्र के ऊपर आधारित होते हैं, भी बनाये जाते हैं। बिन्दु, आड़ी-तिरछी रेखाओं, त्रिभुजों, चौकों (वर्गों), पंचभुज, षष्ठभुज पर आधारित ये भूमि अलंकरण घर, परिवार, समुदाय और राष्ट्र की मंगल-कामनाओं से भरपूर होते हैं। यह लोककला सम्बन्धी चित्र स्थानीय प्रभावों से प्रभावित होते हुए भी सार्वभौम होते हैं और भारतीय संस्कृति की एकता के द्योतक हैं (चित्र : ११०, १११ व ११२)।

लोककला की एक ओर विशेषता उसकी सर्वग्राह्यता है। सर्वसाधारण उसके महत्व से परिचित है। यह लोककला सांस्कृतिक मूल्यों के प्रसार की शक्तिशाली माध्यम है। संकेतवादिता तथा प्रतीकवाद लोककला की प्रबल शक्तियाँ हैं। सतिया (स्वास्तिक), शंख, चक्र, कमल, कलश, वृक्ष-खताएँ, चाँद-सूरज, नवग्रह आदि मंगलभावना के वाहक हैं। पारिवारिक चित्रांकन (माँ, पिता, भाई-बहन, सास-ससुर, देवर-देवराती, जेठ-जिठानी और बच्चे आदि) ठाट-बाट, पनघट, अट्टा-अटारी, चूल्हा-चक्की, बर्तन, झाड़ू आदि नित्यप्रति क्रियाशील जीवन के प्रतीक हैं और लोककला को सार्वभौमिक और सार्वकालिक बनाते हैं। इन सबमें सांस्कृतिक मर्यादा और राष्ट्रीय एकता के तत्त्व सर्वाधिक रूप से समाविष्ट हैं और हमारी भावनात्मक एकता को प्रदर्शित करते हैं। लगभग प्रत्येक राज्य के शुभावसरों पर बनाये जाने वाले कुछ चौक स्वास्तिक पर आधारित होते हैं (चित्र : ११३)।

यह लोककला हमारी सामाजिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती है, समाज के लिए दर्पण का कार्य करती है, यही समान रूप से मानव के अमूर्त भावों को प्रतीकों के मूर्त रूप में प्रस्तुत करती है। किसी भी प्रान्त में कोई भी शुभ अवसर हो, मंगल घट रखने का विधान है। कन्या को श्वेत व लाल रंग के बिन्दुओं से सजाने की प्रथा भी सभी प्रान्तों में पाई जाती है। पुष्पों से कन्या और वर को सजाना, घर और पूजा-स्थल को सजाना, सुहागरात के दिन कमरे को सजाना^{१५} तथा विवाह के समय बेदी आदि का निर्माण भी सभी प्रान्तों में लोकप्रिय है। शिशु-जन्म, छठी, दण्डन, नामकरण-संस्कार आदि अवसर पर निमित भित्ति या भूमि पर किसी न किसी प्रकार के अलंकरण होते हैं, जिन्हें बनाने की प्रथा आज भी विद्यमान है। वैवाहिक संस्कारों पर भी कुलदेवता की स्थापना, चौकों को पूरना, घड़ों को सजाना, यज्ञ-वेदिकाओं का निर्माण आदि सभी प्रांतों में पाया जाता है और यहाँ की लोककला का सार्वकालिक और सार्वभौमिक पक्ष प्रस्तुत करता है। विभिन्न राज्यों के विवाह के समय के कुछ भित्ति व भूमि चित्र इसी सन्दर्भ में यहाँ प्रस्तुत हैं (चित्र : ११४)।

भारतीय दर्शनशास्त्र में मृत्यु को भी प्रचुर महत्व दिया गया है, इसी लिए संसार की चलाचली की उस दारुण बेला में भी लोकमानव दीपक जलाकर रखना या

स्वास्तिक का बना देना या फिर ओ३म्, राम नाम सत्य है लिखना नहीं भूलता। इस तरह लोककला, जो बच्चे के जन्म के शुभावसर से प्रारम्भ होती है, मृत्युपर्यन्त चलती रहती है।

कुमारियों और ग्राम्य बालाओं ने इसे खेल-खेल में सीखा है और उसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाया है। अपना प्रेम, निष्ठा व आस्था देकर उसे इतना सशक्त बना दिया है कि आज उसका अपना एक पृथक् महत्त्व है। यह लोकरंजनी कला कभी-कभी धर्म का बाना पहन कर विभिन्न उत्सवों और त्यौहारों के रूप में हमारे सम्मुख आती है तो कभी शुद्ध लौकिक रूप में मनाये जाने वाले षोडश संस्कारों एवं ऋतुपरिवर्तन के उपलक्ष्य में मनाये जाने वाले त्यौहारों के रूप में। परन्तु कभी-कभी यह बिल्कुल ही अपना रूप बदल देती है और बाह्य-जगत् के विभिन्न खेलों के रूप में आकर मन को लुभा जाती है। इस लोकरंजनी कला के धार्मिक पक्ष में न केवल सधवाओं का ही अधिकार है वरन कुआरियों और विधवाओं का भी अधिकार है। यह कला इतनी अधिक उदार प्रवृत्ति की है कि कुछ उत्सवों में पूजा करने का अधिकार केवल पुरुषों को ही दे दिया गया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि यह लोकरंजनी लोककला हमारी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है, मानव को अनुरंजन और आनन्द प्रदान करती है और उसके अमूर्त भावों को सामाजिक, धार्मिक एवं ऋतुपरिवर्तन सम्बन्धी त्यौहारों और उत्सवों पर प्रतीक रूप में चित्रित करके देश, राष्ट्र, जाति, समुदाय और परिवार के कल्याण की कामना करती है तथा भावनात्मक एकता को सार्वभौमिक और सार्वकालिक बनाती है।

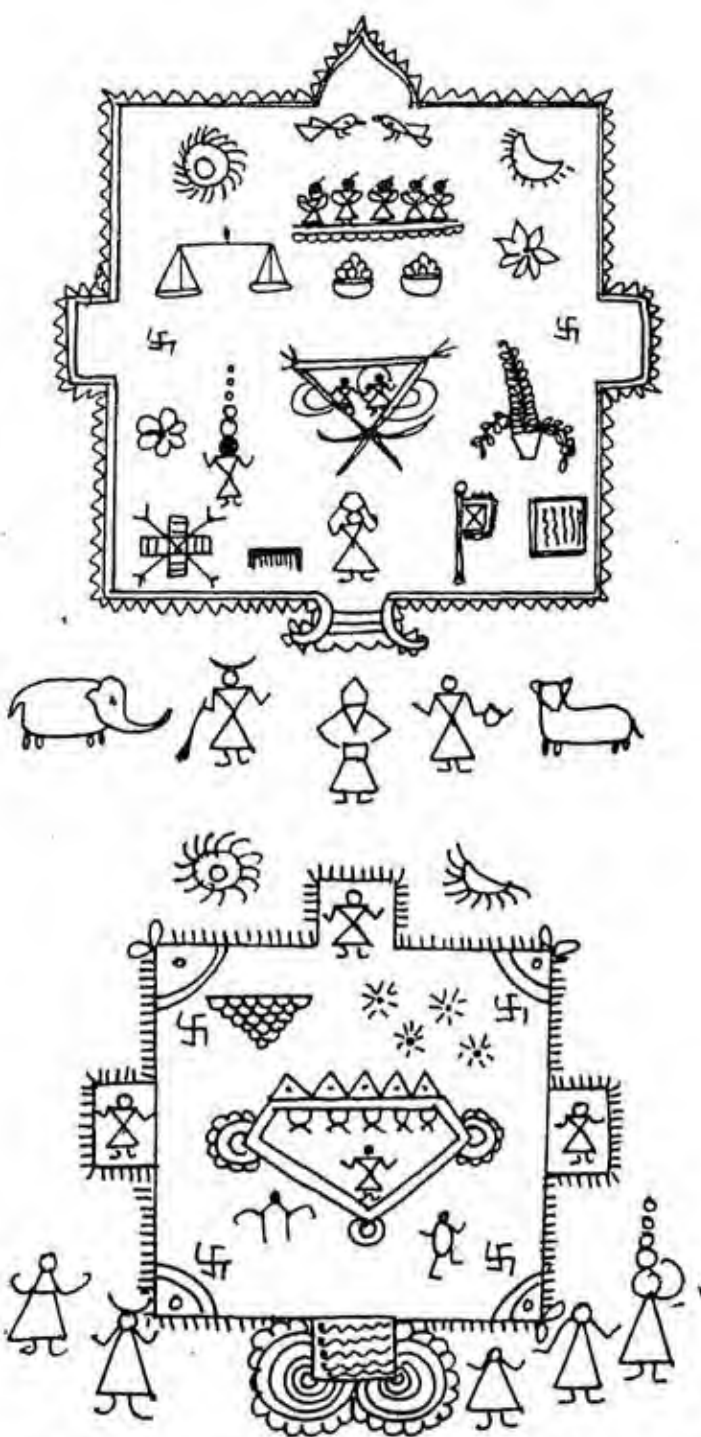
पाद-टिप्पणियाँ

१. डा० महेन्द्र भगवत, 'राजस्थान की संस्था', पृ० ५-२६ और पृ० ३४-३५
२. तपन मोहन चटर्जी, 'अल्पना', पृ० ३६-४०
३. रंगायन (पत्रिका), जनवरी १९८०, पृ० १६-२२
४. डा० महेन्द्र भगवत, 'राजस्थान के गाँव', पृ० ६९ (अहोई), पृ० ६३ (करवाचौथ)
५. ओ. सी. हांडा, 'पहाड़ी फोक आर्ट', पृ० १४, पृ० २६
६. उत्तर प्रदेश : कातिक की अमावस्या तथा आश्विन कृष्ण अष्टमी को लक्ष्मी व महालक्ष्मी पूजन होता है।
७. बिहार : शरदपूणिमा—जिसे कोजागर की रात्रि तथा कातिक अमावस्या जिसे सुख रात्रि कहते हैं—को लक्ष्मीपूजन दीपदान के साथ होता है। देखिए, लक्ष्मीनारायण मिश्र, 'मिथिला की लोककला'

८. बंगाल : शरद पूर्णिमा, कार्तिक अमावस्या, भाद्रपद मास की पूर्वमासी को तथा पौष मास के प्रत्येक बृहस्पतिवार को । देखिए, सुधांशु कुमार राय, 'दी रिच्युअल आर्ट ऑफ दी ब्राटाज ऑफ बंगाल', पृ० ४३; तपन मोहन चटर्जी, 'अस्पना', पृ० २७, ३७, ३८, ४१, ४३; पब्लिकेशन डिवीजन, 'अस्पना', पृ० २८-३२
९. हिमाचल प्रदेश : कार्तिक अमावस्या । देखिए, ओ. सी. हांडा, 'पहाड़ी फोक आर्ट', पृ० २८-३१
१०. राजस्थान : कार्तिक अमावस्या । देखिए, डा० महेन्द्र भानावत, 'राजस्थान के घाये', पृ० ७३ तथा श्री जोगेन्द्र सक्सेना, 'आर्ट ऑफ राजस्थान', प्लेट २८
११. मध्यप्रदेश : कार्तिक अमावस्या । देखिए, धर्मयुग—३० अक्टूबर, १९७७
१२. गुजरात : अमावस्या की रात्रि । सर्वेक्षण के आधार पर ।
१३. महाराष्ट्र : अमावस्या की रात्रि । सर्वेक्षण के आधार पर ।
१४. दक्षिण : अमावस्या की रात्रि । सर्वेक्षण के आधार पर ।
१५. बिहार में तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में इसे कोहबर कहते हैं, जबकि इस समय चिलित भित्ति अलंकरण को हिमाचल प्रदेश में डेहर, कोहारा, कामदेव अथवा कानदेव कहते हैं । भूमि पर भी इन प्रदेशों में अलंकरण किया जाता है।



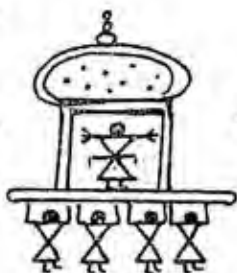
75027



चित्र ६६ : सांझी का भित्ति-चित्रण । (ऊपर) मध्यप्रदेश तथा (नीचे) राजस्थान का सांझी चित्रण ।



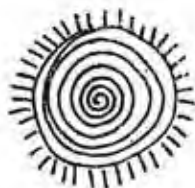
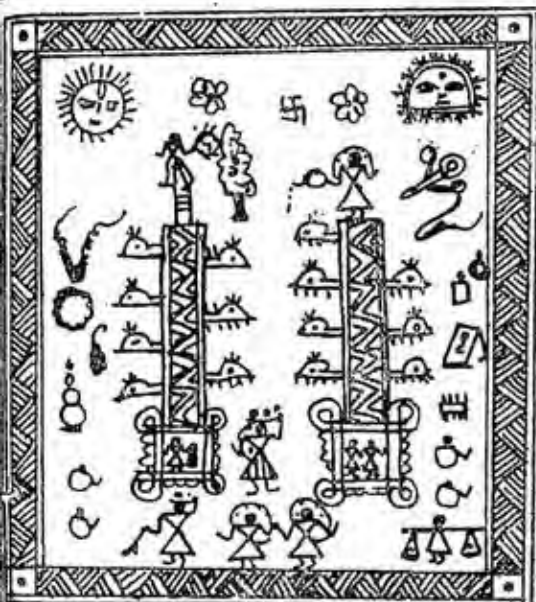
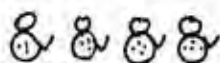
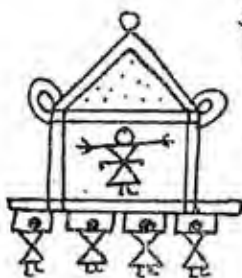
राम



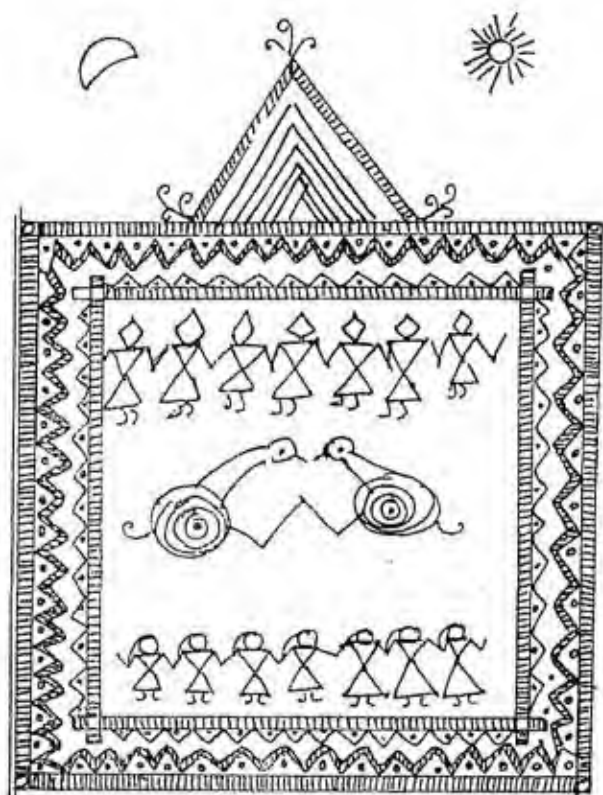
ॐ



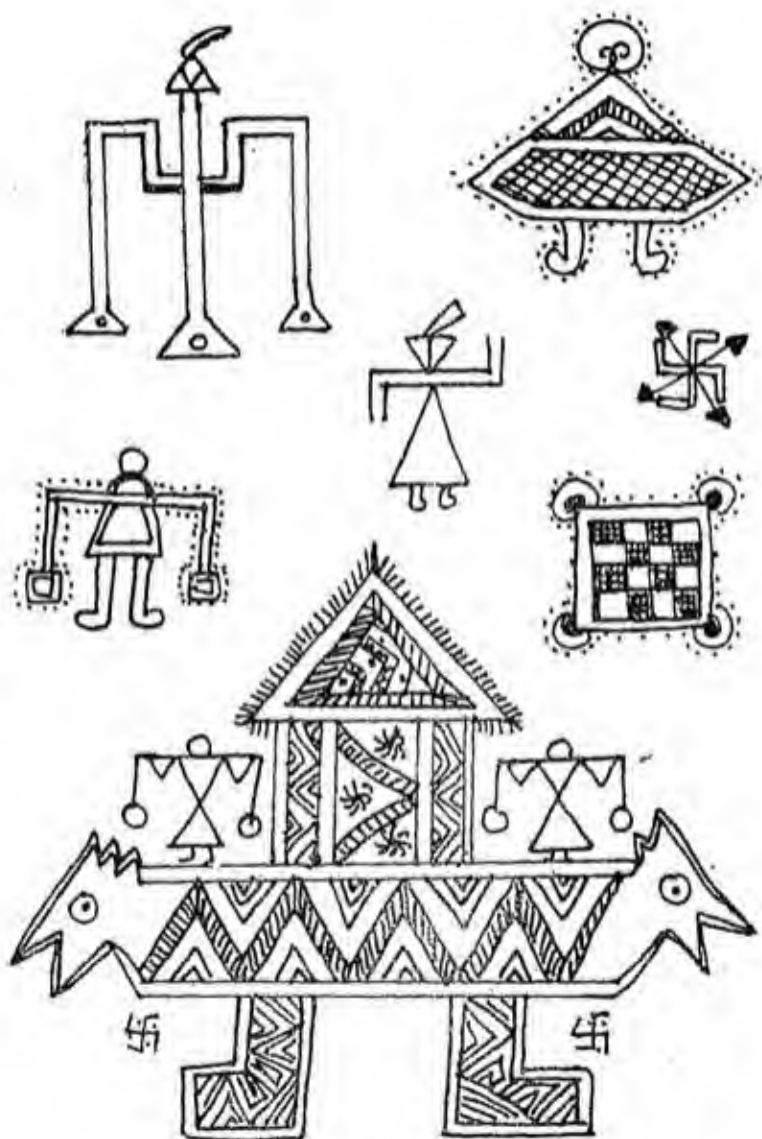
सीता



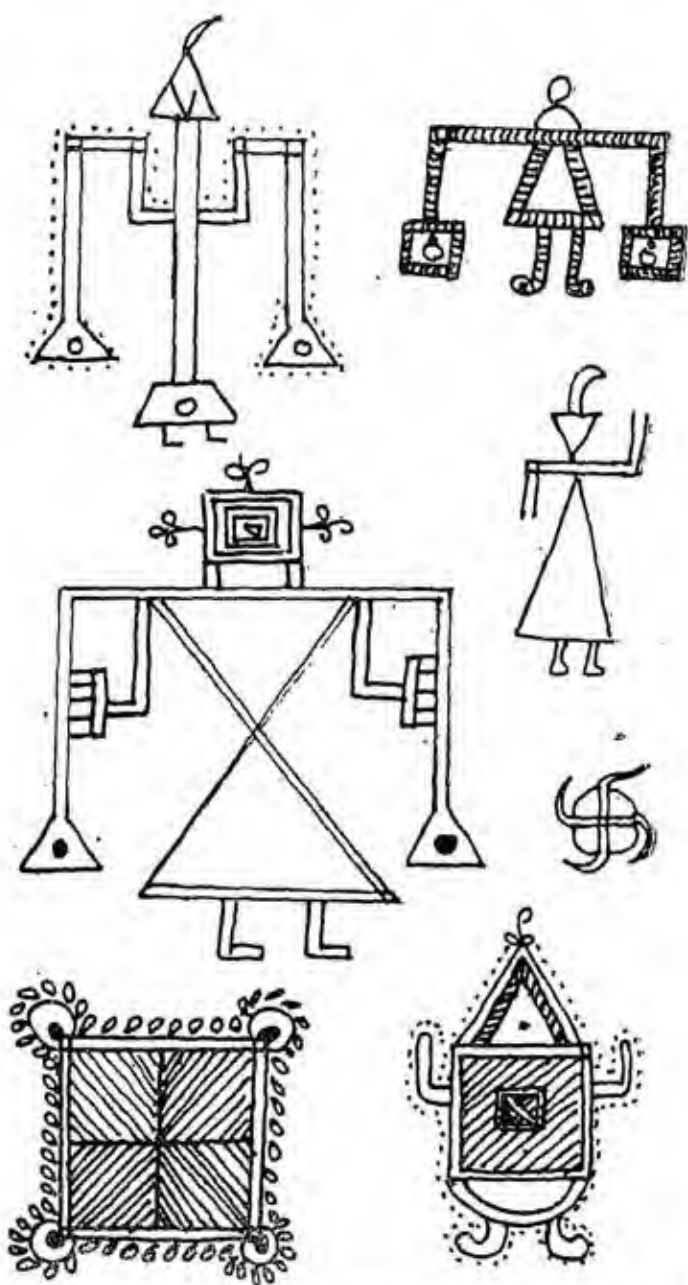
चित्र १०० : करवा चौथ । सबसे ऊपर हिमाचल प्रदेश, नीचे बायें उत्तर प्रदेश तथा दायें राजस्थान का भित्ति चित्रण ।



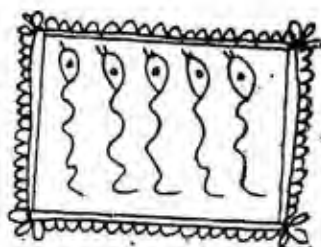
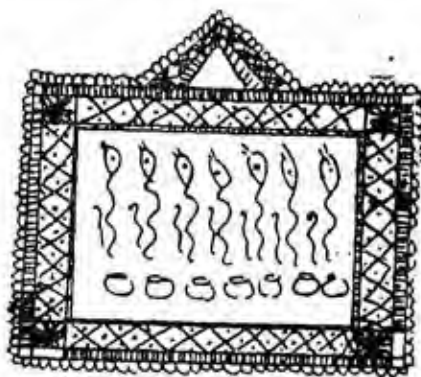
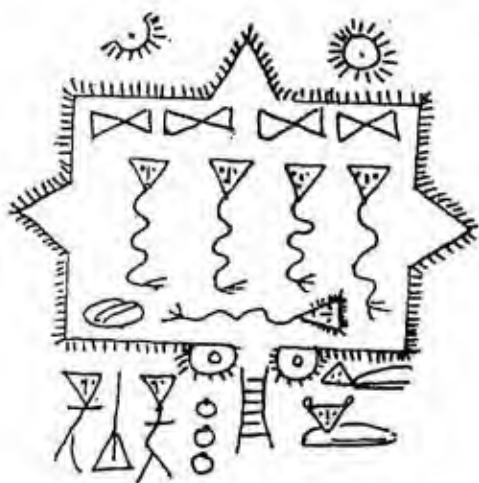
चित्र १०१ : पुत्र की भंगसकामता का भित्तिचित्रण अहोई। ऊपर राजस्थान तथा नीचे हिमाचल प्रदेश में प्रचलित रूप।



चित्र १०२ : रक्षाबंधन के समय चित्रित किया जाने वाला सोना/सोना/सरमन ।
ये सभी चकन उत्तर प्रदेश के हैं ।

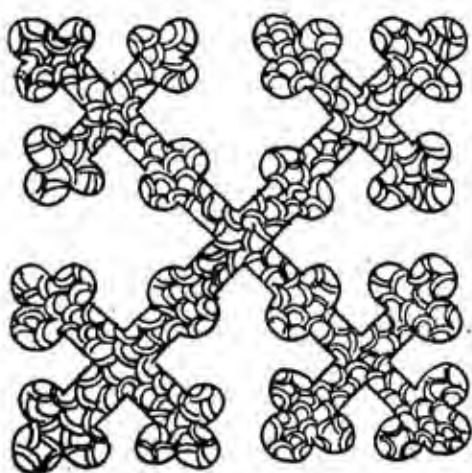
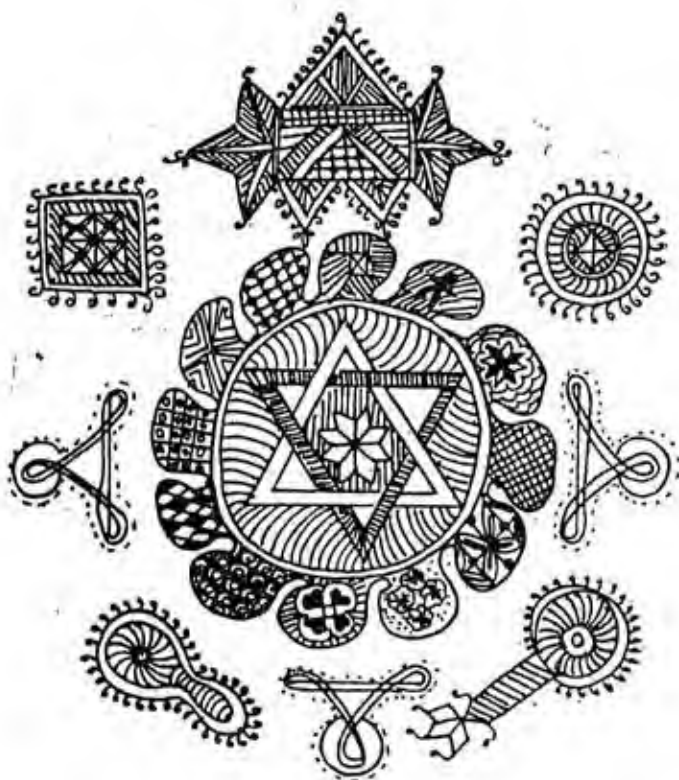


चित्र १०३: रक्षाबंधन के समय चित्रित किया जाने वाली सोना सोना/सरमन। ये सभी अंकन रागस्थान के हैं।

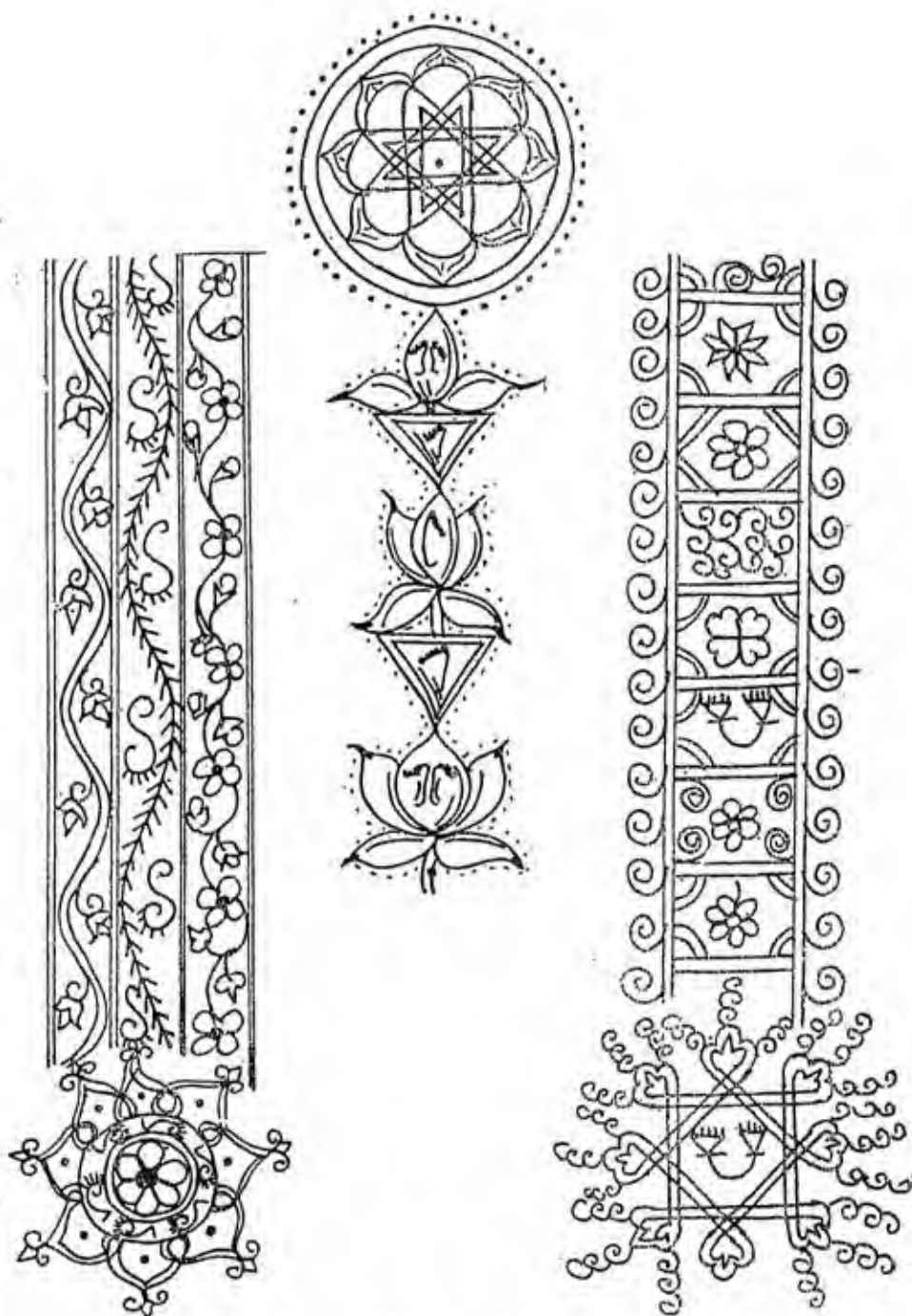


॥ॐ॥ॐ॥ ॐॐ॥ॐॐ

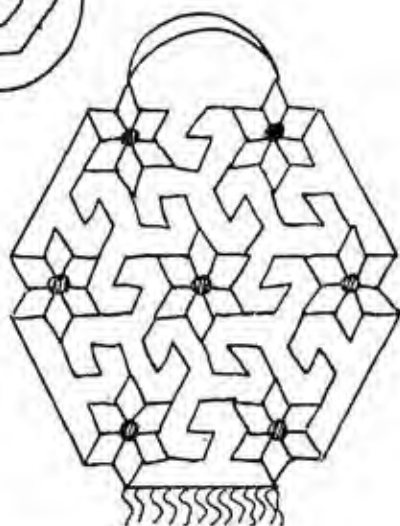
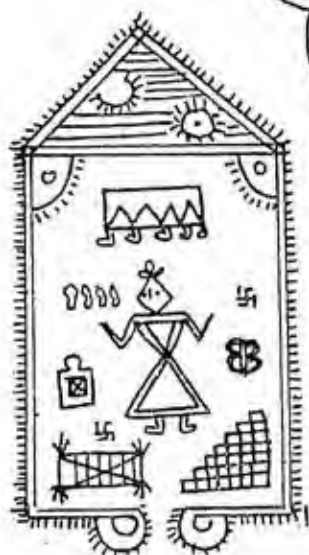
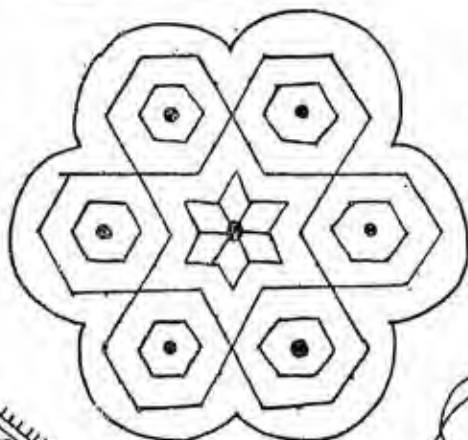
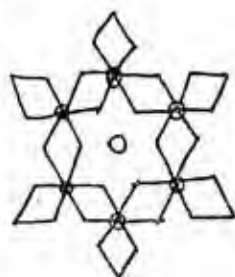
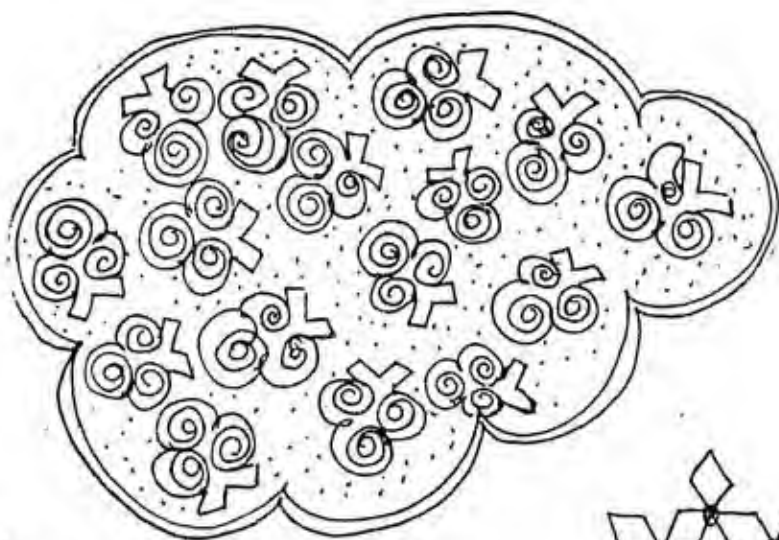
चित्र १०४ : नागपंचमी के समय का भक्ति चित्रण—कमशः पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान में प्रचलित कुछ रूप ।

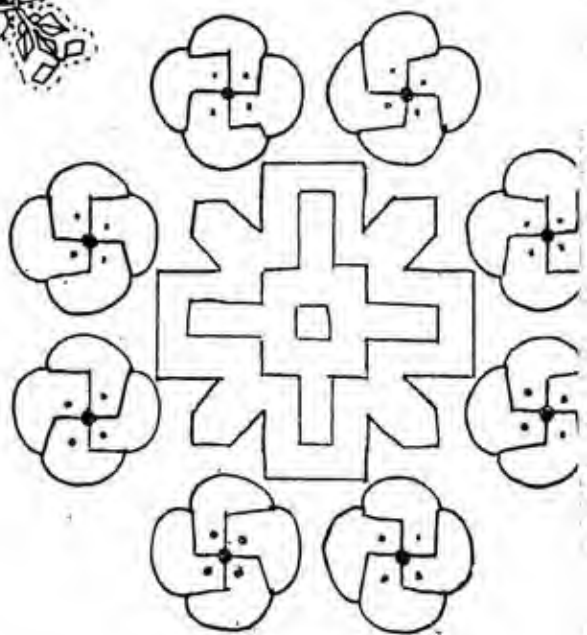
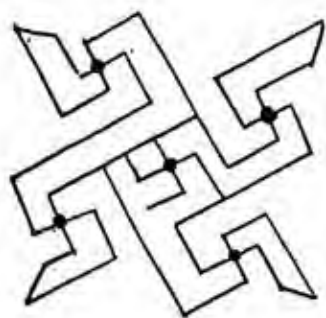
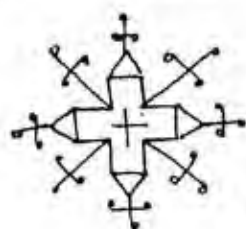
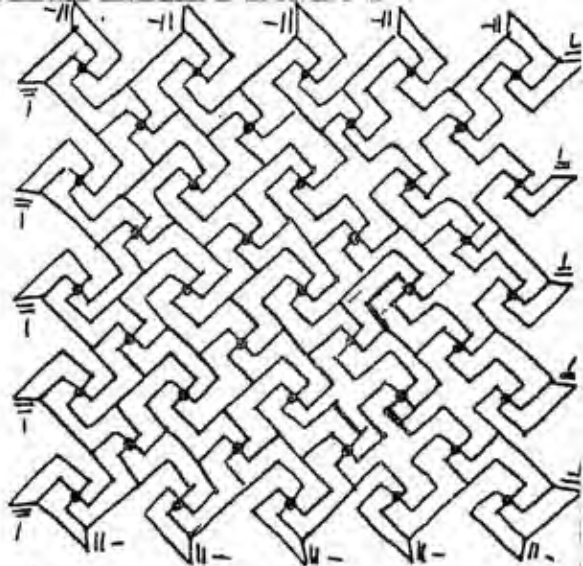
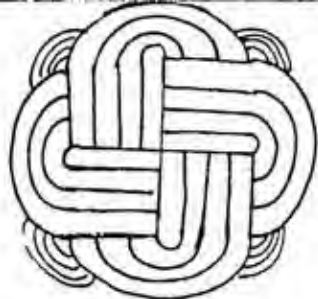


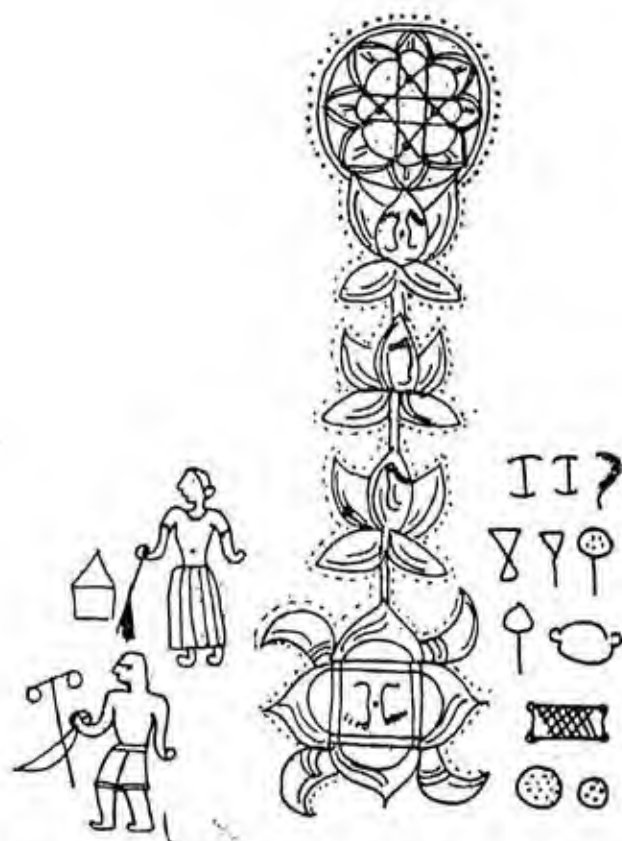
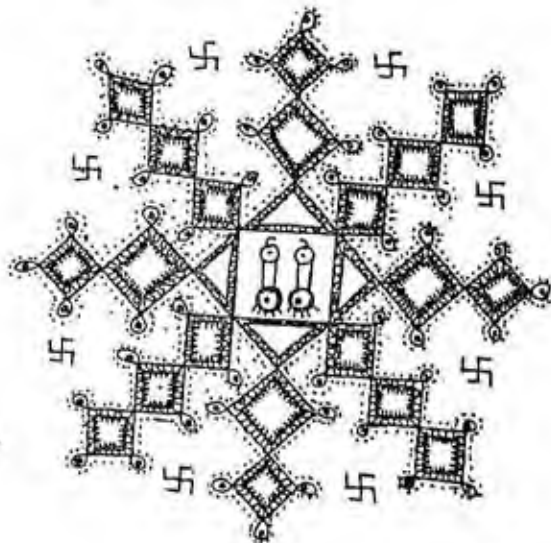
चित्र १०५: दीपावली का भूमि चित्रण । (ऊपर) राजस्थान, (नीचे बायें) मध्यप्रदेश तथा (दायें) उत्तर प्रदेश के कुमार्ज क्षेत्र के उदाहरण ।



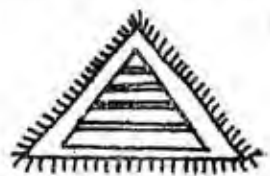
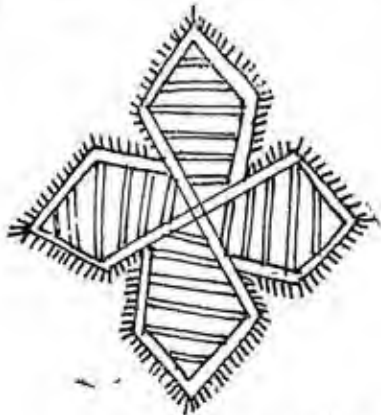
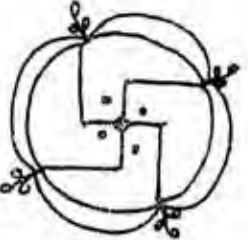
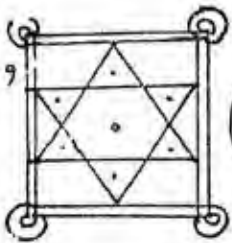
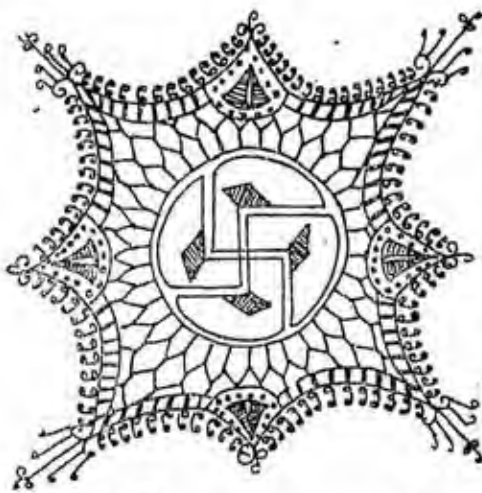
चित्र १०६ : खोपावली का भूमि चित्रण—श्रमणः बायें से : पश्चिमी बंगाल, बिहार और हिमाचल प्रदेश का ।



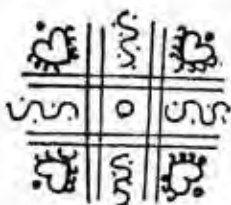
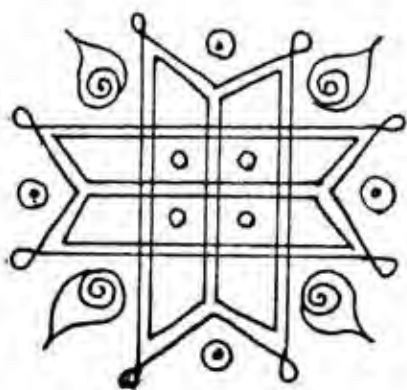
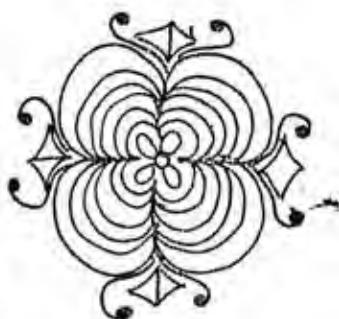
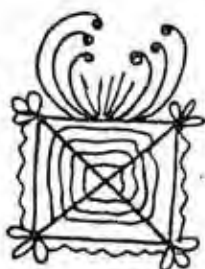
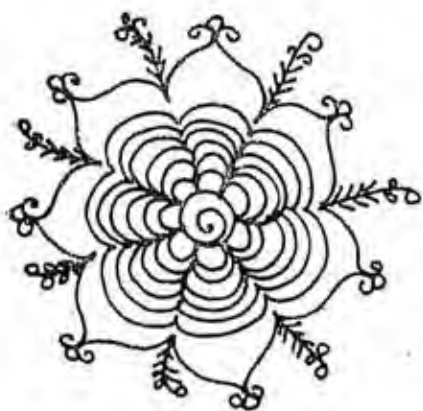


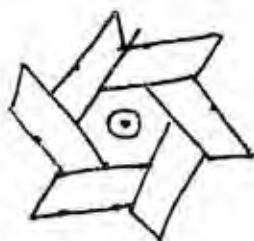
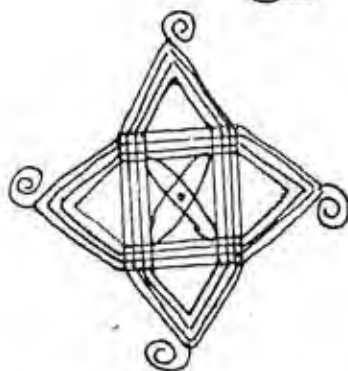
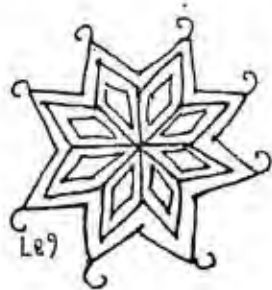
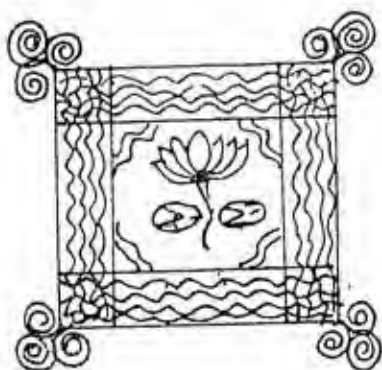
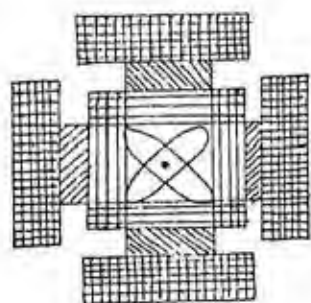
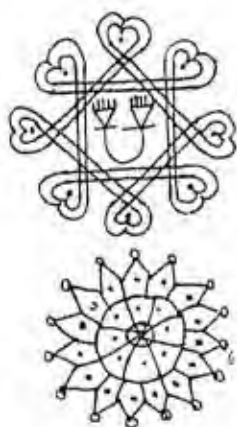
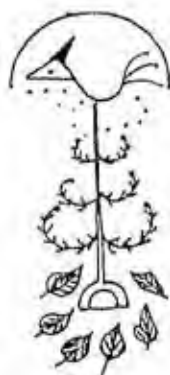
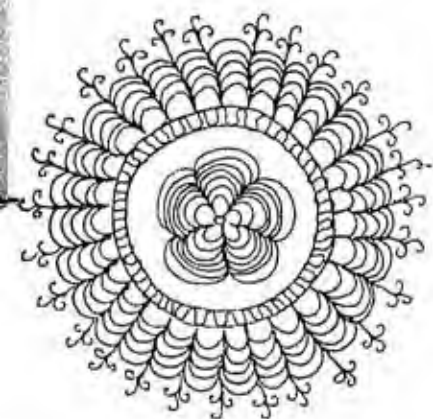


चित्र १०६ : मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार क्षेत्रों में देवराजान एकादशी से सम्बन्धित भूमि चिह्न ।

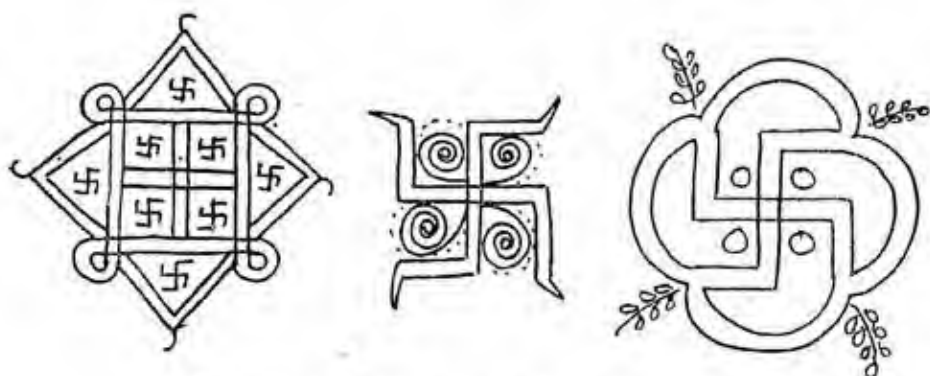
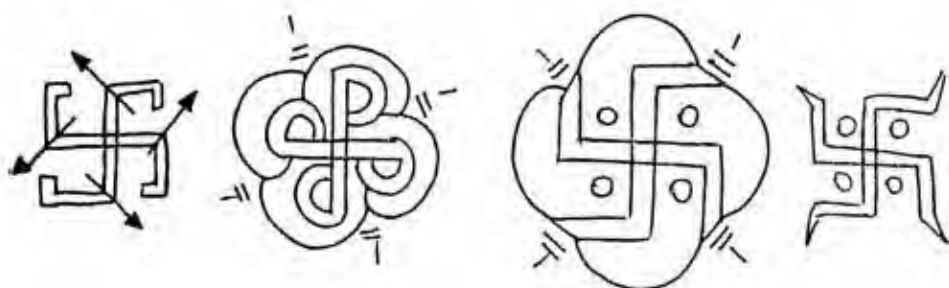
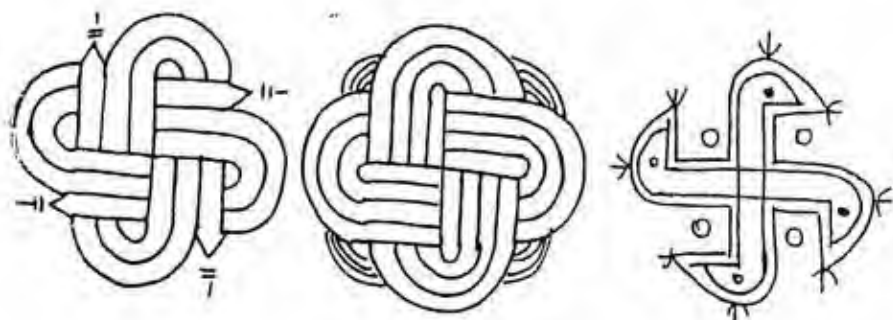


चित्र ११० : शुभ चिह्नों के कुछ नमूने । पहली पंक्ति में राजस्थान, दूसरी में उत्तर प्रदेश और तीसरी में गुजरात में प्रचलित कुछ शुभ चिह्न ।

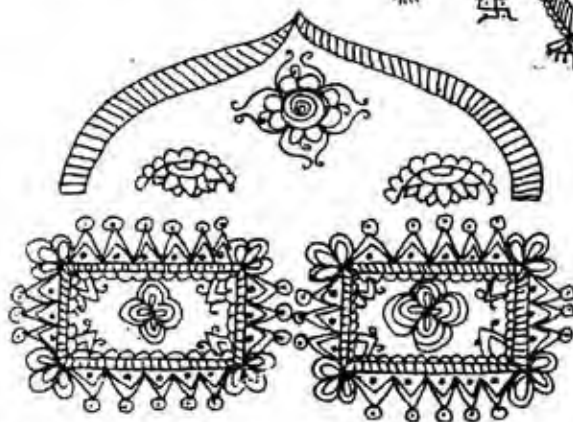
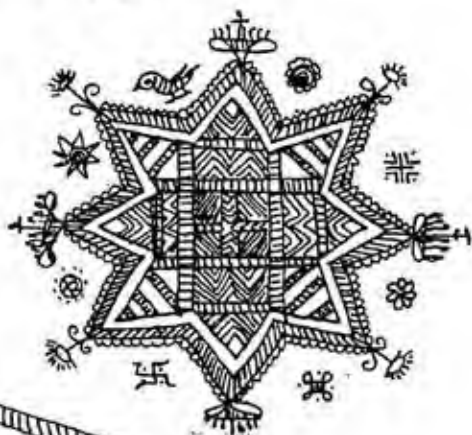




चित्र ११२ : विभिन्न राज्यों के कुछ शुभ चिह्न ।



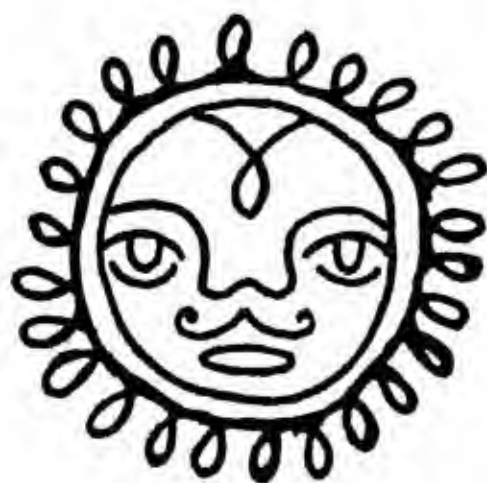
चित्र ११३ : विभिन्न ऐत्यों के स्वास्तिक पर आधारित कुछ चोक ।



चित्र ११४ : शादी के अवसर के चित्र । पहली पंक्ति में हिमाचल का कोहलरा, दूसरी पंक्ति में उत्तर प्रदेश का कोहलर, राजस्थान का माडना और नीचे की पंक्ति में पश्चिमी बंगाल की अल्पना ।



परिशिष्ट



सहायक हिन्दी ग्रन्थ

असित कुमार हल्वार : 'भारतीय चित्रकला का इतिहास', चन्द्रलोक प्रकाशन,
भार्गव प्रेस, इलाहाबाद, १९५६

इन्दुमती मिश्र (आ०) : 'प्रतिमा विज्ञान', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
भोपाल, १९७२

आ० इन्दुप्रकाश पाण्डेय : 'अवधी लोकगीत और परम्परा', रामनारायण लाल,
प्रयाग, १९५७

डा० कृष्णदेव उपाध्याय : 'लोक साहित्य की भूमिका', साहित्य भवन, इलाहाबाद,
१९५७

—'भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन', हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
वाराणसी, १९७०

कृष्ण दत्त वाजपेयी : 'उत्तर प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास', आगरा, १९५६

कृष्णा बेबी शीतल प्रसाद जैन ट्रस्ट : 'स्मारिका मयराष्ट्र मानस', सरस्वती
परिषद, सरधना रोड, मेरठ

गिराज किशोर अग्रवाल : 'कला समीक्षा', देव ऋषि प्रकाशन, अलीगढ़,
१९७०

चौ० हरिहर सिंह : 'हमारे पर्व और त्यौहार', सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, १९७६

डा० जगदीश गुप्त : 'प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला', नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली, १९६१

डा० जनार्दन मिश्र : 'भारतीय प्रतीक विद्या', बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

डा० परिपूर्णानन्द : 'प्रतीक शास्त्र'

प्रभुदयाल मित्तल : 'श्रृंग के उत्सव, त्यौहार और मेले', साहित्य संस्थान, मथुरा,
१९६६

महेन्द्र भानावत (डा०) : 'राजस्थान के धापे', भारतीय लोक कला मण्डल,
उदयपुर, १९७७

—'राजस्थान की संख्या', भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर, १९७७

—'राजस्थान के मांडने', भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर, १९७८

रामगोविन्द त्रिवेदी : ऋग्वेद (शांकर संहिता) का हिन्दी भाषांतर, इंडियन प्रेस,
प्रयाग, १९५४

रामचरण ह्यारण मिश्र : 'बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य', राजकमल
प्रकाशन, दिल्ली, १९६६

रामप्रताप त्रिपाठी : 'हिन्दुओं के व्रत और त्यौहार'

- लक्ष्मीनारायण मिश्र : 'मिथिला की लोककला', पटना
 वासुदेवशरण अग्रवाल (डा०) : 'भारतीय कला' (प्रथम भाग), पृथ्वी प्रकाशन,
 वाराणसी, १९६६
 विद्या चौहान (डा०) : 'लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि', प्रगति प्रकाशन,
 आगरा, १९७२
 सत्या गुप्ता (डा०) : 'खड़ी बोली का लोक साहित्य', हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
 इलाहाबाद
 सत्येन्द्र (डा०) : 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन', साहित्य रत्न भण्डार, आगरा,
 १९४६
 सुचिन्तनराय पाल : 'भारतीय संस्कृति एवं सम्यता का इतिहास', जयपुर, १९६८
 इयाम परमार (डा०) : 'लोक साहित्य विमर्श', कृष्णा ब्रादर्स, कचहरी रोड,
 अजमेर, १९७२

२

हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ

मनोरमा : माया प्रेस प्राईवेट लि०, इलाहाबाद; धर्मयुग : टाइम्स आफ इण्डिया,
 बम्बई; हिन्दुस्तान साप्ताहिक : हिन्दुस्तान टाइम्स प्रकाशन, दिल्ली; संस्कृति :
 शिक्षा, समाज कल्याण और संस्कृति मंत्रालय, शास्त्री भवन, दिल्ली; उत्तर प्रदेश :
 सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ; रंगायन : भारतीय लोककला मंडल,
 उदयपुर, राजस्थान; वन्यजाति : भारतीय आदिम जाति सेवा संघ, ठक्कर बापा
 सदन, नई दिल्ली; आकृति : राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर; और
 कला त्रैमासिक : राज्य ललित कला अकादमी, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

३

सहायक अंग्रेजी ग्रन्थ

- Abboh. (J) : *Keys of Power : A Study of Indian Ritual & Belief*,
 1932.
 Ajit Mookerjee : *The Art of India*, Oxford & IBH Publishing
 Co., Calcutta, 1966.
 —*Yoga Art*, Thames & Hudson, London.

१७६ :: उत्तर प्रदेश की लोककला

- Bhupendra Nath Dutta** : *Indian Art in Relation to Culture*, Calcutta, 1956.
- Boyd** : *Village Folk of India*, 1924.
- Brijendra Nath Sharma** : *The Social and Cultural History of Northern India*, Abhinav Publication, New Delhi, 1972.
- Elwin V.** : *Folk Paintings of India*, Bombay, 1946.
- Jasleen Dhamija** : *Indian Folk Art and Crafts*, National Book Trust, New Delhi, 1970.
- Jogendra Saksena** : *Art of Rajasthan*, Sundeep Prakashan, Delhi.
- Luies Spence** : *An Introduction to Mythology*.
- Mehta J. Rustam** : *Handicrafts and Industrial Art of India*.
- Mukerjee R. M.** : *Social Function of Art*, Hind Kitab Ltd., Bombay, 1951.
- O. C. Handa** : *Pahari Folk Art*, D. B. Taraporvala, 1975.
- O. C. Ganguli** : *Indian Arts and Heritage*, Calcutta, 1957.
- Philip Rawson** : *Tantra : The Indian Cult of Ecstasy*, Thames & Hudson, London.
- Partivabala Bardhan** : *Alimpan*
- Percy Brown** : *Indian Painting*, Y. M. C. A. Publishing House, Calcutta, 1963.
- Radha Kamal Mookerjee** : *The Culture and Art of India*, George Allen & Unwin Ltd., 1959.
- Notes on Early Indian Art*, Kitab Mahal, 1962.
- Sirkar B. K.** : *Folk Element in Hindu Culture*.
- Sudhansu Kumar Ray** : *The Ritual Art of the Bratas of Bengal*, Firma K. L. Mukhopadhyaya, Calcutta.
- Tapan Mohan Chatterji** : *Alpona*, Orient Longmans Ltd., Calcutta.
- Encyclopaedia of the Arts*, Thames and Hudson, Ltd. Great Britain, 1966.
- Vassilis G. Vitsaxis** : *Hindu Epics, Myths and Legends in Popular Illustrations*.
- Alpona*, Publication Division, New Delhi.
- Encyclopaedia Britannica** : (History of Folklore).

अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएँ

1. Illustrated Weekly.
2. Indian Folklore.
3. Journal of Royal Asiatic Society of Bengal.
4. Span.

75027





CAPTION

Folk art — Uttar Pradesh
Uttar Pradesh — Folk art .

...

Central Archaeological Library,
NEW DELHI.

75027

Call No. 745.095426/Ver

Author—Verma Bimla.

Title—Uttar Pradesh
Ki Lok Kala

Borrower No.

Date of Issue

Date of Return

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI

Please help us to keep the book
clean and moving.